CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डॉ. नरेन्द्र कुमार [illegible]र्मा
[illegible]डी.लिट.

भारतीय दर्शन और संत पानपदास

अभिनव प्रकाशन, आगरा-282002

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डॉ. नरेन्द्र कुमार शर्मा
डी.लिट.

भारतीय दर्शन और संत पानपदास

अभिनव प्रकाशन, आगरा-282002

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय दर्शन और सन्त पानपदास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय दर्शन और संत पानपदास

लेखक
डॉ० नरेन्द्रकुमार शर्मा
एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट्०
अध्यक्ष,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग,
गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उ० प्र०)

१९८३-८४

अभिनव प्रकाशन, आगरा-282002

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

● प्रकाशक
सुरेश चन्द्र गुप्ता
अभिनव प्रकाशन
१४/२५६ मण्डी सईद खाँ
आगरा–२८२००२

● सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : १९८३-८४
मूल्य : साठ रुपये मात्र

State Museum Library Lucknow
5530

मुद्रक :
राकेश कम्पोजिंग हाउस, आगरा–२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ॐ

संघर्षरत, अदम्य उत्साही और कर्मशील
आयुष्मान् ब० माणकचन्द्र नाहर (मद्रास)
को सस्नेह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ॐ

यत्र तत्र समये यथा तथा,
योऽसि सोऽस्यमिधया यथा तथा ।
वीतरागकलुषश्च चेद् भवान्,
एक एव भगवन् नमोस्तु ते ।।

आपने चाहे जहाँ जन्म लिया हो और जिस समय में जन्म लिया हो, आप चाहे जो हों और जिस नाम से पुकारे जाते हों, राग और द्वेष से जब आप परे हैं, तो आपको प्रणाम है ।

लख्यौ परत जग में न कछु निरगुन और अदोष ।
सज्जन निज जिय समुझि यह प्रकटहिं गुन ठकि दोष ।।

कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं त्वयि विन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यऽम् ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आद्य मिताक्षर

प्रस्तुत शोध-कार्य में प्रवृत्त होने से पूर्व यह अभिव्यक्त करना अनुचित न होगा कि मैंने यह विषय क्यों चुना ? प्रेरणा-स्रोत क्या है ?

मैंने अपने पिताजी से संत पानपदास (पानपदेव) का नाम बचपन में अनेक बार सुना था। धामपुर (बिजनौर जि०) स्थित पानप गद्दी के स्वर्गीय महंत प्रीतमदास जी से पिताजी का सन् १९०५ ई० से परिचय था, तदनन्तर महत रामस्वरूप जी से भी पिताजी का सम्पर्क बना रहा। मैंने एम० ए० (हिन्दी) करने के उपरान्त संत पानपदास के सम्बन्ध किसी विषय पर शोध करने का विचार किया था, किन्तु परिस्थितिवश पानपदास से सम्बद्ध विषय पर शोध-कार्य न करके भाषा-विज्ञान से सम्बद्ध विषय पर सन् १९६३ में शोध-कार्य सम्पन्न किया, किन्तु मन में वह पुरानी करक बनी ही रही, एतदर्थ मैंने तभी से संत पानपदास के अध्यात्म-दर्शन पर शोध करने की ठान ली। वह शोध-कार्य एक बार सम्पन्न भी हुआ और नष्ट भी हो गया, क्योंकि अत्यधिक वर्षा के कारण कमरे में पानी भर गया और मैं कार्य-वशात् बाहर गया हुआ था; मन अवसाद से भर गया, हिम्मत की और अब पुनः यह प्रयास आपके सम्मुख है। इस प्रकार इस प्रबन्ध के 'अथ' से लेकर 'इति' तक लगभग बीस वर्षों का इतिहास है, जिसको मैं अब साकार कर पाया हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध का उद्देश्य तो स्पष्ट ही है कि मध्यकालीन संत-काव्य की दार्शनिक परम्परा के अन्तर्गत कबीर जैसी फक्कड़ तबीयत वाले निर्गुण-मार्गी, वेदान्ती, समाज-सुधारक, योगी और आत्मज्ञानी संत पानप के अध्यात्म-दर्शन का विवेचन किया जाए; क्योंकि आज तक न तो पानपदास के साहित्य की समीक्षा की जा सकी है और न उनके अध्यात्म-दर्शन को ही समझने की चेष्टा की गई।

संत पानपदास के साहित्य-अन्वेषण-उपक्रम में पानप-पंथी-गद्दियों तक पहुँचने के लिए मैंने कई बार यात्राएँ कीं, जिससे बहुत-सी बातें सामने आयीं, किन्तु वे सब इस शोध-प्रबन्ध का विवेच्य विषय नहीं हैं। मेरी दृष्टि अध्यात्म-दर्शन पर ही लगी रही, वही मेरा अभीष्ट था। पानप सम्बन्धी सामग्री-संकलन में मुझे बहुत ही प्रयास करना पड़ा, क्योंकि पानप सम्बन्धी साहित्य प्रायः दुष्प्राप्य है; उसकी एक-एक प्रति के लिए महीनों श्रम करना पड़ा और सैकड़ों रुपए व्यय करने पड़े।

इस प्रबन्ध के प्रणयन में किसको कितना आभार-प्रदर्शन करूँ, मैं नहीं सोच पा रहा हूँ; फलतः इस शिष्टाचार-परम्परा को विराम देना ही युक्ति-संगत है। वे सब मेरे ही हैं और मैं उनका—बस।

विनीत :

नरेन्द्रकुमार शर्मा

टी–४ प्रोफेसर्स कॉलोनी
श्रीनगर–गढ़वाल (उ० प्र०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

डॉ० नरेन्द्र कुमार शर्मा द्वारा लिखित "भारतीय दर्शन और सन्त पानपदास" शीर्षक ग्रन्थ एक गौरवपूर्ण और महनीय कृति है। ग्रन्थ की रचना में लेखक ने जहाँ एक ओर सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय का आलोडन-विलोडन किया है, वहाँ दूसरी ओर मध्ययुगीन सन्तों का सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने का भी प्रयास किया है। इस प्रकार सन्त पानपदास के माध्यम से ग्रन्थ में भारतीय वाङ्मय की संक्षिप्त उद्धरणी हो गई है। सन्त पानपदास हिन्दी जगत् में अल्पज्ञात सन्त कवि हैं और इनका सर्वांगीण परिचय अभी तक किसी भी आलोचनात्मक ग्रन्थ में नहीं है। डॉ० नरेन्द्र कुमार शर्मा ने इस महनीय कार्य से सन्त साहित्य में जो योगदान किया है वह निश्चय ही अभिनन्दनीय है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनेक दृष्टियों से सन्त साहित्य का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में हिन्दी साहित्य के विशाल महोदधि में सन्त साहित्य का स्थान पावन और अनाविल है। यह भागीरथी के समान वैदिक काल से निरन्तर प्रवाहित होता आया है। सबसे बड़ी विशेषता इस सम्पूर्ण साहित्य की यह है कि इसमें न तो प्राकृत-जन-गुणगान है और न ही आत्म-निवेदन। यह आध्यात्मिक जीवन की गहरी अनभूतियों पर आधारित है। इसका मूल उद्देश्य शाश्वत और अद्वितीय आनन्द पद एवं कल्याणकारी अभिव्यक्ति के रूप में लोक कल्याण ही है।

वैदिक साहित्य में हमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि सन्त साहित्य के मूल तत्त्व प्रारम्भ में ही मानवता के भाव से ओत-प्रोत रहे हैं। सन्तों का लक्ष्य सदा से ही सिद्धान्त एवं आचरण में एकत्व प्रतिपादन का रहा है। कथनी और करनी की एकता का प्रतिपादन उनके जीवन का मूल उद्देश्य रहा है। भारतवर्ष में अनेक दर्शन और सम्प्रदाय पनपते रहे हैं किन्तु उनके मूल तत्त्वों का प्रतिपादन सन्त साहित्य में इस प्रकार हुआ है कि उनका विरोध भी विरोधाभास ही है। लेखक ने अपने ग्रन्थ में सन्त पानपदास के साहित्य के माध्यम से इस तथ्य को उजागर करने का प्रयास किया है और वैदिक काल से लेकर आज तक के सभी दर्शनों एवं भक्ति सम्प्रदायों की मूल तत्त्वों से सन्त मत की संगति बैठायी है। इसलिए हम कह सकते हैं कि सभी सम्प्रदायों की मूल प्रवृत्तियाँ लगभग समान हैं और सन्त साहित्य में सन्त मत भी इन्हीं से प्राप्त पोषक तत्त्वों द्वारा निर्मित मानव धर्म की रूप-रेखा से भिन्न नहीं है। लेखक ने इस तत्त्व की ओर विशेष संकेत किये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्त साहित्य के सन्दर्भ में मध्ययुगीन धर्म साधना का अपना एक महत्त्व है। भक्ति आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि और उसकी मूल-भावना को समझे बिना हम मध्ययुगीन साधना का विश्लेषण नहीं कर सकते। धर्म अपने प्रकृत स्वरूप में लोक कल्याण का ही सम्पादन करता है, परन्तु जब देश और काल की परिस्थितियों से उसमें विकृति आती है तो वह संकीर्ण हो जाता है और उसकी प्रतिक्रिया में अनेक आन्दोलन खड़े हो जाते हैं। भक्ति आन्दोलन का भी यही इतिहास है। भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ दक्षिण से माना जाता है इसलिए श्रीमद्भागवत के महात्म्य में स्पष्ट लिखा गया है—

उत्पन्नाद्रविडे साऽहं वृद्धिकर्णाटके गता।
क्वचित् क्वचिन् महाराष्ट्रे गुर्जर जीर्णतां गता।।
तत्रघोरकलेर्योगात्, पाखण्डैः खंडिताङ्गगाः।
दुर्बलाऽहं चिरंयाता पुत्राभ्यां सह मन्दताम्।।
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताऽहं युवती सम्यक् प्रेष्ठ रूपा तु साम्प्रतम्।।

—श्रीमद्भागवत् महात्म्य १/४-५

वस्तु स्थिति यह है कि भक्ति आन्दोलन का श्रेय दक्षिण के आलवार भक्तों को ही है। भक्ति आन्दोलन कब प्रारम्भ हुआ, यह कहना तो कठिन है, परन्तु उसका पूर्ण परिपाक सोलहवीं शताब्दी में हुआ। उसके मूल में भावनात्मक एकता का स्तर ही सर्वोच्च है। वैदिक ऋषि का यह वाक्य "एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" सर्वत्र मुख और भास्वर है। मानव धर्म का विकास और संस्कार ही भक्ति आन्दोलन का मूल उद्देश्य रहा है।

शंकराचार्य ने ज्ञान और भक्ति तथा सगुण और निर्गुण के समन्वय में सेतु का कार्य किया और बुद्धिवादियों के सम्मुख अद्वैत का सिद्धान्त और आधारवादियों के सम्मुख व्यावहारिक स्मार्त मत प्रस्तुत किया। ब्रह्म और जीव की एकता घोषित करना इस युग की एक महती घटना थी। इसका इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि यामुनाचार्य और रामानुजाचार्य से लेकर रामानन्द तक सभी आचार्य शंकर से भिन्न मत रखते हुए भी इसी परम्परा में आ गए तथा जनसाधारण के प्रतिनिधि सन्त और सूफी भी किसी न किसी प्रकार इस परम्परा से जुड़े रहे। इससे सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन मूल में एक है, अन्य सभी मत और सम्प्रदाय इस तक पहुँचने के लिए सोपान मात्र हैं। भारतीय मध्य-युग की धर्म साधना इसी धुरी के चारों ओर घूमती है। हम यों कह सकते हैं कि सिद्धों, नाथों और योगियों की परम्परा जन प्रतिनिधित्व के द्वारा सन्त मत के पोषक तत्त्वों का संग्रह कर रही थी तो आलवार भक्त पुनः आचार्य तथा पुनः भक्त के रूप में भक्ति के स्वर को मुखर करने में लगे थे। इसलिए हम कह सकते हैं कि सन्त मत इन्हीं से प्राप्त पोषक तत्त्वों द्वारा निर्मित मानव धर्म से भिन्न नहीं है। इस प्रकार से आलवारों की भक्ति साधना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही सन्त मत की आधारशिला थी। आलवार सन्त प्रायः निम्नजाति के थे और अध्यात्म ज्ञान रूपी समुद्र में गहरा गोता लगाने वाले थे। जाति-पाँति, उच्च-नीच और वैदिक-अवैदिक के विरोध में स्वर ऊँचा करने वाले ये आलवार भक्त ही थे परन्तु कबीर आदि की तरह उनमें अक्खड़ता न होकर नम्रता और उदारता थी। तिरुभगे, अन्दाल, नम्न और शठकोय आदि आलवार इसके प्रमाण हैं।

सन्त साहित्य का एक लम्बा इतिहास है, परन्तु व्यवस्थित रूप में इसका इतिहास उत्तर भारत में सन्त जयदेव से प्रारम्भ होता है। जयदेव से लेकर घन्ना तक सभी सन्त अपने उपदेशों का प्रचार स्वतन्त्र और व्यक्तिगत रूप में ही करते रहे—यह युग लगभग सं० १२०० से सं० १५५० तक माना जा सकता है। सन्त जम्मनाथ से लेकर मलूकदास तक अनेक सम्प्रदायों का संगठन हुआ और धीरे-धीरे साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति अधिक प्रबल होती गई। लगभग सं० १८५० तक यह प्रवृत्ति अधिक उग्र रही और आधुनिक युग में सन्त मत के पुनरुद्धार की प्रवृत्ति जागी और स्वामी रामतीर्थ, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, सन्त शिरोमणि देवरहा बाबा, श्री श्री आनन्दमयी माँ तथा सन्त विनोबा भावे आदि सन्तों ने इस प्रवृत्ति को लोक-कल्याण की ओर मोड़ दिया तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को पुनः जागृत किया। सन्त साहित्य का मध्ययुग का उत्तरार्ध अर्थात् सं० १७०० से सं० १८५० वि० तक का काल विशेष महत्त्वपूर्ण है—प्रचार की दृष्टि से भी और रचनाओं के बाहुल्य की दृष्टि से भी। इस काल की सर्वाधिक विशेषता यह थी कि इसमें विविध मतों एवं सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया। सुन्दरदास और भीखा साहिब ने वेदान्त को तथा यारी साहिब ने बुल्लेशाह के सूफीमत को अभिन्न सिद्ध किया और धरनीदास और दूल्हनदास ने वैष्णव सम्प्रदायों की विचारधारा को अनेक अंशों में अपनाया। सन्त रामचरण ने जैन-धर्म के सदाचार के नियमों की दुहाई दी तो प्राणनाथ ने हिन्दू, इस्लाम और ईसाई धर्मों में एकत्व की भावना का प्रतिपादन किया। निष्कर्ष रूप में सभी धर्मों, सम्प्रदायों और दर्शनों का प्रतिनिधित्व सन्त साहित्य में हुआ। इस परम्परा में सन्त पानपदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सन्त पानपदास का जन्म सं० १७७५-७६ वि० माना जाता है परन्तु उनकी "बानी का संकलन अत्याधुनिक ही है—यह खेद की बात है। ग्रन्थ के लेखक सुधी डॉ० नरेन्द्र शर्मा ने इस सन्त की 'बानी' की समीक्षा प्रस्तुत कर अत्यन्त ही स्तुत्य कार्य किया है। सन्त पानपदास का सबसे अधिक वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने भारतीय साधना के सभी पक्षों को स्वानुभूति से परखा, देखा है। वास्तव में स्वानुभूत्यैकमान ही सन्तों का उपास्य होता है। उन्होंने सम्पूर्ण भारतीय साधना का लक्ष्य केवल मात्र लोक-कल्याण ही स्वीकार किया है। लेखक के शब्दों में, सन्त काव्य में पानपदास का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे निर्गुण मार्गी, वेदान्ती, योगी, सन्त एवं आत्मज्ञानी जीवनमुक्त थे। सन्त पानपदास कबीर की भाँति ही अनपढ़ थे। वे सत्संग के अवसर पर ही अपनी 'बानी' का प्रकाश करते थे। इसलिए न जाने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनकी कितनी अमूल्य वानियाँ आज भी अन्धकार के गर्त में हैं। लेखक के अनुसार इनकी १४४५ सखियाँ ही उपलब्ध हैं। डॉ० शर्मा ने बड़े ही परिश्रम और अध्यवसाय से सन्त पानपदास की बानी का सर्वांगीण अनुशीलन और अध्ययन किया है। एक प्रकार से देखा जाय तो डॉ० शर्मा को सन्त पानपदास को प्रकाश में लाने का सम्पूर्ण श्रेय है। कहना न होगा कि "हिन्दी का मध्ययुगीन भक्ति साहित्य-महोदधि अनेक साम्प्रदायिक धाराओं से आप्लावित है, परन्तु सभी धाराओं की मूल चेतना भारतीय संस्कृति का वह मूल-तत्त्व है, जिसके द्वारा भेद में अभेद और अभेद में भेद की दृष्टि प्राप्त होती है। सहिष्णुता और अध्यात्म इस सांस्कृतिक चेतना के मूल बिन्दु हैं। भारतीय और अभारतीय सभी साधनाओं का समावेश उसकी मूल चेतना में प्राप्त होता है। इस मूल चेतना को हृदयंगम किए बिना मध्ययुगीन साहित्य का अध्ययन कठिन ही नहीं, असम्भव सा है। जब तक गहरे पानी में पैठ नहीं होगी, इस महोदधि की लहरों को गिनने मात्र से ही पाठक को सन्तोष करना होगा।" डॉ० शर्मा एक शोधक ही नहीं, महत साधक भी हैं। मैं इन्हें बाल्यकाल से ही जानता हूँ, प्रारम्भ से ही उनकी रुचि भारतीय चेतना के स्वरूप को समझने में रही है और भौतिक उपलब्धियाँ और प्रपंचात्मक संसार की चक्रवापात से इन्होंने अपने को यथासाध्य अलग रखा है। स्वानुभूति ही इनका एकमात्र सम्बल है। प्रस्तुत ग्रन्थ उनकी साधना का प्रतिफल है। भारतीय साधना के सभी अंगों और पक्षों का अध्ययन किये बिना सन्त मत का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव नहीं है। मध्ययुगीन साहित्य में परिव्याप्त रहस्यवादी चेतना की व्याख्या सहज सम्भव नहीं है। मुझे सुखद आश्चर्य यह है कि डा० शर्मा ने किस प्रकार अनपढ़ और अनगढ़ सन्त पानपदास के साहित्य के मर्म को प्रकाशित किया और हिन्दी के साधारण पाठकों को उसे सुलभ कराया। कविता के माध्यम से समन्वयकारी सरल और सहज अभिव्यक्ति सन्त पानपदास की निराली विशेषता है। उनका काव्य समाज-सापेक्ष्य और भारतीय स्वस्थ परम्पराओं से जुड़ा है। राष्ट्रीय चेतना को उजागर करने का यह अमोघ अस्त्र है। सामाजिक, एकता और विविध सम्प्रदायों का समन्वय इसका मूल उद्देश्य है। प्रस्तुत ग्रन्थ के बारह सोपानों के द्वारा लेखक ने सन्त पानपदास की 'बानी' का गहन समीक्षात्मक अध्ययन किया है और उनके वचनों की संगति भारतीय साधना के सभी पक्षों से लगाने का सफल प्रयास किया है। 'बानी' के उद्धृत अंश बड़े ही सटीक हैं। संगति के साथ-साथ संक्षिप्त पृष्ठ-भूमि का प्रस्तुतीकरण भी महत्त्वपूर्ण है। परिशिष्ट के रूप में पानप की परिभाषाएँ प्रतिपाद्य को और भी स्पष्ट कर देती हैं।

मुझे विश्वास है कि हिन्दी जगत् में इस ग्रन्थ का समुचित स्वागत होगा। डॉ० शर्मा बधाई के पात्र हैं। मेरी शुभकामना है कि वे उदीयमान नक्षत्र के रूप में साहित्याकाश में देदीप्यमान हों।

डॉ० हरबंश लाल शर्मा
कुलपति
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

दिनांक : ३०-३-८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

अध्याय **पृष्ठ-संख्या**

उपक्रम १–१९

संतों की दार्शनिक विचारधारा—संत पानप, जीवन-वृतान्त और साधना-वैशिष्ट्य।

१. **अध्यात्म-दर्शन** २१–२६

२. **दार्शनिक पीठिका और पानप** २७–६०

श्रुति-सम्मत दर्शन एवं धर्म-शृंखला, श्रीमद्भगवद्गीता और पानप, शांकर वेदान्त और पानप, द्वैतवाद और पानप, द्वैताद्वैतवाद और पानप, वैष्णव मत और पानप, रामावत सम्प्रदाय और पानप, नास्तिक दार्शनिक प्रभाव—जैन-दर्शन और पानप, बौद्ध-दर्शन और पानप, पातंजल-योग-मार्ग और पानप, वज्रयान और पानप, सहजयान और पानप, कौल सम्प्रदाय और पानप, नाथ-सम्प्रदाय और पानप—नाथ-पंथ के दार्शनिक सिद्धान्त, नाथ-सम्प्रदाय की साधना-पद्धति और पानप, संत मत और पानप, इस्लाम-दर्शन का प्रभाव और पानप, सूफीमत और पानप, पानप पर पड़े हुए परिस्थितिजन्य और आध्यात्मिक प्रभावों का संक्षिप्तीकरण।

३. **ईश्वर-दर्शन (ब्रह्म)** ६१–८४

तात्त्विक जिज्ञासा, मूल-तत्त्व, ब्रह्म-परम्परा, पानप द्वारा ब्रह्म-वर्णन, ब्रह्म का व्यक्त रूप, ब्रह्म के अन्य स्वरूप, पानप की नाम-प्रियता, पानप के ब्रह्म-वर्णन की विशेषता।

४. **आत्म-दर्शन (जीवात्मा)** ८५–१०२

आत्म-परम्परा, पानप का आत्म-तत्त्व-वर्णन, आत्मा का एकत्व एवं अद्वैतता, आत्मा और ब्रह्म, विविध रूपकों द्वारा आत्म-वर्णन, आत्म का व्यक्त स्वरूप, आत्मा के दो स्वरूप, माया-भ्रमित जीवों की कोटियाँ, पानप द्वारा आत्म-वर्णन की विशेषता।

५. **माया** १०३–११५

मायावाद की परम्परा, पानप का माया-वर्णन—माया-तत्त्व, माया का स्वरूप और स्वभाव, माया का स्थान और विस्तार, माया और माया-पति, माया के भेद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | पृष्ठ-संख्या

६. **प्रकृति** ११७–१३४

सृष्टि-जिज्ञासा, जड़ जगत् का भौतिक स्वरूप, पानप द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति एवं विकास का वर्णन, कारण-कार्य-सम्बन्ध, विभिन्न वाद और पानप, पानप के जगत्-वर्णन का रहस्य ।

७. **मोक्ष** १३५–१४६

मोक्ष-परम्परा, पानप का मोक्ष-वर्णन, मुक्ति से सम्बद्ध पानप का विशिष्ट मन्तव्य, मुक्त-अवस्थाएँ ।

८. **ज्ञान-साधना (ज्ञान-योग)** १४७–१७०

ज्ञान-मीमांसा, पानप का ज्ञान-विचार, ज्ञान का स्वरूप, ज्ञान की कोटियाँ, ज्ञान का अबाधित्व, ज्ञान की स्वतः प्रामाण्यता, ज्ञान का परतः अप्रामाण्य सिद्धान्त, ज्ञान की श्रेणियाँ, सत्य ज्ञान की उपलब्धि, प्रामाणिक ज्ञान के स्रोत, ज्ञान प्रकाशक गुरु, ज्ञान-विचार की विशिष्टता ।

९. **योग-साधना (योग-मार्ग)** १७१–१८५

पानप की योग-युक्ति, यम-नियम, पानप के योग का वैशिष्ट्य ।

१०. **कर्म-साधना (कर्म-योग)** १८६–१९८

कर्म-वाद तथा जन्मान्तर व्यवस्था, नैतिक संयम, निष्काम-कर्म ।

११. **भक्ति-साधना (भक्ति-योग)** १९९–२२२

भक्ति-मार्ग, भक्ति की महत्ता, भक्ति-तत्त्व, पानप की निर्गुण भक्ति-साधना, निर्गुण अहेतुकी भक्ति, भक्ति-साधन, प्रेम-लक्षणा भक्ति, पानप की भक्ति की विशिष्टता ।

१२. **मध्यकालीन दार्शनिक शृङ्खला में पानप का स्थान** २२३–२२९

परिशिष्ट २३१–२४४

१. पानप रचित परिभाषाएँ
२. पुस्तक-सूची
३. पत्र-पत्रिकाएँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपक्रम

- सन्त
- सन्तों की दार्शनिक विचारधारा
- सन्त पानप
- जीवन-वृतान्त
- पानप की साधना का वैशिष्ट्य

घट मांही परमात्मा, ताकी करी न सोध।
कहै पानप यह पढ़ना, गुनना टुकड़ों का परमोध।।
परम पुरुष घट मांहि बिराजै, तासे नाहीं परचा।
कहै पानप बिन प्रभु के भेंटे, झूठी कथनी चरचा।।

आखिर चलना होयगा, तू आप ही चल जाहि।
जे जन आप ही सू ँ गए, पानप चलना होय न ताहि।।

सुगम है साध कहावना, कठिन संत की चाल।
पाँच बांध पानप कहै, गगन चढ़ै ततकाल।।
मानसरोवर मन कू ँ धोवै, मस्तग द्वावस तिलक संजोवै।।
डोर पवन की जल का बाणा, माल पिरोवे संत सयाणा।।

साधन सोई रहै मन साध, घट में देखै सोधै नाम।।
मन कू ँ मारै मन ही खाय, कहै पानप साधू बैकुंठ जाय।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्त

सन्त समदर्शी होता है, उसका चित्त शान्त एवं निश्चल होता है। मन विकार शून्य हो जाता है तथा किसी भी भाँति का भ्रम अथवा संशय उसके हृदय में नहीं रहता। उनका चित्त हरिभजन में तल्लीन रहता है। सत्य, सन्तोष एवं धैर्य से उसका हृदय परिपूर्ण होता है। ऐसे सन्त में काम, क्रोध, तृष्णा, मोह आदि विकार नाम-मात्र भी नहीं रहते। सदा-सर्वदा प्रफुल्ल मन से हरिभजन में लीन रहता है। वह कभी असत्य वचन नहीं बोलता और न किसी की निन्दा ही करता है और न स्तुति, ऐसा सन्त निर्भीक हो जाता है।

सन्त वासना, कामना और आसक्ति-रहित होता है। सभी प्राणियों को वह समदृष्टि से देखता है तथा सबके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करता है। वह निर्वैर होता है। प्रभु के प्रति अनन्य निष्ठा रखता है और विश्व के नामरूप तथा विषयों में निरासक्त रहता है। पानप ऐसे सन्तजन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।[1]

उक्त प्रकार के निष्काम कर्मयोगी को न तो शोक ही होता है, न हर्ष ही। उसे न उत्साह ही होता है और न कोई निराशा ही। पानप की दृष्टि में ऐसा सन्त भगवत् समान होता है।[2]

पानप ने जगत् में रहते हुए ऐसे परम सन्त को श्रेष्ठ कहा है जो निष्काम कर्म करते हुए, जगत्-व्यवहारों से जूझते हुए, जगत् के विकारों से लोहा लेते हुए भगवद्भक्ति में मन को लगाता है। उनका मत है कि बिना कर्म किए कोई क्षण भर भी नहीं रह सकता है और जब कर्म किया जाता है तो उसकी भलाई भी पल्ले पड़ती है, फिर भी कर्म करने वाला मनुष्य उनसे अच्छा है जो निष्क्रिय रहते हैं, कर्म करते हुए भी जो हरिभक्ति में तल्लीन रहता है वही धन्य है।[3]

---

१. पानप बोध—१२·१७
२. ,, १२·४
३. ,, १२·६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन को निरासक्त, निस्पृह, निर्विषय, निर्वैर करके कर्म करना ही जीवन का लक्ष्य है।

पानप का सन्त परमभक्त है, परन्तु वह संन्यास लेकर वन में जाकर तपस्या नहीं करता है, उनका सन्त तो गृह-त्याग अथवा संसार के व्यवहार से दूर जंगल में चले जाने वालों को भी वापस लाता है और सच्चे गृहस्थ-धर्म का पालन करना सिखाता है। सन्त गृहस्थ-जीवन एवं उसके भोग में रहता हुआ भी योगी होता है। इस सन्त के घर ही में मुक्ति होती है और मुक्ति में ही घर होता है। इस सन्त का व्यवहार सहज, सरल एवं स्वाभाविक होता है। किसी आडम्बर की उसे आवश्यकता नहीं होती और इसके सभी कार्य सहज रूप में स्वतः यंत्रवत् होते रहते हैं। यह ब्रह्म में तल्लीन रहता है। द्वैत-भाव विनष्ट हो जाता है, सन्त को सभी वस्तुओं में एकत्व एवं अद्वैत तत्त्व के दर्शन होते हैं और उसी आत्म-दर्शन में वह तल्लीन हो जाता है।

पानप के निष्काम सन्त की दृष्टि जन-जीवन के सम्प्रदाय, मत-मतान्तर, अन्ध-विश्वास एवं बाह्योपचार की ओर नहीं जाती है। इन सभी के द्वारा भेद-प्रभेद का प्रचलन किया जाता है। सामान्यतया मुल्ला, काज़ी, योगी-यति, पंडित के भाँति-भाँति के उपदेशों के द्वारा भी विषमता ही प्रसारित की जाती है।[१] पानप के सन्त के द्वारा अनेकत्व में एकत्व स्थापित किया जाता है। द्वैत-भाव को नष्ट करना चाहिए। सबके हृदय में प्रभु का वास है, वह सर्वत्र व्याप्त है। उसको राम, अल्लाह, गोरख, हरि अथवा हर सब कुछ कहा जा सकता है, जिस नाम से पुकारो सब उसी का नाम है। इन बातों पर परस्पर विवाद करना व्यर्थ है यही पानप का उपदेश है, यही पानप की शिक्षा है।[२]

निरासक्त योगी को सभी प्राणियों में एक ही आत्मा के दर्शन होते हैं। वे सब उसके लिए एक समान हैं। साधुजन की सेवा करके वह प्रत्यक्ष रूप में देव-दर्शन का पुण्य लूटता है। पत्थर-मूर्ति के स्थान पर प्रत्यक्ष नरहरि की सेवा करके वह भगवद्-भक्ति का आनन्द पाता है।

नर-नारायण की सेवा करके वह लाभान्वित होता है। समाज में फैले हुए बाह्याडम्बरों का निराकरण करके सन्त एकत्व की स्थापना करता है। इतना ही नहीं मनुष्य-मनुष्य के बीच विषमता होती है। वर्ण, विभेद, ऊँच-नीच का भेद-भाव और जाति-प्रथा का विरोध करके सन्त सभी लोगों को परस्पर सद्भावना के साथ रहने का उपदेश करता है।

सन्तों की दार्शनिक विचारधारा

संतत्व की परिभाषा करना सम्भवतः असम्भव है, अतः संत को यथार्थ रूप में जानना तथा परखना भी सरल नहीं है। यों तो संसार के प्रत्येक भाग में समय-

---

१. पानप बोध—११·१०

२. ,, १७·१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय पर अनेक संत प्रकट होते रहते हैं और लोगों ने उन्हें जानने-परखने का प्रयास भी किया है, किन्तु इस धरती पर सदा ही कुछ ऐसे संत रहते हैं जो जन-जीवन से दूर, एकान्त में आत्मकाम तथा आत्माराम की भाँति स्वयं में स्थित रहने के कारण अपरिचित बने रहते हैं फिर भी उनकी उपस्थिति का योगदान अप्रत्यक्ष रूप से जन-जीवन को प्राप्त हो ही जाता है।

परोपकार सन्तों का वह विशेष लक्षण होता है जिसके आधार पर उन्हें पहचानने में कुछ सहायता मिलती है, उनका जीवन अपने हित तथा स्वार्थ के लिए नहीं वरन् परहित के लिए दीन-दुखियों की सेवा के लिए तथा चराचर से प्रेम के लिए होता है। वे 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में विश्वास करते हुए उसके अनुरूप आचरण करते हैं।

उपर्युक्त भाववाली संत-परम्परा में—कबीरदास, नानकदेव, गरीबदास, गुलाल साहब, चरणदास, जगजीवन साहब, तुलसी साहब (हाथरस वाले), दरिया साहब (बिहार वाले), दरिया साहब (मारवाड़ वाले), दादूदयाल, दूलनदास, धरनी दास, नानक साहब, पलटू साहब, बुल्ला साहब, भीखा साहब, मूलकदास, सुन्दरदास, यारी साहब, रज्जब साहब और रैदास आदि अनेक संत हैं।

उक्त सभी संतों में सामान्य लक्षण एक ही हैं और लगभग एक ही प्रकार की विचारधारा मिलती है, यहाँ तक की उनकी शब्दावली में भी अनेक शब्द—उनमन, प्राणायाम, मुद्रा, समाधि, वैराग्य और अनहद आदि भी समान ही हैं।

इस प्रकार से संत वासना, कामना और आसक्ति रहित होता है। वह निर्वैर होता है, प्रभु के प्रति अनन्य निष्ठा रखता है। पानप ऐसे सन्त जन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और ऐसा संत जन भगवत् समान होता है।[1]

सभी सन्तों ने एक ही सत्य पर बल दिया है। भले ही उनकी व्याख्या की भाषा भिन्न-भिन्न रही तथा उनके बलाधान में भी अन्तर रहा, किन्तु उनका जोर उनकी जीवनकालीन परिस्थिति के अनुकूल सत्य के एक अथवा एकाधिक पहलुओं पर था। अतः इससे ऐसा नहीं प्रतीत होता कि मानों धर्म-सम्प्रदाय एक-दूसरे से सर्वथा अलग-अलग हैं तथा उनमें कोई सामान्य तत्त्व है ही नहीं, क्योंकि ऐसा सोचना धर्म-सम्प्रदाय के यथार्थ की दिशा में उपगमन का उपहास-विषय ही हो जाएगा। इसलिए सन्तों की दार्शनिक विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में ब्रह्म, जीवात्मा, माया, प्रकृति, मोक्ष (मुक्ति) ज्ञान, योग, कर्म एवं भक्ति की विचारधारा अनिवार्य हो जाती है।

सन्तों की दार्शनिक विचारधारा के अनुसार पानप के निष्काम सन्त की दृष्टि जन-जीवन के सम्प्रदाय, मत-मतान्तर, अन्ध-विश्वास एवं बाह्योपचार की ओर नहीं

---

१. पानप बोध—१७·१५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाती है ।[१] सन्त का व्यवहार सहज, सरल एवं स्वाभाविक होता है । किसी आडम्बर की उसे आवश्यकता नहीं होती है और इसके सभी कार्य सहज रूप में स्वतः यंत्रवत् होते रहते हैं, ब्रह्म में तल्लीन रहता है, द्वैतभाव विनष्ट हो जाता है, सभी वस्तुओं में एकत्व एवं अद्वैततत्त्व के दर्शन होते हैं ।

सन्तों की दार्शनिक विचारधारा के अनुकूल प्रत्येक सन्त को सभी प्राणियों में एक ही आत्मा के दर्शन होते हैं । वे सब उसके लिए एक समान हैं । साधु-जन की सेवा करके वह प्रत्यक्ष रूप में देव-दर्शन का पुण्य लूटता है । पत्थर-मूर्ति के स्थान पर प्रत्यक्ष नर-हरि की सेवा करके वह भगवत् भक्ति का आनन्द पाता है ।

सन्त पानप

चिन्तन एवं अनुभूति मानव-जीवन एवं समाज के दो पक्ष, दो स्तम्भ हैं । इनमें से एक का सम्बन्ध आध्यात्मिक उपलब्धियों और द्वितीय का सम्बन्ध सामाजिक जीवन की उपलब्धियों से है । सन्त-साहित्य का सम्बन्ध इन दोनों से माना जाता है । तात्पर्य है कि वह चिन्तन प्रधान भी है और अनुभूति प्रधान भी । सन्त-साहित्य के महान् सागर में चिन्तन का अगाध जल भरा हुआ है और उसमें अनुभूति की उत्ताल उर्मियाँ दृष्टिगत होती हैं । सन्तों की अभिव्यक्ति का आधार है उनकी अनुभूति । यह अनुभूति बहुमुखी है—कभी वह समाज की अनुभूति है, कभी जीवन की, कभी दार्शनिक जगत् की, कभी ब्रह्मानुभूति । कबीर ने तो बहुत ही स्पष्टतया कहा है—

'तू कहता है कागद लेखी, मैं कहता हूँ आँखिन देखी'

अनुभूत तत्त्वों पर इन्होंने बड़ा ही बल दिया है । कबीर की ही भाँति पानप भी अनुभूत तत्त्वों पर ही बल देते हैं । जीवन को निकट से देखकर उसके सामान्य तथा असामान्य तत्त्वों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया है जिसने, ऐसे थे—सन्त पानपदास । वे मानव-जीवन के अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वदर्शी थे और समीक्षक थे । सन्त कबीर के द्वारा जिस शाखा का प्रादुर्भाव हुआ, उसकी परम्परा किसी न किसी रूप में आज भी अक्षुण्ण है । सन्तों ने इसके प्रसार में योगदान करते हुए इसकी विभिन्न शाखाओं को जन्म दिया । यद्यपि इन सबका मूल एक है और मन्तव्य भी एक है, तथापि थोड़े-बहुत अन्तर के साथ इन सबका पृथक्-पृथक् महत्त्व है ।

कबीर-पंथ के समान ही एक स्वतन्त्र पंथ को जन्म देते हैं—सन्त पानपदास । सन्त पानपदास जी के नाम पर ही 'पानप-पंथ' चला है । अन्य सन्तों के समान ही पानपदास जी का जीवन-वृत्त भी अँधेरे में पड़ा है । इनका सम्पूर्ण-साहित्य व्यवस्थित रूप में प्रकाशित नहीं हो पाया है, जिनके कारण इनके पंथ पर अधिकतर विद्वानों की दृष्टि नहीं पड़ी । जिन विद्वानों ने सन्त पानपदास को चर्चित किया है उनका

---

१. पानप बानी—१४·११ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण निम्न प्रकार है, यद्यपि जी भी उल्लेख मिला है वह अपर्याप्त है और संदिग्ध है, तथापि उस पर ही संतोष करना पड़ता है क्योंकि अन्य कोई भी प्रामाणिक स्रोत उपलब्ध नहीं होता।

१.	उत्तर भारत की सन्त परम्परा	—पं० परशुराम चतुर्वेदी
२.	हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	—डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
३.	भक्त-बोध	—श्री स्वामी स्वरूपदास
४.	पानप-बानी (वाणी ग्रन्थ)	—श्री महन्त स्वरूपदास
५.	पानप-बोध	—श्री चन्द्रप्रकाश
६.	सुषमवेद	—स्वामी परमानन्द
७.	महान् योगी की जीवन-साधना	—श्री त्रिवेनीदास जी
८.	कबीर-मन्शूर	—स्वामी परमानन्द
९.	सन्त माल (सन्त-समागम जिल्द-३)	—महर्षि शिवव्रत लाल
१०.	'साहित्य संदेश' जुलाई-अगस्त १९५८ (लेख)	—श्री वेद प्रकाश गर्ग
११.	हिन्दी अनुशीलन वर्ष १० अंक ४ १९५७ (लेख)	—श्री वेद प्रकाश गर्ग
१२.	सप्ताहिक हिन्दुस्तान २३ मार्च १९५८ (लेख)	—श्री रामकृष्ण शर्मा
१३.	कल्याण	—सन्त अंक
१४.	हिन्दी साहित्य परिषद् पत्रिका अंक १, सन् १९६६	—श्री श्यामबहादुर वर्मा
१५.	'विज्ञानी' अगस्त १९१६	—मुंशी गौरी लाल 'अख्तर'

जीवन-वृतान्त

सन्त पानप का जन्म पं० परशुराम चतुर्वेदी[1] के अनुसार विक्रम सं० १७१६ के अन्तर्गत हुआ था, किन्तु पानप-बानी की संवत् १९४२ मे की गई धामपुर वाली प्रतिलिपि के आरम्भ में लिखे विवरण में इनका संवत् १७:५ में प्रकट होना लिखा है। पानपदास जी की धामपुर स्थित बागवाली समाधि पर लगे हुए शिलालेख में संवत् १७९६ में विद्यमान होने का उल्लेख है। डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल[2] ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' में उल्लिखित 'कबीर मन्शूर'[3] के आधार पर इनका बहुत ही संक्षिप्त परिचय देते हुए ईसवी सन् की अठारहवीं शताब्दी

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा प्र० संस्करण पृ० ६११।
२. डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० ४४१।
३. डा० बड़थ्वाल द्वारा लिखित 'हिन्दी काव्य में नि० स० में उद्धृत' कबीर मन्शूर', भाग १, पृ० ५३७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में इनके होने का अनुमान किया है। संवत् २००४-०६ की 'खोज-रिपोर्ट'[१] में भी वि० संवत् की १८वीं शताब्दी में इनके वर्तमान होने की बात लिखी है। श्री चन्द्रप्रकाश द्वारा सम्पादित पानप बोध[२] के प्रारम्भिक भाग में पानपदास जी को सम्वत् १७७६ तदनुसार सन् १७२० ई० में प्रकट होना बताया है। श्री श्याम बहादुर वर्मा[३] ने जन्म संवत् के मतभेद की चर्चा की है किन्तु वे भी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाए।

श्री वेद प्रकाश गर्ग ने भी संत पानपदास तथा उनकी बानी[४] शीर्षक लेख में जन्म-तिथि का वर्णन किया है किन्तु उससे भी कोई तात्त्विक निर्णय नहीं होता।

वास्तविकता यह है कि जिस प्रकार कबीर की जन्म-तिथि संदिग्ध है ठीक उसी प्रकार की स्थिति पानप के बारे में मानी जा सकती है।

सन्त पानपदास जी को प्रायः सभी लेखकों ने राजा बीरबल के वंश में उत्पन्न होने के कारण जाति से ब्रह्म भट्ट माना है। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि जिस व्यक्ति के माता-पिता और जन्म-स्थान आदि का भी पता नहीं चलता उसकी जाति-निर्धारित करना कैसे सम्भव है ?

जैसा कि पहले कहा है कि पानपदास जी का जन्म-स्थान विवादास्पद है किन्तु जान पड़ता है कि इनका निवास-स्थल दिल्ली के निकट कहीं उत्तर-प्रदेश में ही था, इसका आधार उनकी रचनाओं की भाषा है। डा० बड़थ्वाल ने इन्हें बिजनौर जिले के 'नगीना धामपुर' का निवासी लिखा है। वस्तुतः ये दो पृथक्-पृथक् स्थान हैं, एक नहीं हैं। इनके अनुयायी इनका निकास तिजारे (अलवर) से बतलाते हैं। पानपदास जी का अन्तिम समय धामपुर में व्यतीत हुआ है इसका प्रमाण उनकी समाधि पर अंकित उत्कीर्ण लेख है।

कहा जाता है कि जब मुहम्मदशाह बादशाह का भारत पर शासन था उस सन्त पानपदास उत्पन्न हुए थे। उस देश में एक बार दुर्भिक्ष पड़ा जिसके कारण सन्त पानपदास के माता-पिता रास्ते के किनारे किसी वृक्ष के नीचे इनको सुलाकर कन्द-मूल की खोज में चले गए, उसी समय अकस्मात् वहाँ पर कई तिरषान[६] (मकान

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५८ अंक १-२ में प्रकाशित प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थों की खोज (संवत् २००४-०६) पृ० ११०।
२. श्री चन्द्रप्रकाश-पानपबोध पृ० 'ध'।
३. श्री श्यामबहादुर वर्मा सन्तकवि पानपदास (लेख) पृ० ५।
४. श्री वेद प्रकाश गर्ग हिन्दी अनुशीलन (वर्ष १० अंक ४) पृ० ५४।
५. डा० बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० ४४१।
६. महर्षि शिवव्रत लाल ने अपनी 'सन्त-माल' में (पृ० १८९) 'तिरषान' के स्थान पर 'मीमार' (राज) जाति की चर्चा की है और लिखा है कि इन्हें पालने वाले व्यक्ति ने इसी कारण इन्हें १४-१५ वर्ष की अवस्था से ही राजगीरी का काम सिखला दिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाने वाले) आ निकले, एक तिरखान उनमें से सन्तानहीन था, मन में उसे यह विश्वास हुआ कि परमात्मा ने यह बालक दिया है, तुरन्त अपनी गोद में लेकर अपने घर ले गया, उसकी पत्नी भी बालक को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुई और दोनों प्रेम-पूर्वक इसका पालन-पोषण करने लगे। जिस दिन ये उसके घर आए तब से वहाँ आनन्द-मंगल होने लगा। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि आज तक यह नहीं ज्ञात हो पाया कि सन्त पानपदास के उन पालक माता-पिता का क्या नाम-पता था।

लगता है कि बालक पानप को बड़े हो जाने पर भी कोई विधिवत् शिक्षा नहीं मिली थी, इसके प्रमाण उनकी रचनाओं में हैं जो अर्द्ध-संस्कृत, अर्द्ध-फारसी और अन्य मिश्रित भाषा युक्त हैं। आगे तो उनका व्यवसाय शिल्प-हीन कार्य ही रहा। राजगीरी के काम में इनकी अच्छी ख्याति हुई, किन्तु इनकी भेंट किसी कबीर-पंथी से हो गई, जिसने इनसे अन्य बातों के साथ-साथ एक महात्मा के विषय में भी कुछ चर्चा की और जिसने इनका ध्यान उनके दर्शनों की ओर प्रवृत्त कर दिया। ये महात्मा 'मंगनी राम'[1] के नाम से प्रसिद्ध थे (कुछ लोग तिजारे वाले और काशी वाले मंगनी राम को अलग-अलग दो व्यक्ति मानते हैं) और तत्कालीन अलवर राज्य के अन्तर्गत 'तिजारा' नामक गाँव में रहा करते थे। वे सदैव भगवान के चिन्तन में लगे रहते और अपनी वेश-भूषा साधारण पागलों की-सी बनाए रखते थे। सर्वसाधारण उनके महत्त्व को पहचान नहीं पाते थे। पानपदास उनके दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हुए और उनसे दीक्षित होकर पुनः अपने मूल-कार्य में लग गए। महात्मा मंगनीराम जी के सर्वप्रथम शिष्य पानपदास ही माने जाते हैं। महात्मा मंगनीराम जी की आयु लगभग २०० वर्ष बताई जाती है और आपके प्राण ब्रह्मरंध्र द्वारा निकले।

एक बार वे संयोगवश कार्य की खोज में धामपुर (जिला बिजनौर) पहुँचे, जहाँ पर किसी साहूकार का मकान बन रहा था और अवसर पाकर ये वहीं अन्य कारीगरों के साथ काम करने लगे। उस मकान की चिनाई अभी समाप्त नहीं हुई थी कि एक दिन इनसे वहीं किसी महात्मा की भेंट हो गई। महात्मा ने पानपदास जी को चिनाई करते देखकर कुछ संकेत किया, जिसका उत्तर पानपदास जी ने यह दिया—

तिरकोनी गुनिया दौड़ावै, महल साध के ठीक करै।
नाम धुनि की बिसोली लगावै, ज्ञान ध्यान की ईंट धरै॥

---

१. कल्याण वर्ष १०, संख्या ३ (आश्विन १९९२, अक्टूबर १९३५) पृ० सं० ८८३ पर उल्लिखित है महात्मा मंगनीराम जी (चित्र पृ० ७८९) काशी के बहुत उच्च श्रेणी के प्रसिद्ध महात्मा पुरुष।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महात्मा जी के पूछने पर आपने अपना नाम 'पानप' बतलाया और पानप शब्द की व्याख्या यह की—

पानप सो जो पी पण गहै, पी की छाँड़ और नहीं कहै।
अर्ध उर्ध विच अम्रत पीवै, कहै पानप से जुग-जुग जीवै ॥

फिर मुस्करा कर बोले—

गगन मण्डल में बाट चलावै, ईंटें नाहीं घड़ता है।
दुनियाँ कूँ बैठा सुलझावै, यमसूं नाहीं डरता है ॥
गुरु के ज्ञान रैन और बासर, चंचल मन पकड़ता है।
भवसागर कूं नाम के जोरे, बिन नौका पार उतरता है ॥

इन मार्मिक शब्दों को सुनकर महात्मा जी प्रसन्न हुए और कहा—'अब प्रकट होकर अपने उपदेशों से जीवों का कल्याण करो तदनन्तर पानपदास जी पुनः गुरु-सेवा में लौट गए और वहाँ सत्संग करने लगे।

गुरू मंगनी राम जी से आशीर्वाद पाकर पानपदास जी दिल्ली पधारे वहाँ एकान्त में साधना करने लगे। आपके अभ्यास की रीति-युक्ति का वर्णन इस प्रकार है—

सबद मुरसिद दिया प्रेम प्याला, भया मन मस्त तन गश्त दीनी।
पाँच पचीसों का मूल एक पवन है, बाँध सन्त संधधर रमन कीनी ॥
नाभ की नाल में ख्याल एक अजब है, दण्ड सुधा किए वस्तु चीन्हीं।
पानपदास कहै द्वार दसवें रहै, जीवित मुक्त लहै सिफत कीन्हीं ॥
झिरे अमरित कनी पीव तजकर मनी, होय मन मगन तन अमल छावै।
राम के रंग में तन राचा रहै, अचल होय मन नहीं चलन पावै ॥
मेरु को फेर सुमेर ऊपर धरै, खुले दल अष्ट जब दरस पावै।
दास पानप कहै शब्द-धुन रच रहै, सुरत को फेर उस धर समावै ॥
हंस सूं हंस मिल केलि करैं, केलि कर ममत को नीर त्यागे।
दास पानप कहै हंस मुक्ता चुगे, सरोवर मान के तीर लागे ॥

कुछ समय बाद पानपदास जी ने अपने मत के प्रचार के निमित्त सत्संग आरम्भ किया, वहीं रहकर इन्होंने आध्यात्मिक उपदेश प्रकट रूप में दिए (दिल्ली में इस पंथ की एक गद्दी तेली बाड़े, बहादुर गढ़ रोड पर है)।

दिल्ली से चलकर पानपदास जी हल्दौर (यहाँ पर भी पंथ की एक गद्दी है) आदि होते हुए पुनः धामपुर पधारे यहाँ की जनता में साधुओं के प्रति श्रद्धा न दृष्टिगत हुई। इस कारण पानपदास जी फिर अपने राजगीरी के काम को करने लगे। किंवदन्ती है कि वहाँ एक वैश्य का मकान बन रहा था आप भी चिनाई करने लगे, काम तत्परता और लगन से करते थे इस कारण दूसरे राज व कर्मचारी इनसे द्वेष मानते थे और लोगों ने जान-बूझकर मकान की दीवार टेढ़ी कर दी, दोषी पानपदास जी को ठहराया। वह वैश्य पानपदास जी पर रुष्ट हो गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और बुरा-भला कहने लगा। पानपदास जी ने इस अनुचित व्यवहार को सहन किया और कुछ सोच-विचार कर कहा—'घबराइए नहीं, इस दीवार को अभी सीधी कर देता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने अपना हाथ दीवार की ओर कर दिया। देखते ही देखते दीवार सीधी हो गई। इस अलौकिक चमत्कार का जो प्रभाव होना चाहिए था वह हुआ और उसी दिन से पानपदास, सन्त पानपदास हो गए। इस प्रकार की अनेक दन्त-कथाएँ इस प्रदेश में आज भी प्रचलित हैं, यहाँ उन सबकी चर्चा व्यर्थ होगी।

धामपुर को प्रधान केन्द्र मानकर पानपदास वहाँ से अन्य स्थानों के लिए भी विचरण कर देते थे, जहाँ उनकी अनेक छोटी-बड़ी गद्दियाँ बताई जाती हैं—धामपुर, दिल्ली, ओयल, बावरी, तिजारा (खोज-कार्य से सिलसिले में मैंने देखा कि अब वहाँ इस पंथ की कोई भी गद्दी नहीं है) करतारपुर, अब्बूवाल (वन में १२ कोस दक्षिण में), सोना नगीना (गुड़गाँव), जलालाबाद (मुजफ्फरनगर) हल्दौर (जि० बिजनौर)। यह उल्लेखनीय है कि पानप-पंथ का प्रचार पंजाब-प्रदेश एवं उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रान्त आदि की ओर अधिक था तथा वहाँ बीसियों गुरुद्वारे डेरा इस्माइल खाँ, डेरा गाजी खाँ आदि में थे पर पाकिस्तान बनने पर वे सब नष्ट हो गए। दुःख की बात है कि समुचित व्यवस्था के अभाव में वर्तमान गद्दियों में से अनेक बन्द होने की स्थिति में आती जा रही हैं।

सन्त पानपदास जी के प्रमुख शिष्यों में से थे—काशीदास जी, मनसादास जी, चूहड़दास जी और बुद्धिदास जी। कालीदास जी एक बैरागी महन्त थे लेकिन वे गुरुसेवा में आ गए थे। चूहड़दास जी ने पंजाब में जाकर पानप-पंथ का प्रचार किया। बुद्धिदास जी के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता। मनसादास जी हल्दौर में प्रथम महन्त बने अथवा धामपुर में, यह एक विवादास्पद विषय है। सन्त पानप दास से लेकर वर्तमान महन्त रामस्वरूप जी तक धामपुर की गद्दी परम्परा भी विवादास्पद है, जो मेरे अध्ययन का विवेच्य विषय नहीं है।

सन्त पानपदास जी का देहान्त संवत् १८३० की फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को हुआ था। इस तिथि को प्रतिवर्ष इनके अनुयायी बड़े समारोह के साथ 'भण्डारा' करते हैं और 'बानी' का पूजन और पाठ करते हैं। सन्त पानपदास जी की और इनके गुरू मंगनीराम जी की (जो अन्तिम दिनों पानपदास जी के साथ ही रहे) और प्रिय शिष्य काशीदास जी की तथा अन्य शिष्य, प्रशिष्यों की समाधियाँ धामपुर में एक बड़े अहाते में सुन्दर रूप में बनी हुई हैं। कहा जाता है कि उक्त अहाते की भूमि नजीबुद्दौला द्वारा भेंट की गई थी।

पानपपंथी साधकों में यह उक्ति प्रचलित है—

नानक पानपदास कबीरा।
सबल सृष्टि का एक सरीरा॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पंथ के अनुयायियों से वार्तालाप करते समय पता चला कि पानपपंथी अपना मूल-सम्बन्ध (निकास) 'हरिव्यासी शाखा' के प्रवर्त्तक निम्बार्क-सम्प्रदायी श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के शिष्य स्वयंभू देवाचार्य जी से बतलाते हैं। इस पंथ के अनुयायी परस्पर मिलने पर राम-राम का ही उच्चारण करते हैं और चिट्ठी-पत्री में भी राम-राम लिखा जाता है यही नहीं उसे ही गुरु-मन्त्र कहते हैं।

सन्त पानपदास की बानियों की अनेक हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ विभिन्न गद्दियों में 'बानी-ग्रन्थ' के रूप में स्थापित हैं। अनेक हस्तलिखित गुटके और हस्तलिखित 'बानी-ग्रन्थ' देखने के मुझे अवसर मिले।

मुजफ्फरनगर में एक हस्तलिखित सम्पूर्ण बाणी-ग्रन्थ पानपदास जी के भक्त के पास है जिसको मैंने उन्हीं के निवास-स्थान पर रहकर काफी दिन पढ़ा इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि वि० संवत् १८३६ में की गई है। आरम्भ में विषय-सूची सब बानियों की एक साथ ही दी हुई है। अन्त में तिथि का भी उल्लेख है—श्रावन मास संवत् १८०१ इत्यादि। मोटा देशी कागज है—बाँस या पुरानी रद्दी और गूदड़ आदि का बना हुआ। लिपि देवनागरी है, पर बहुत से अक्षरों और अंकों पर गुरुमुखी की छाप है। भाषा सधुक्कड़ी है। स्वच्छतापूर्वक चारों ओर हाशिया छोड़कर लिखा है। अक्षर कहीं काटकर संशोधित नहीं किए गए हैं, वरन् उन्हें एक पीले लेप से ढँक दिया गया है। गाढ़ी चमकदार काली और लाल रोशनाई का प्रयोग किया गया है। पृष्ठ का आकार बारह-दस का है।

सन्त पानपदास रचित 'बानी-ग्रन्थ' की एक ऐसी हस्तलिपि देखी जो गुरुमुखी लिपि में थी, उसका अधिकांश प्रारम्भ और अन्त का नष्ट हो चुका था।

सन्त पानपदास जी की बानियों के कुछ अंश उद्धृत हैं—

रैन बसे थे आप के, उठ चलना परभात।
पानपदास बटेऊआ, प्रीति करै किस साथ॥
हम काहू के मीत ना, हमरा मीत न कोय।
कहै पानप है मीत वो, जो राम सनेही होय॥
लौ लागी छूटे नहीं, जैसे चन्द्र चकोर।
पानप को जब गुर मिले, बढ़े प्रेम की ओर॥
चोट करत है और को, ते नर मूढ़ अजान।
कहै पानप सोई सूरमा, मारै अपना मान॥
मन गया तो क्या रहा, जहं मन तहं तन जाय।
कहै पानप वह सन्त जन, मन राखें ठहराय॥

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के तिहत्तरवें वार्षिक विवरण संवत् २०२२ वि० की हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थों की खोज में क्रमसंख्या २८ पर पानपदास की

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

वाणी की एक प्रतिलिपि का लिपिकाल विक्रम संवत् १८५५ अंकित है ऐसी ही एक अन्य प्रतिलिपि नागरी प्रचारिणी सभा काशी के इकहत्तरवें वार्षिक विवरण (संवत् २०२० वि०) की पृ० संख्या ३१ पर 'पानपदास का पानप-बोध' की प्रतिलिपि का लिपिकाल संवत् १८३६ वि० अंकित है।

पानप की साधना का वैशिष्ट्य

भारतीय साधना-पक्ष अपना वृहद् इतिहास रखता है। साधना-पक्ष की चार प्रख्यात धाराएँ—ज्ञान, योग, भक्ति एवं कर्म आदि पृथक्-पृथक् अपनी महत्ता प्रतिपादित करती हैं।

पानप के युग में मुस्लिम सभ्यता एवं धर्म भारत में विस्तार पा रहे थे। मुस्लिम-साधना पर भारतीय साधना का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और भारतीय साधना पर मुस्लिम-साधना एवं विचारों का प्रभाव होना स्वाभाविक था।

अपनी स्वानुभूति पर किसी तथ्य को परखना पानप के स्वभाव का वैशिष्ट्य था। भारतीय साधना-पक्ष से परिचय प्राप्त कर पानप ने उनका परीक्षण किया। उनका सम्पूर्ण जीवन साधना करने में ही व्यतीत हुआ था।

पानप की साधना की विशिष्टता है क्लिष्टता से सरलता की ओर उन्मुख होना। साधना के आडम्बरपूर्ण एवं मिथ्या स्वरूप को पानप ने रंच भी नहीं स्वीकार किया। उनका सदैव यह मत रहा है कि दार्शनिक तथ्य तथा साधना-पद्धति जनसाधारण के लाभ की तथा लोकोपयुक्त होनी चाहिए।

पानप की साधना क्रमानुसार एवं व्यवस्थित रूप में है। सद्गुरु की सेवा में रहकर उन्होंने ज्ञान-विचार किया। मन अथवा बुद्धि के द्वारा हम तत्त्व के गुण, स्वर आदि का विचार कर सकते हैं और बुद्धि की जहाँ तक पहुँच है, वहाँ तक ज्ञान-विचार में अग्रसर हो सकते हैं। बुद्धि को चरम सत्य के अन्वेषण के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। ज्ञान-विचार से मन अथवा बुद्धि प्रखर, सबल तथा तीव्र होते हैं और उनका स्वरूप निखर आता है। इसीलिए पानप ने ज्ञान-विचार को मन एवं बुद्धि को शुद्ध करने के लिए अत्यावश्यक बताया है।

बुद्धि हमारा मार्ग स्वच्छ कर सकती है, नामरूपात्मक जगत् एवं पदार्थों का हमें ज्ञान करा सकती है, किन्तु वह जीवन की अतल गहराई अथवा चरम-तत्त्व के स्वरूप का प्रत्यक्ष करा सकने में असमर्थ है। ज्ञान-साधना के द्वारा पानप ने इस बात को भली-भाँति समझ लिया और ज्ञान-विचार के चरम सत्य तथा माया की जानकारी तो हो गई परन्तु मन की चंचलता में विशेष सुधार न हो सका।

मन को विकार शून्य करने तथा उसकी चंचलता और उत्पात का निराकरण करने के लिए कबीर ने जैसे योग-साधना को अपनाया था वैसे ही पानप ने भी अपनाया है। पानप के युग में कई योग-पद्धतियों का प्रचलन था। उन सबका पानप ने परिचय प्राप्त किया और पर्याप्त समय सुरति-योग एवं सहज-योग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि की साधना की। क्लिष्ट योग-साधनाओं के स्थानों पर योग-युक्ति का प्रतिपादन किया।

योग साधना से काया सशक्त एवं परिशुद्ध होती है। साधक का मन संयमित तथा केन्द्रीभूत होने का अभ्यासी हो जाता है। मन विकार शून्य होने लगता है, पर यह इतना अनूठा है कि मृत दीखता हुआ भी, माया में उलझा पड़ता है। मन ज्ञानवान होता हुआ भी अपने स्वभाव से चंचल होने के कारण अवगुणों की ओर उन्मुख होता है, हाथ में प्रकाश लेते हुए भी कुएँ में गिर पड़ता है अर्थात् सब कुछ जानता हुआ भी माया में फँस जाता है।

मन केन्द्रीभूत होकर विश्व के महान् केन्द्र ब्रह्म अथवा आत्मा में संयुजित रहे और सत्य स्वरूप में अवस्थित हो जाए इस विचार से पानप ने भक्ति की साधना की।

हमारा हृदय भाव दशाओं का आगार है। भावों के द्वारा हम चरम सत्य का तादात्म्य प्राप्त कर सकते हैं। हमारे भाव परिशुद्ध होकर ही परम पवित्र एवं निराकार देव का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। अतएव पानप ने भावों को परिशुद्ध एवं केन्द्रीभूत करने के लिए भाव-भक्ति की साधना की। भाव-भक्ति भी निष्काम प्रेम भक्ति है।

इस प्रकार पानप ने ज्ञान, योग तथा भक्ति-साधना के द्वारा मन, बुद्धि, हृदय एवं भाव-जगत आदि को परिशुद्ध किया और सभी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करके उन्हें वासना-रहित, निरासक्त, निर्वैर और निर्विषय किया।

पानप सिद्ध पुरुष हो गए। अपनी सिद्धावस्था में उन्होंने प्रभु की आज्ञा से लोक-संग्रहार्थ निष्काम कर्म किया। निष्काम कर्म-योग के द्वारा पानप ने मुक्तावस्था प्राप्त की। संसार में रहते हुए, निरासक्त एवं निस्पृह-भाव से सभी प्राणियों के कल्याणार्थ कर्म किया। मुक्ति कहीं बाहर से नहीं लायी जाती, वह तो हमारे हृदय और मन की स्वाधीन दशा ही है।

निरासक्त, निर्वैर, निर्विषय एवं निस्संग साधक के द्वारा किए गए निष्काम कार्य प्रेममय होते हैं और जहाँ प्रेम है वहाँ भय नहीं है और जहाँ भय नहीं है वहीं स्वाधीन एवं मुक्त स्वभाव है। मुक्त स्वभाव की प्राप्ति ही आत्म-साक्षात्कार है अथवा आत्म-दर्शन—

> जगत कहै हम मुक्त भए हैं, यो मनवा नाच नचावै।
> कहै पानप मुक्ति नहीं, जब लग मनवा हाथ न आवै॥
> × × × ×
> हरि दरसन बिन मुक्ति नहीं जो कोटि सयान करो।
> सुरत बोध जो मन को धारै, पानप तुरत ही पार करो॥[1]

---

१. पानप बानी—२-२७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने शुद्ध-बुद्ध, नित्य, मुक्त-स्वभाव को पहचान कर उसे अन्य प्राणियों में देखना और उसके साथ समभाव और प्रेम-व्यवहार करके निष्काम सेवा करना ही मुक्ति है। मुक्ति की ऐसी परिभाषा पानप की मौलिकता है।

पानप ने ज्ञान-विचार द्वारा मन एवं बुद्धि को तीव्र और प्रखर किया, योग-साधना द्वारा शरीर को सशक्त तथा मन को केन्द्रीभूत किया तथा भाव-भक्ति के द्वारा भाव-जगत् को परिशुद्ध तथा केन्द्रीभूत किया तथा प्रेम-भक्ति एवं निष्काम सेवा-भाव द्वारा अपनी मुक्त दशा प्राप्त की। सिद्धावस्था प्राप्त करके उन्होंने लोक-कल्याण के लिए निष्काम-कर्म करने की प्रेरणा दी और साधकों के लिए सच्ची मुक्ति की मौलिक धारणा को प्रस्तुत किया।

ज्ञान, योग, भक्ति तथा निष्काम-कर्म की पृथक्-पृथक् धाराओं को समन्वित करके विश्व के लिए पानप ने एक मौलिक देन दी है। ये चारों साधना-मार्ग पृथक्-पृथक् होते हुए भी एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं, वरन् सहयोगी और पूरक हैं और साधकों को सभी का अभ्यास करना परमावश्यक है, पानप ने ऐसा निश्चय किया। साधना की इन चारों कड़ियों को एक सूत्र में संयोजित करके ही साधक अपनी साधना में सफल होकर मुक्त-दशा की प्राप्ति कर सकता है। भारतीय साधना-पक्ष में पानप का यह मौलिक योग है।

पानप की साधना-पद्धति का एक नमूना है—

अगम सुर्त धर आपणी। जहाँ ब्रह्म की ठाँव॥
दरसन प्रगटै पानपा। मैं दरसन पै बल जाँव॥१३॥ ब्र०
नाम निरत सूं सोध कै। पवना अगम बसावै॥
पारब्रह्म अस्थान जहाँ। कहै पानप दरसन पावै॥१४॥ ब्र०
मूलबंध नाम कूं सोधो। और सुर्त अगम कूं तांणै॥
कहै पानप अलष अरूप कूं। सतगुर मिल पहचांणै॥१५॥ ब्र०
सोध निरत सूं नाभ कूं। सुर्त अगम कूं धारै॥
कहै पानप ऐसी विध सुमरै। तौ नेहचै भौजल तारै॥१६॥ ब्र०

सन्त-काव्य में पानपदास जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे निर्गुण-मार्गी वेदान्ती, योगी सन्त एवं आत्मज्ञानी जीव-मुक्त थे। वे कबीर के समान ही स्पृश्या-स्पृश्यभाव, बाह्याडम्बर तथा पाखंड के विरोधी थे। उन्होंने स्वयं न तो कुछ लिखा और न लिखवाया। वे तो सत्संग के अवसर पर परमार्थ-हित अपने अनुभवों का प्रचार किया करते थे और भक्तगण उनके वचनों को लिखते रहते थे। उन्हीं का संकलन विशाल 'बानी-ग्रन्थ' अथवा 'पानप-बानी' है। इस ग्रन्थ की धामपुर-गद्दी वाली हस्तलिखित प्रति इतनी स्वच्छ व सुन्दर लिपि में लिखी हुई है कि दर्शनीय है।

इनकी 'बानी' अभी तक अप्रकाशित रूप में ही थी। अब महन्त श्री स्वरूप दास जी कृपा से इनकी बानी का अधिकांश 'अथ ग्रन्थ सुषमवेद' के नाम से प्रकाशित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो चुका है, जिससे अब इनके विचारों का ज्ञान कुछ सुलभ हो गया है। किन्तु इनकी बानी का प्रकाशन समग्र रूप में और समुचित रूप से नहीं हो सका। इसीलिए इनका सम्यक्-अध्ययन भी अभी तक नहीं हो पाया है।

इनकी समस्त रचनाओं का संग्रह 'बानी-ग्रन्थ' के नाम से इनके अनुयायियों के धामपुर वाले मठ में सुरक्षित है। इनके दिल्ली वाले सत्संग-भवन में भी इनके 'बानी-ग्रन्थ' की प्रति है। इनकी तथा कबीर साहब की बानियाँ इनके पंथ वालों में विशेष रूप से मान्य हैं। अन्य सन्तों की वानियों को भी बड़ी श्रद्धा के साथ देखा तथा पढ़ा जाता है। इस पंथ में 'बानी-ग्रन्थ' ही पूजनीय है और वही गद्दी पर स्थापित किया जाता है। प्रतिदिन 'बानी-ग्रन्थ' का पाठ बड़ी श्रद्धा के साथ किया जाता है।

इस 'बानी-ग्रन्थ' में इनकी समस्त रचनाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक सन्तों की बानियों का भी संग्रह है। नीचे इनके 'बानी-ग्रन्थ का परिचय दिया जाता है। यह परिचय संवत् १९४२ वि० में लिखित प्रति से दिया जा रहा है। यह प्रति धामपुर वाले मठ में गद्दी पर स्थापित है तथा नित्य प्रति इसी प्रति से पाठ किया जाता है। इस मठ में इनके 'बानी-ग्रन्थ' की और भी कई प्रतियाँ हैं। प्रति स्वच्छ एवं सुन्दर लिपि में लिखी हुई है। इस प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है—

"श्री संवत् १९४२ शाके शालबाहनस्य १८०७ मासोत्तमे मासे माघ मासे शुक्ल पक्षे शुभतिथौ अष्टम्यां ८ शुक्रवासरे यह ग्रन्थ लिखवाया महंत माधोदासजी ने इदं पुस्तकं लेखकं मिश्र बेगराज तस्यात्मज नरायनदास ने मकान धामपुर के पं बाबा साहिब के।"

इस 'बानी-ग्रन्थ' में इनकी निम्नलिखित रचनाएँ हैं—

१. बानी या शब्दी—इसका विभाजन 51 अंगों में हुआ है और लगभग 1445 साखियाँ हैं। अंगों के नाम अधोलिखित हैं :—

क्र०	अंग	साखी सं०	क्र०	अंग	साखी सं०
१.	ब्रह्म को अंग	२७	११.	निरमल को अंग	२२
२.	ज्ञान को अंग	१९	१२.	माला को अंग	१८
३.	वेद को अंग	१०	१३.	संशय को अंग	३४
४.	गीता को अंग	५	१४.	जीभ को अंग	४४
५.	पढ़ने को अंग	१६	१५.	निरगुण को अंग	३२
६.	अक्षर को अंग	१३	१६.	पाहन पूजा को अंग	२१
७.	अन्धे को अंग	२१	१७.	परमातम पूजा को अंग	३१
८.	तीरथ को अंग	४०	१८.	भरम को अंग	२१
९.	गंगा को अंग	१५	१९.	अहुमनि को अंग	३६
१०.	नहान को अंग	२६	२०.	द्रोह निंदा को अंग	११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्र०	अंग	साखी सं०	क्र०	अंग	साखी सं०
२१.	कर्म को अंग	१६	३७.	चेले को अंग	२४
२२.	नरक को अंग	३८	३८.	फकीरी को अंग	२५
२३.	सतसंग को अंग	१८	३९.	जोग को अंग	३५
२४.	प्रेम को अंग	२२	४०.	जागते को अंग	२६
२५.	सूरमा को अंग	४३	४१.	पूँजी जमा को अंग	३५
२६.	भगती को अंग	५३	४२.	घट को अंग	३८
२७.	नारदी भगती को अंग	२०	४३.	नैन नारी पलक को अंग	८३
२८.	दरशन को अंग	१०८	४४.	दृष्टि को अंग	३५
२९.	मुक्ति को अंग	३६	४५.	काग हंस को अंग	२०
३०.	षटदर्शन को अंग	८	४६.	घर को अंग	११
३१.	भेष को अंग	२७	४७.	आशा, त्रिष्णा को अंग	१४
३२.	साध को अंग	१८	४८.	चरणों को अंग	२३
३३.	मत को अंग	१७	४९.	बसंत को अंग	२३
३४.	साधो, सिद्धो को अंग	२३	५०.	सुरत मत को अंग	६१
३५.	पंथ को अंग	९	५१.	आरती को अंग	१३
३६.	गुरू को अंग	५८			

पद

२. अरल — २७

३. अरल फारसी की — ५

४. शब्दी फारसी की साखी — ११६

अन्य फुटकल ग्रन्थ

५. नाम स्रोत ग्रन्थ

६. गगन डोरी ग्रन्थ

७. नामलीला ग्रन्थ

८. ज्ञान सुखमनी ग्रन्थ

९. काया सोध ग्रन्थ

१०. तत्त्व उपदेश ग्रन्थ

११. भक्त बोध ग्रन्थ

१२. समझ मात्रा ग्रन्थ

१३. सोहला ग्रन्थ

१४. प्रेमरतनी ग्रन्थ

१५. भ्रष्ट को अंग ग्रन्थ

१६. इश्क गर्क ग्रन्थ

स्फुट छंद

१७. कड़के — लगभग ३०

१८. झूलने — ,, १८

१९. सवैये — ,, १०

२०. कवित्त — ,, १४

२१. बसन्त — ,, १६

२२. ह्रोली — ,, ४५

२३. सोरठे — ,, १२

२४. रमैणी — ,, ३

२५. शब्द फारसी के—निम्नलिखित राग-रागनियों में रचना हुई है—

(१) तिलंग काफी	४	(५) कल्यान	१
(२) बैंत	७	(६) ललता	४
(३) वहर तबील	३	(७) बिहाग	४
(४) टोड़ी	१	(८) काफी	६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२६. **शब्द**—निम्नलिखित राग-रागनियों में रचना हुई है—

(१) भैरव	२६	(२१) काफी	१२
(२) रामकली	१७	(२२) मलार	१०
(३) देवगन्धार	६	(२३) आसा की बार	२
(४) बिलावल	३६	(२४) बारवैकी बार	८
(५) आसावरी	१२	(२५) इकहरा	७
(६) टोड़ी	४०	(२६) जकड़ी	२
(७) सारंग	१०	(२७) बगला	२
(८) नट	८	(२८) रष्टक	४
(९) धनाश्री	७	(२९) सिहार	१
(१०) पूरबी	१२	(३०) महावत	१
(११) गौरी	३१	(३१) पंचक	१
(१२) कल्याण	२४	(३२) गौड़	१
(१३) कान्हरो	१२	(३३) स्तुति के	२
(१४) अड़ाणां	२	(३४) सूही	१
(१५) सोरठ	१४	(३५) झिंझमाल	१
(१६) बिहाग	१६	(३६) सोहनी	१
(१७) केदारो	६	(३७; ब्रह्मणी	२
(१८) जैजैवन्ती	६	(३८) जंगला	११
(१९) परज	६	(३९) आरती	६
(२०) गूजरी	८		

इसके पश्चात् निम्नलिखित सन्तों की बानियों का विभिन्न राग-रागनियों में संग्रह है—

(१) कबीर साहब,
(२) नानक साहब,
(३) गोरखनाथ,
(४) कमाल,
(५) कान्हा,
(६) मुरारजी,
(७) यारी साहब,
(८) हनुवंत,
(९) ठीकरनाथ,
(१०) जलंधरनाथ,
(११) भर्तृहरिजी,
(१२) नारदजी,
(१३) दत्तात्रयजी,
(१४) पीपाजी ।

श्री परशुराम जी चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा'[1] में महर्षि

१. उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा पृष्ठ ६१३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिवव्रत लाल की 'सन्तमाल'[1] के आधार पर इनके ग्रन्थों का परिचय दिया है; किन्तु यह परिचय अधिकांश में अधूरा और भ्रामक है।

संवत् २००४-०६ की 'हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज'[2] में इनकी आठ रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। ये सब रचनाएँ उपर्युक्त 'बानी-ग्रन्थ' में संगृहीत हैं।

इनकी रचनाओं का विषय उपदेशात्मक तथा आलोचनात्मक दोनों प्रकार का है। आलोचना की वह उग्रता जो कबीर की कविता में मिलती है इनमें भी दिखलाई पड़ती है।

कविता की भाषा सधुक्कड़ी है, किन्तु खड़ी बोली का आधिक्य है।

पानपदास जी के दो चित्र भी मैंने धामपुर वाले मठ में देखे। इनमें से एक चित्र इनके प्रकाशित 'बानी ग्रन्थ—अथ ग्रन्थ सुषमवेद' के प्रारम्भ में लगकर प्रकाशित हो चुका है। इसमें सन्त पानपदास जी तकिये के सहारे मसनद पर बैठे हुए हैं तथा इनके शिष्य काशीदास जी हाथ जोड़े हुए इनके सम्मुख खड़े हैं।

दूसरा चित्र गद्दी-स्थान पर रखा रहता है और इस समय बहुत ही अस्पष्ट हो चुका है। केवल कुछ-कुछ दृष्टिगोचर होता है। यह चित्र प्रकाशित चित्र से प्राचीन जान पड़ता है।

इनके अनुयायियों का कहना है कि इस पंथ में सन्त पानपदास जी के अतिरिक्त और कोई 'वाणीकार' नहीं हुआ।

---

१. सन्त-माल (सन्तसमागम, जिल्द ३) लाहौर १९२३ ई० पृष्ठ १९१

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५८, अंक १-२, पृष्ठ १०९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्यात्म-दर्शन

आध्यात्मिक जीवन अपने को कला, दर्शन, धर्म, सौन्दर्य और पूर्णता में प्रकट करता है। इनमें से कोई भी पूर्णत: प्राप्त करने पर समाप्त नहीं होता। —राधाकृष्णन

अंछर पावै अंछर धावै, अंछर माहिं समावै।
कहै पानप अंछर कूं खोजे, तो बहुरि न भो जल आवै॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१ | अध्यात्म-दर्शन

भारतीय मनीषियों के लिए अध्यात्म-विद्या अत्यधिक गूढ़ एवं प्रतिष्ठा की वस्तु रही है। समस्त ज्ञान तथा विद्याओं में इसे सर्वोत्कृष्ट कहा जाता रहा है। कठोपनिषद् में इस विद्या के सम्बन्ध में लिखा है, "ब्रह्म विद्या बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलती और बहुत से इसे सुनकर समझ ही नहीं पाते। इस गूढ़ अध्यात्म-विद्या का वर्णन करने वाला भी कठिनाई से मिलता है और इसे जानने की इच्छा रखने वाला तो बिरला ही होता है।[1]

'अधि' का तात्पर्य तरफ या ओर है और आत्मा का अर्थ है अपरिणामी नित्य-तत्त्व। इस प्रकार 'आत्मा की ओर' जाने वाली विद्या अथवा योग अध्यात्म-विद्या कहलाती है।

श्रुति का प्रमाण है—'अध्यात्म-योग' (आत्मा में चित्त को लगाना) निदिध्यासन की प्राप्ति होने पर आत्मा (देव) का साक्षात्कार करके ज्ञानी धीर पुरुष हर्ष और शोक दोनों का त्याग कर देते हैं, मुक्त हो जाते हैं।[2]

इसके लिए स्मृति प्रमाण भी है—जब हमारी बुद्धि समाधि की अवस्था में आत्मा में स्थिर हो जाएगी तब तुम योग (योग-फल अर्थात् आत्म-साक्षात्कार) प्राप्त करोगे।[3]

श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय के प्रथम श्लोक में भगवान् से अर्जुन ने पूछा—'किं तद्ब्रह्मकिमध्यात्मं' भगवान् ने उत्तर दिया, 'अक्षरब्रह्म परम स्वभावो

---

१. कठ० १-२-७
२. अध्यात्मयोगाधिगमेनदेवं, मत्वा धीरो हर्ष शोको जहाति। —का० २-१२
३. गीता २-५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यात्ममुच्यते' अर्थात् परम अक्षर अथवा जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सच्चिदानन्द घन परमात्मा तो ब्रह्म है और स्वभाव अथवा अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम से कहा जाता है।

यही नहीं गीता के तेरहवें अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में बताया है कि अध्यात्म-ज्ञान में नित्य स्थिति और तत्त्व-ज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को सवर्त्र देखना यह सब तो ज्ञान है और जो इसके विपरीत है, वह अज्ञान है। इही तथ्य को इस प्रकार कह सकते हैं कि जिस ज्ञान के द्वारा आत्म-वस्तु और अनात्म-वस्तु जानी जाए, उस ज्ञान का नाम 'अध्यात्म-ज्ञान' है।

अध्यात्म-ज्ञान एक महासागर है। प्रश्न के ऊपर प्रश्न उत्पन्न होते जाते हैं कि यह आध्यात्मिकता है क्या ?

यह निर्विवाद है कि सृष्टि के आविर्भाव से ही आनन्द प्राप्ति हेतु बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी खोज जारी है। सृष्टि तथा जीव के आविर्भाव-काल की भी खोज इसी हेतु रही है कि उस आत्यन्तिक दुःख का आदि कारण खोज निकाला जाए जिसे दूर करने के लिए आनन्द की खोज जारी है, ताकि कारण मिलने पर उपाय भी ढूंढा जा सके। बहिर्मुखी अनुसंधित्सुओं की खोज जारी है, संभवतः सतत जारी ही रहेगी अन्तर्मुखी अनुसंधित्सुओं ने उसे खोज निकाला है और उनका यह निश्चित मत है कि जीव की बहिर्मुखता वशात् कल्पित भेद-दर्शन ही उसके दुःख का एक मात्र कारण है तथा निर्विकल्प अन्तर्मुखी भेद-विहीन बहिर्दर्शन ही दुःख निवारण अथवा आनन्द-प्राप्ति का एक-मात्र उपाय है, अप्रतर्क्य है, यही अध्यात्म है।

बहिर्मुखी खोज द्वारा सृष्टि के आधिभौतिक तथा आधिदैविक रूप की नित नई खोज हो ही रही है। इस आधिभौतिक तथा आधिदैविक सत्ता का आधार भी वही आध्यात्मिक सत्ता है। यही अन्तर्मुखी अनुसंधानकर्ताओं का निश्चय है। इस सत्ता के दिग्दर्शन हेतु ही अन्तर्मुखी अनुसंधित्सुओं द्वारा प्रणीत की गई ये सब्दियाँ हैं—बानियाँ हैं। ये बानियाँ आनन्द के जिज्ञासुओं को अध्यातमस्थल के ज्ञान का अनुभव कराकर अनन्त आनन्द की स्थिति में स्थित कराने की सामर्थ्य रखती हैं। इन्हें समझाने की कुंजी है- 'स्व+भाव'। 'पर+भाव 'में बहिर्मुख-दर्शन प्राप्त होता है, जबकि स्वभाव द्वारा अन्तदर्शन प्रवेश होता है। यही बूड़ना, डूबना, अवगाहना कहा जाता है। बहिर्मुख-दर्शन से आधिभौतिकता तथा आधिदैविकता का ही दर्शन होता है जो 'परिहास' तथा व्यावहारिक वैषयिक आनन्द का ही विषय होता है। अन्तर्मुखी अवगाहन द्वारा दर्शन, अध्यात्म का ज्ञान प्राप्त होना है। इस आध्यात्मिक स्थिति में ही कर्म की कुशलता—"योगः कर्मसु कौशलम्" निष्काम कर्म करने की क्षमता प्राप्त होती है।

उक्त आध्यात्मिक स्थिति ही सर्वज्ञ-स्थल है, जहाँ स्व-संवेदनात्मक ज्ञान की अनुभूति होती है यह ज्ञान सबका भेद-रहित एक ही है। यही अमृत है, यही विश्राम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, यही तथ्य हस्तगत कराने का प्रयास किया गया है इन वानियों में। मुझे लगता है कि यही प्रज्ञा है जिसके सम्बन्ध में कहा गया है :

'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम्।'

इस प्रकार स्वतः सिद्ध सत्य और अनुभव को अंगीकार करना और उसकी अनुभूति करना उस तत्त्व के आधार है, जिसे आध्यात्मिकता कहा जाता है।

अन्त में अति प्रश्नों को विराम देते हुए अतद्व्यावृत्ति को ध्यान में रखकर अक्षरात्मा एवं अक्षारात्मरतः परः का चिन्तन ही अध्यात्म है।

दर्शन

'दर्शन' शब्द 'दृश' धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगाकर बना है। दृश्यते अनेन इति दर्शनम् अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए वह 'दर्शन' है। प्रश्न हो सकता है—क्या देखा जाए ? इसका उत्तर है—वस्तु का सत्यभूत तात्त्विक स्वरूप।

दर्शन के सम्मुख अनेक प्रश्न होते हैं, अनेक प्रकार की समस्याएँ होती हैं, उदाहरणार्थ—हम कौन हैं ? यह विश्व क्या है ? यह कैसे बना है ? इसे किसने बनाया ? क्या सबके मूल में एक ही तत्त्व है या अनेक ? उस तत्त्व से मनुष्य तथा अन्य प्राणियों का क्या सम्बन्ध है ? जीवन का क्या उद्देश्य है आदि प्रश्न दर्शन के लिए समस्याएं हैं। दर्शन इन सबका उत्तर देता है और विवेचन करता है।

दर्शन भारतीय लोक-जीवन का प्राण रहा है। प्राचीन काल से ही सहस्रों वर्षों तक यहाँ के साधकों, विचारकों एवं आचार्यों ने घोर तपश्चर्या का अनुसरण करके दार्शनिक तथ्यों का उद्घाटन किया तथा धर्म एवं तत्त्व ज्ञान को जीवन के लिए अत्यावश्यक बताया है। युक्तिपूर्वक तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को ही दर्शन कहते हैं।

दर्शन-शास्त्र एक विस्तृत एवं गहन शास्त्र है। विषयानुकूल दर्शनशास्त्र के कई विभाग और कई उपविभाग किए जा सकते हैं—

(अ) तत्त्व-मीमांसा (ऑनटॉलॉजी) के द्वारा प्राणी तथा सृष्टि में व्याप्त परम तत्त्व का अन्वेषण किया जाता है। सत्य-तत्त्व की संख्या तथा उसके स्वरूप की विवेचना भी की जाती है। तत्त्व-मीमांसा के अन्तर्गत ईश्वर-दर्शन, आत्म-दर्शन तथा प्रकृति-दर्शन तीनों का समावेश होता है।

ईश्वर-दर्शन के अन्तर्गत सम्पूर्ण जगत् तथा उसके परे वास्तविक चिरन्तन सत्ता का स्वरूप समझने की चेष्टा की जाती है।

आत्म-दर्शन के अन्तर्गत आत्मा की सिद्धि उसका स्वरूप, उसकी उत्पत्ति, संख्या आदि का विवेचन किया जाता है।

प्रकृति-दर्शन के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, विकास, स्थिति और उसके कारण आदि का विवेचन किया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(आ) ज्ञान-मीमांसा (एपिम्टमॉलॉजी) के अन्तर्गत ज्ञान, उसका स्वरूप, उसकी सीमा, उसके भेद-प्रभेद आदि का विवेचन होता है। इसे ज्ञान का विज्ञान भी कहा जाता है।

भारतीय दर्शन-शास्त्र तत्त्व-मीमांसा और ज्ञान-मीमांसा के अतिरिक्त साधना-पक्ष को भी लेकर चलता है जिसके अन्तर्गत अन्तःकरण विज्ञान, योग, भक्ति एवं कर्म आदि का विवेचन भी करते हैं।

उक्त चर्चा के अतिरिक्त भारतीय दर्शन में मनुष्य-जीवन के लिए परम लक्ष्य तब भीाया गया है। इसी परम लक्ष्य को मोक्ष अथवा मुक्ति अथवा चरम लक्ष्य कहा गया है।

आगे के प्रकरणों में इनका यथास्थान पानप के विशेष सन्दर्भ में विवेचन किया जाएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दार्शनिक पीठिका और पानप

श्रुति-सम्मत-दर्शन एवं धर्म-शृंखला, श्रीमद्भगवद्-गीता और पानप, शंकर वेदान्त और पानप, द्वैतवाद और पानप, द्वैताद्वैतवाद और पानप, वैष्णव मत और पानप, रामावत सम्प्रदाय और पानप, नास्तिक दार्शनिक प्रभाव, जैन-दर्शन और पानप, बौद्ध-दर्शन और पानप, पातंजल-योग मार्ग और पानप, वज्रयान और पानप, सहजयान और पानप, कौल सम्प्रदाय और पानप, नाथ-सम्प्रदाय और पानप, नाथ-पंथ के दार्शनिक सिद्धान्त, नाथ-सम्प्रदाय की साधना-पद्धति और पानप, सन्त मत और पानप, इस्लाम-दर्शन का प्रभाव और पानप, सूफीमत और पानप, पानप पर पड़े हुए परिस्थितिजन्य और आध्यात्मिक प्रभावों का संक्षिप्तीकरण।

दरशन करना कठिन है, कहन सुनन आसान ।
कहै पानप दरसन तब लहै, पहले लगावै जान ।।
दरशन कूं पहचाना ना, तो दरशन किसका किया ।
कहै पानप आतम चीन्हा ना, तो भरम ने धोका दिया ।।
दरशन कूं पहचाना ना, तो बानी कूं क्या पावेगा ।
चंचल स्थिर परखा ना, तो भरम साथ बह जावेगा ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२ | दार्शनिक पीठिका और पानप

पानप के समय में धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में विभिन्न मत-मतान्तरों का प्रचार एवं प्रसार था। पानप पर उन सभी दार्शनिक विचारों तथा धार्मिक साधनाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। अतएव उन सभी दार्शनिक विचारों एवं साधनाओं की संक्षिप्त जानकारी उपयुक्त होगी।

१.१ श्रुति-सम्मत-दर्शन एवं धर्म-शृंखला

श्रुति ग्रन्थ भारतीय धर्म-व्यवस्था के प्राण हैं। भारत की कोई भी धर्म-पद्धति ऐसी नहीं है, जिस पर इन श्रुति-ग्रन्थों का थोड़ा-बहुत ऋण न हो। संत पानप ने भी वेदों के प्रति आस्था प्रदर्शित की।[1] अतः पानप पर वेद-सम्मत-दर्शन एवं धर्म-साधना का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। वैसे कुछ स्थानों पर छींटाकशी भी की है।[2]

विद्वानों ने चारों वेदों को चार भागों में विभाजित कर रखा है। ये विभाग क्रमशः संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद कहलाते हैं। संहिताओं में वैदिक देवताओं की स्मृतियाँ संगृहीत हैं और ब्राह्मण-ग्रंथों में कर्मकाण्ड का वर्णन है। आरण्यकों में विभिन्न प्रकार की उपासनाओं की विवेचना है और उपनिषदों में ज्ञान-काण्ड का विवेचन है।

उपनिषद साहित्य की सर्जना कर्मकाण्ड-प्रधान ब्राह्मण-साहित्य की प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी। इस साहित्य में स्थान-स्थान पर बहुदेववाद तथा कर्मकाण्ड की

---

१. पानपबानी—४·२।
२. पानपबानी—४·२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विरोध-भावना दृष्टिगत होती है। आडम्बरपूर्ण साधनाओं तथा धार्मिक कर्मकाण्डों के प्रति पानप में भी विरोध-भावना है और यह औपनिषदिक विरोध-भावना के अनुरूप है।

उपनिषदों को वेदान्त अर्थात् ज्ञान की चरम-सीमा कहा जाता है। उनमें अध्यात्म-शास्त्र के गूढ़ातिगूढ़ सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा मिलती है। पानप के दार्शनिक सिद्धान्तों पर वेदानुकूल सिद्धान्तों के प्रभाव लक्षित है। पानप के दार्शनिक सिद्धान्तों का उद्गम वेद अथवा उपनिषद् है और उनका विकास वेद-सम्मत दार्शनिक सिद्धान्तों के तारतम्य में ही है। आगे के अध्यायों में इस तारतम्य तथा सम्बन्ध को समुचित रूप में प्रस्तुत किया गया है।

पानप में एकत्व तथा अद्वैत भावना का पाया जाना श्रुति-सम्मत शृंखला की ही देन है। वेदों के अनुसार—विद्वान् लोग उस एक ही को अग्नि, यम, वायु आदि नामों से पुकारते हैं, उपासना करते हैं।[१] इसका पानप ने भी सर्वत्र अपनी बानी में प्रयोग किया है। वेदों की भाँति पानप ने भी ब्रह्म की एकता और अद्वैतता दोनों को एक साथ ध्वनित किया है।[२]

उपनिषदों में ज्ञान-काण्ड के अतिरिक्त योग तथा भक्ति की भी चर्चा मिलती है। पानप ने भी साधना के इन तत्त्वों को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। पानप का ज्ञान-विचार, पानप की योग-साधना, पानप की भक्ति तथा पानप का निष्काम-कर्म योग, सभी साधना-पद्धतियों पर वेद-सम्मत दार्शनिक एवं धार्मिक शृंखला का ही प्रभाव है तथा पानप के सिद्धान्त इन्हीं के अनुरूप हैं।

उपनिषदों का अध्यात्म-योग राजयोग का रूपान्तर है। राजयोग-साधना मनोयोग एवं मनोजय से सम्बद्ध है। योग को उपनिषदों में स्थिर इन्द्रिय-धारणा भी कहा गया है। इन्द्रियों का स्वामी मन ही तो है, अतएव इसको सर्वप्रथम जय करने की बात कही जाती है।

पानप की योग-साधना में भी मनोजय को ही प्राथमिकता दी गई है, क्योंकि पानप का निश्चित मत था कि मन को जीतना सबको जीतना है।[३] मनोजय से सब कुछ जीत लिया जा सकता है और परम ध्येय की प्राप्ति की जा सकती है।

१.२ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता और पानप

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता महत्त्वपूर्ण धर्म-ग्रन्थ है। अनेक आचार्यों ने गीता के ऊपर भाष्य लिखे हैं। गीता में ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण स्वरूपों का वर्णन है। आठवें

---

१. एक सद्विप्राः बहुधा वदन्ति ॥ ऋ० स० अ० २ अ० ३ वै० २३ म० ४५।
२. सुषमवेद १·१।
३. पानपबोध ४·३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय में कहा गया है—"परम अक्षर जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सच्चिदानन्दघन परमात्मा तो ब्रह्म है और अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम से कहा जाता है।"[१]

गीता के दूसरे अध्याय में आत्मा को अविनाशी, सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त, अजर-अमर, शाश्वत, अच्छेद्य, अक्लेद्य कहा है।[२]

पानप ने गीता द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म तथा आत्मा के स्वरूपों को स्वीकारा है।[३] गीता की भाँति गीता का ज्ञान, गीता का योग भी पानप को मान्य है। गीता का निष्काम-कर्म तो पानप ने अपनाया ही है। गीता के स्थितप्रज्ञ के लक्षण तो पानप ने यथावत् ले लिए हैं। सुख-दुःख में समान भाव रखने वाला, जय-पराजय, लाभ-हानि सबमें समभाव से रहने वाला, निरासक्त, निर्वैर, निस्पृह, निर्विषय साधक को 'स्थितप्रज्ञ' कहा गया है।[४] पानप ने स्थितप्रज्ञ को संत की संज्ञा दी।[५]

इस प्रकार से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि पानप पर गीता का पर्याप्त प्रभाव है। गीता के अनुसरण पर पानप ने अपनी भक्ति ज्ञान तथा निष्काम-कर्मयोग को संवारा है।

१.३ शंकर अद्वैत वेदान्त और पानप

आचार्य शंकर अद्वैत वेदान्त के प्रधान प्रतिपादक कहे जाते हैं। ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी में शंकराचार्य का आविर्भाव माना जाता है।[६]

शंकराचार्य अद्वैत सिद्धान्त के प्रधान प्रतिपादक तथा मायावाद के प्रधान आचार्य हैं। अद्वैत सिद्धान्त में सर्वप्रथम आत्म-तत्त्व-विचारर्णीय हैं। आचार्य आत्मा को स्वयं-सिद्ध प्रत्यय मानते हैं। अपने अस्तित्व को सभी मानते हैं।[७] अपने अनुभव के आधार पर जगत् के समस्त व्यवहार चलते हैं। अनुभव के मूल में आत्मा की सत्ता स्वतः सिद्ध रूप से विद्यमान रहती है। आचार्य ने आत्मा को ज्ञान रूप भी माना है। आत्मा स्वयं सिद्ध ज्ञान रूप होते हुए भी अद्वैत रूप है।

अद्वैत वेदान्त में निर्गुण, निरुपाधि, निरपेक्ष तथा निर्विकार सत्ता का नाम 'ब्रह्म' है। वेदों में ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूपों का वर्णन है, किन्तु शंकर ने निर्गुण ब्रह्म ही का प्रतिपादन किया है।

---

१. गीता—८-३।
२. गीता—२-२४।
३. गीता—६-४।
४. पानपबानी—८·३।
५. पानपबानी—१२·४।
६. साउथ इंडियन पैल्योग्राफी-बर्नेल—पृ० ३७-१११।
७. "सर्वोह्यत्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहम अस्मीति" शंकर भाष्य १-१-१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके मतानुसार ब्रह्म जगत् का कारण, ज्ञानस्वरूप और अविभक्त तत्त्व है।[१] वह सत्-चित् और आनन्द-रूप है। यह ब्रह्म का स्वरूप-लक्षण हुआ। यही ब्रह्म मायावच्छिन्न होने पर सगुण ब्रह्म कहलाता है, यह ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है।

जगत् की उत्पत्ति के लिए आचार्य ने माया-तत्त्व की कल्पना की है। इनके मत से माया और अविद्या एक ही हैं। माया को सत् अथवा असत् कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, अतः वह अनिर्वचनीय तत्त्व है। माया की दो शक्तियाँ होती हैं आवरण तथा विक्षेप-शक्ति। आवरण-शक्ति ब्रह्म को ढक लेती है और विक्षेप-शक्ति से जगत् की उत्पत्ति होती है।[२] जिस प्रकार मकड़ी अपने जाले का निमित्त और उपादान कारण दोनों ही होती है, उसी प्रकार ब्रह्म भी जगत् का उभय कारण रूप है।

शंकराचार्य के अनुकूल शरीर एवं इन्द्रिय-समूह के अधिनायक तथा कर्म-फल का भोक्ता आत्मा ही जीव है। आत्मा नित्य, अजन्मा, अविनाशी एवं अजर-अमर है। इस आत्मा से ब्रह्म का स्वभावगत ऐक्य है। आत्मा भी चैतन्य-स्वरूपा है और वह विभु है। जीव अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी वृत्तियों वाला होता है। बहिर्मुखी वृत्तियाँ जीव को संसारोन्मुख करती हैं और अन्तर्मुखी वृत्तियाँ उसे ईश्वरोन्मुख करती हैं। ज्ञान से माया का उच्छेद हो जाता है, जीव का अज्ञान-आवरण हट जाता है और तब ब्रह्म-जीव तादात्म्य हो जाता है।

पानप अद्वैत वेदान्त के इन सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। पानप ने ब्रह्म को अजर, अमर, अलख, अकथ, अवर्ण, सर्वव्यापी, अनन्त तथा सर्वोपरि कहा है।[३]

'पानप' जगत् को व्यावहारिक सत्ता के रूप में मानते हैं। वे माया की आवरण तथा विक्षेप-शक्ति को भी स्वीकार करते हैं।[४]

जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध को पानप ने बूंद और समुद्र के रूपक से व्यक्त किया है। जैसे बूंद समुद्र में और समुद्र बूंद में अन्तर्निहित है, उसी प्रकार जीव ब्रह्ममय है और ब्रह्म जीवमय है।[५]

जीव को भ्रम में डालकर माया नाना नाच नचाती है। माया के पास से

---

१. अबाधितान विगता संदिग्ध बोधजनकत्वं हि प्रमाणत्वं प्रमाणानाम् ।
(भामती १-१-४)

२. आच्छाद्य विक्षिपति संस्फुरदात्म रूपं जीवेश्वरत्व जगदाकृतिभिर्मृषैव ।
अज्ञानमावरणविभ्रमशक्तियोगात् आत्मत्वमात्र विषयाश्रयता बलेन ॥
(संक्षेप शारीरिक १-२०)

३. पानपवानी—८·४

४. पानपबोध—३·२

५. सुषमवेद—६·१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोई विरला ही बच पाता है। माया इतनी आकर्षक है कि सकल जगत् को उसने खराब कर दिया है।[१] माया का उच्छेद ज्ञान से हो सकता है। इसी से पानप ने भी ज्ञान-विचार का निर्देश किया है।[२]

पानप अद्वैत वेदान्त के अधिक निकट हैं, फिर भी उनकी अपनी अलग विशिष्टता भी है। किसी विशिष्ट आचार्य का अनुयायी उन्हें नहीं कहा जा सकता और न ही किसी बात से ही उन्हें बाँधा जा सकता है।

१४. विशिष्टाद्वैत और पानप

विशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक स्वामी रामानुजाचार्य, आचार्य शंकर के लगभग दो सौ पचास वर्ष बाद हुए। स्वामी रामानुजाचार्य ने भी प्रस्थान-त्रयी पर सुन्दर भाष्य लिखा है, जो 'श्री' भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें स्वामी जी ने विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया है। रामानुजाचार्य भी श्रुति प्रमाण्यवादी हैं। इन्होंने भी अद्वैत ब्रह्म को ही परम तत्त्व कहा है। इन्होंने इस प्रकार व्याख्या की है—विशिष्टाद्वैत दर्शन में चित्, अचित् और ईश्वर तीन पदार्थ माने गए हैं। अर्थभोक्ता जीव है। अचित् भोग्य जगत् का पर्यायवाची है। ईश्वर को सर्वान्तर्यामी विभु कहते हैं। आचार्य के मत से यद्यपि जीव तथा जगत नित्य एवं स्वतन्त्र पदार्थ हैं, तथापि वे ईश्वर के अधीन हैं। अन्तर्यामी रूप से ईश्वर दोनों के भीतर विराजमान है। ब्रह्म के दो प्रकार चित् तथा अचित् हैं। ब्रह्म और चित् तथा अचित् में अंगांगि-सम्बन्ध है। उनके मत से उपनिषद् का प्रतिपाद्य ब्रह्म सगुण ही है। ईश्वर सजातीय-विजातीय भेद से शून्य होने पर भी स्वगत भेद-सम्पन्न है। ईश्वर विशेष्य है और चिद्चिद् विशेषण है। इसीलिए तो यह विशिष्टाद्वैत हुआ।

रामानुजाचार्य के अनुसार ईश्वर ही इस जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। यह कारणता स्वेच्छाजन्य है। ईश्वर लीला के लिए ही जगत् की सृष्टि एवं संहार करते हैं। प्रलयकाल में जीव और जगत् सूक्ष्म रूप में परिणत हो जाते हैं। इस अवस्था में सूक्ष्म चिदचिद्-विशिष्ट ब्रह्म कारणावस्थ-ब्रह्म कहलाता है। सृष्टिकाल में स्थूल रूप धारण करने पर कार्यावस्थ-ब्रह्म कहलाता है। यही कार्य-कारण-भाव परिणामवाद का मूल है।

चित् के सम्बन्ध में सिद्धान्त है कि वह देहेन्द्रियमन, प्राण, बुद्धि से विलक्षण, अजड़ आनन्दरूप, नित्य अणु, अव्यक्त, अचिन्त्य एवं निर्विकार है। जीव ईश्वर के द्वारा नियमित किया जाता है। यह ईश्वर ही के आश्रय पर रहता है। जीव अनन्त और अणु होते हुए भी ब्रह्म से पृथक् नहीं है।

---

१. पानपबोध—२०४
२. पानपबोध—२०५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अचित् ज्ञानशून्य विकारास्पद वस्तु है। इसके भी तीन भेद हैं—शुद्ध सत्व नित्य विभूति है, मिश्र सत्य माया अथवा अविद्या है, सत्व शून्य तत्त्व ही काल है। जगत् को रामानुज सत्य-रूप मानते हैं।

मुक्ति-प्राप्त करना जीवन का परम लक्ष्य है। मुक्ति-प्राप्ति के लिए भक्ति एवं प्रपत्ति ही उपयुक्त साधन है।

रामानुजाचार्य की भक्ति तथा प्रपत्ति का प्रभाव पानप पर पड़ा, वह इससे अछूते न रह सके।

१.५. द्वैतवाद और पानप

द्वैतवाद के मतानुसार परमात्मा ही साक्षात् विष्णु हैं। वह अनन्त गुण-परिपूर्ण हैं। उनमें सजातीय तथा विजातीय आदि विविध तत्त्व विद्यमान हैं। वे जीव और जगत् से विलक्षण हैं। वे एक होकर भी नाना प्रकार के रूप धारण करते हैं। लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति है, वह परमात्मा के अधीन है, परन्तु उससे भिन्न है। जीव अज्ञानादि दुःखों से युक्त तथा सांसारिक होता है। मुक्ति-प्राप्त करना ही जीव का चरम लक्ष्य है। मुक्त होने पर वह परम साम्य को प्राप्त होता है। मुक्ति पाने के लिए भक्ति ही परम साधन है।

भक्ति-भावना को छोड़कर द्वैतवाद का पानप पर कोई भी प्रभाव नहीं है वरन् द्वैतवाद के पानप विरुद्ध ही हैं।

१.६. द्वैताद्वैतवाद और पानप

द्वैताद्वैत मत के प्रवर्त्तक निम्बार्काचार्य का जन्म लगभग सं० १२१९ में हुआ था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके ग्रंथों में 'वेदान्त पारिजात' की अच्छी ख्याति है। निम्बार्क मत के अनुकूल ब्रह्म अद्वैत और द्वैत दोनों है। जीव और ब्रह्म में अंशांशि-भाव-सम्बन्ध है। जीव स्वतन्त्र है, किन्तु भोग-प्राप्ति के लिए वह ईश्वराधीन है। इसी से ईश्वर नियन्ता है, और जीव नियम्य है। वह हरि का अंश रूप होते हुए भी विविध है। इस मत में अचित् के तीन रूप कल्पित किए गए हैं। (१) प्राकृत महत्तत्त्व से लेकर महाभूत तक प्रकृति से उत्पन्न जगत् (२) अप्राकृत-प्रकृति के राज्य से बहिर्भूत जगत् तथा (३) काल यह अखण्ड-रूप कार्यरूप से अनित्य है। निम्बार्क-मत में सगुण ईश्वर का ही प्रतिपादन किया गया है। वह अविद्यास्मितादि दोषों से रहित अशेष, ज्ञान बल आदि कल्याण-गुणों का स्थान है। मुक्ति का प्रमुख साधन प्रपत्ति-मूलक भक्ति है। इसी भक्ति के द्वारा जीव भगवदनुग्रह प्राप्त करता है और लक्ष्य-प्राप्ति में सफल होता है।

पानप पर इस मत का भी विशेष प्रभाव नहीं है फिर भी कहीं-कहीं इसकी छाया प्रतीत होती है। पानप पर इसकी भक्ति-भावना का प्रभाव परिलक्षित है।

१.७. वैष्णवमत और पानप

वैष्णव मत अत्यन्त प्राचीन मत है भगवान् विष्णु और उनके अवतारों की उपासना ही इस मत की प्रमुखता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु इस मत के परम आराध्य हैं। ऋग्वेद में विष्णु से सम्बन्धित सूक्त है। विष्णु अन्य देवताओं की अपेक्षा मानवोचित गुणों से विभूषित हैं, उनमें अत्यन्त व्यापकत्व, अतुलनीय पराक्रम, विश्व-धारण सामर्थ्य, अमृतत्व, पोषण-शक्ति, अवतार-धारणा-शक्ति आदि की प्रतिष्ठा है।

कालान्तर में विष्णु के दिव्य गुणों में वृद्धि होती गई और वे शील, शक्ति एवं सौन्दर्य इन तीन विभूतियों से प्रतिष्ठित किए गए। इस प्रकार विष्णु के निर्गुण एवं सगुण दोनों स्वरूपों का विकास हुआ।

डा० भण्डारकर के अनुसार वैष्णव मत का प्रारम्भिक नाम एकान्तिक धर्म था।[1] भगवद्गीता इसका प्रमुख आधार-ग्रंथ था। इसने साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया और यह पाँच रात्र या भागवत् धर्म के नाम से प्रसिद्ध हो गया, आगे चलकर नारायणी धर्म से इसका सम्मिलन हुआ। कालान्तर में उस पर योग एवं सांख्य दर्शन का भी प्रभाव पड़ा।

पाँचवीं शताब्दी में इसका प्रभाव कम हो गया। छठी तथा सातवीं शताब्दी में आलवार भक्तों के रूप में इसका पुनः स्फुरण हुआ। मध्ययुग के प्रसिद्ध आचार्य ने इसको पल्लवित किया। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्कार्काचार्य तथा वल्लभाचार्य आदि ने इस मत को अच्छी प्रगति दी।

वैष्णव धर्म के सामान्य तत्त्व निम्नलिखित हैं:

(१) विष्णु के विविध नामों का प्रयोग।
(२) उपास्य के रूप में विष्णु के ही निर्गुण या अवतारी सगुण स्वरूपों की प्रतिष्ठा।
(३) भक्ति तथा उपासना-पद्धति।
(४) योग-तत्त्व।
(५) तात्त्विक दृष्टि से माया का विरोध तथा व्यावहारिक दृष्टि से उसकी मान्यता।
(६) प्रवृत्यात्मकता।
(७) वर्ण-व्यवस्था का विरोध।

वैष्णव-धर्म के सभी ग्रंथों में भगवान् के दोनों—निर्गुण एवं सगुण स्वरूपों का वर्णन मिलता है। सगुण रूप से पुरुषावतार, गुणावतार, मन्वन्तरावतार, कल्पावतार, युगावतार तथा स्वल्पावतारों की व्यवस्था कल्पित की गई है। निर्गुण ब्रह्म से सगुण भगवान् का क्रमशः विकास हो जाता है।

पानप पर वैष्णव मत का प्रभाव परिलक्षित है। पानप ने अपनी वानी में वैष्णवों की प्रशंसा की है।[2] पानप ने भगवान् के निराकार स्वरूप को ही अपना उपास्य माना है। पानप ने वैष्णव मत के अवतारवाद को ग्रहण नहीं किया।

---

१. डा० भण्डारकर-वैष्णविजम, शैविजम पृ० ९८-१००
१. पानपबानी १२'८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैष्णव मत का द्वितीय प्रमुख उपादान भक्ति-तत्त्व है। वैष्णव धर्म की इस भक्ति में प्रेम का विशेष महत्त्व है। वैष्णव धर्म का प्रेम-प्रधान भक्ति-तत्त्व पानप को पूर्णतया मान्य है। पानप ने स्थान-स्थान पर भक्ति-तत्त्व की महिमा का वर्णन किया है।[1]

वैष्णव मत पर पातंजल योग का भी प्रभाव पड़ा है। वैष्णव योग में यम-नियमों की संख्या बारह है। भागवत में वर्णित यम क्रमशः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, ह्री असंचय, अस्तित्व, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा और अभय।[2] इससे स्पष्ट है कि वैष्णव धर्म में सदाचारों का विशेष महत्त्व है। पानप-योग-साधना में भी सदाचरण का सम्मिश्रण है।

लोकरंजक एवं लोकरक्षक भगवान् की प्रतिष्ठा वैष्णव मत की विशिष्टता है। पानप लोक-संग्रहार्थ कर्म करना ईश्वर प्रेरित कर्तव्य समझते थे।[3]

उत्तर-मध्यकाल में वैष्णव मत के अन्तर्गत भक्ति में वर्ण व्यवस्था की उपेक्षा हो गई। रामानुज ने वर्ण-व्यवस्था की जिन शृंखलाओं को ढीला किया था, रामानन्द ने उन्हें बहुत कुछ उन्मुक्त कर दिया। वैष्णव मत की यह विशेषता पानप में भी पायी जाती है। उन्होंने सर्वत्र वर्ण-व्यवस्था के विष से सन्तप्त जनता में आशा रूपी जीवन का संचार किया।[4]

यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वैष्णव मत का प्रभाव पानप पर पड़ा था और इसी से पानप ने भी वैष्णव मत के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की।

१·८ रामावत सम्प्रदाय और पानप

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामानन्द जी थे। स्वामी रामानन्द जी चौदहवीं शताब्दी के उत्तरकाल में हुए थे। रामानन्द रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में हुए थे। रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत के प्रधान प्रतिपादक थे। रामानुज की शिष्य-परम्परा में राघवानन्द जी थे जो रामानन्द जी के गुरु थे। राघवानन्द ने रामानुज की भक्ति का सम्मिश्रण योग से किया। डा० बड़थ्वाल ने अपने एक लेख में इसका सुन्दर और उपयोगी विवेचन किया है।[5] स्वामी रामानन्द ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण स्वरूपों की व्याख्या करते हैं :

विकृष्ट प्राकृत गुणों से जो रहित हो उसे निर्गुण कहते हैं[6], तथा दिव्य गुणों से परिपूर्ण भगवान् का सगुणत्व सिद्ध होता है।[7]

---

१. पानपवानी—१३·६
२. श्रीमद्भागवत ११-१९-३३
३. पानपवानी—१७·१
४. पानपवानी—१४·३।
५. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल-योग-प्रवाह पृ० १ से २२ तक।
६. निर्गतानिकृष्टाः सत्वादय प्राकृता गुणा यस्मान्तन्निर्गुण। (आ० भाष्य १-१-२)
७. दिव्यगुणवत्वेन च सगुणत्वमित्युमयतस्यैव। (आ० भाष्य० १-१-२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे प्रतीत होता है कि रामानन्द ने साधारण जनता को भक्ति के लिए सगुण राम का उपदेश दिया था तथा साधना में यौगिक निर्गुण राम को आराध्य ठहराया था। सम्भवतः उनके भक्ति-क्षेत्र का सगुण राम और योग-क्षेम का निर्गुण राम ज्ञान-क्षेत्र में आकर द्वैता-द्वैत विलक्षण हो गया।

पानप ने अपनी अनुभूति के अनुसार भक्ति-क्षेत्र में निर्गुण-ब्रह्म में दिव्य गुणों का आरोप करके उसे सगुणत्व भी प्रदान किया।[1] योग तथा ज्ञान-क्षेत्र में निर्गुण ब्रह्म द्वैता-द्वैत विलक्षण तथा परात्पर हो गया।

नास्तिक दार्शनिक प्रभाव

१·९ जैन-दर्शन और पानप

जैन-धर्म बौद्ध-धर्म से अधिक प्राचीन है। सत्याचरण, अहिंसा, चोरी न करना, धन-त्याग तथा पवित्रता से जीवन बिताना आदि जैन-धर्म के सिद्धान्त हैं। जैन-मत के अनुसार जीव निसर्गतः मुक्त है, पर वासनाजन्य कर्म के कारण उसका शरीर और संसार से सम्बन्ध होता है। सँवर (कर्म के प्रवाह को निरुद्ध करना) और निर्जरा के द्वारा जब जीव का कर्म-सम्बन्ध छूटता है, तभी वह मुक्त होता है। जीव को मुक्ति पाने के मुख्य साधन हैं—सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र्य इन तीनों के समूह को त्रिरत्न अथवा चित्रत्न भी कहते हैं। चित्रत्न की प्राप्ति के लिए सदाचरण के अतिरिक्त ज्ञान की प्राप्ति भी परमावश्यकीय है। शुद्ध ज्ञान और यथार्थ ज्ञान ही केवल ज्ञान है। जीव अथवा आत्मा के शुद्ध मुक्त स्वरूप का ज्ञान ही केवल ज्ञान है। केवल ज्ञान ही मुक्ति-दशा है।

पानप को जैन-मत की जानकारी थी। उन्होंने जैन, बौद्ध आदि को नास्तिकतावादी की श्रेणी में समझा।[2]

फिर भी पानप जैनियों के (सरावगियों) के सत्याचरण, पवित्र जीवन-यापन से प्रभावित हैं। पानप भी केवल ज्ञान अर्थात् जीवात्मा का निज शुद्ध-मुक्त स्वभाव को जानने की बात कहते हैं। पानप ने आत्म-ज्ञान, निज स्वरूप के पहचानने पर बल दिया है जो जैन-मत के अनुकूल है। उनके इस कथन का अभिप्राय है कि अपने निज स्वरूप को जान लेने से मुक्त दशा प्राप्त हो जाती है।[3] पानप ने जैनियों को 'सरावगी' नाम से अभिहित किया है।

१·१० बौद्ध-दर्शन और पानप

बौद्ध-धर्म विश्व का एक प्रशस्त धर्म है। एक समय था जब बौद्ध-धर्म सारे संसार में अपना प्रभुत्व रखता था। बौद्ध-धर्म का भारतीय जीवन और विचारधारा पर

---

१. पानपबोध—१०·१
२. पानपबानी—८·३
३. पानपबानी—८·१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापक तथा अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा। इसके प्रतिद्वन्द्वी ब्राह्मण धर्म के अनुयायी भी बौद्ध-धर्म के प्रभाव से नहीं बच सके।

बौद्ध में वैदिक धर्म के यज्ञ-यागादि निषिद्ध ठहराए गये, परन्तु आचरण की दृष्टि से उन्हें ब्राह्मण-धर्म की बातों को ही ग्रहण करना पड़ा। उपनिषदों में वर्णित संन्यास-मार्ग का अनुसरण किया। आगे चलकर जब देश की विचारधारा पर लोक-संग्रह-प्रधान श्रीमद्भगवद्गीता का व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ने लगा, तब बौद्धों ने भी संन्यास-भाव को शिथिल किया और लोक-संग्रह के भाव को अपनाया। ऐसे रूढ़िवादी बौद्ध जो संन्यास-भाव का परित्याग न कर सके, हीनयानी कहलाए तथा नवीन लोक संग्रह-प्रधान भाव वाले बौद्ध महायान शाखा वाले कहलाए। इन दोनों के भी भेद-विभेद बन गये यहाँ तक कि बौद्ध-धर्म अठारह सम्प्रदायों में विभक्त हो गया।

पानप का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे बौद्ध-धर्म और विशेष-तया उसके महायानी स्वरूप से बहुत प्रभावित थे। बौद्धों की बुद्धिवादिता से पानप पूर्ण रूप से प्रभावित थे। पानप का प्रत्येक शब्द प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित है। लोक और वेद के अन्धाधुकरण से उन्हें घृणा थी। पानप की बुद्धिवादिता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। ऐसे स्थल पर पानप क्रांतदर्शी महात्मा के रूप में प्रदर्शित हुए हैं :

"चार वेद जांणै नहीं, तिरदेवा नहीं जांणै।
पानपदास कहत हैं परगट, बिरला संत पिछांणै॥
वेद कुरांन भगत नहीं जांणै, योह सब जग ब्योहार।
कहै पांनप आतम चीनहणा, वार पार सूँ पार॥
परगट है परमातमा, वेद न जांणै भेद।
कहै पानप सबै नर्क कूँ जांई, बिनदेषै बस्त अभेद॥
भेद औघट वेद न जांणै, भेद अभेद सिर मौड़ बषांणै।
हरजन षांय कमांय और गांवैं, चार वेद ताका भरम न पांवैं॥
आतम भेद अभेद सर्व में, और सब काहूँ कूँ दीषै।
वेद बषांण कहो क्या पाया, बोह गावै और सीषै॥
हर जन भेद अभेद षोज कै, पार ब्रह्म गह लीया।
कहै पानप जब सुर्त विचारी, हर निज दरसन दीया॥
चारों वेद जाल धीवर का, जीव फंस्या तामैं सारा।
कहै पानप सतगुर बिना, कौन छुटावन हारा॥
सूझ पड़ै सत संग तै, वेद कतेबां दूर।
आतम षोजै पानपा, सर्ब रह्या भरपूर॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आतम परगट जगत मैं, आराधै गवंन बिनासै ।
वेद कतेब दोऊ सार न जांणै, कहै पानप संत प्रगासै ।।''
—'वेद के अंग को निरणै ।'[1]

यज्ञ—याग अथवा कर्मकाण्ड के मानने वाले थे पंडितजन और उन्हीं के समान पाखण्डपूर्ण रोजा-नमाज़ वाले थे मुल्ला-मौलवी। कबीर की भाँति पानपदास जी ने भी इन दोनों का विरोध किया।[2]

बौद्ध धर्म के चार सत्य पानप में पाए जाते हैं—

(१) **दुःख**—अर्थात् सांसारिक दुःख के अस्तित्व की भावना। अनात्मवादी बौद्ध पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। कर्म-विपाक के कारण नाम रूपात्मक शरीर को नाशवान् जगत् के प्रपंच में फँसकर अनेक बार जन्म लेना पड़ता है। पुनर्जन्म के इस चक्र के कारण ही सारा संसार दुःखमय है। पानप ने भी इस विश्व को दुःखमय घोषित किया है।[3]

(२) **समुदय**—इसका अर्थ है दुःख का कारण। प्रत्येक भिक्षुक का यह परम कर्तव्य है कि वह सांसारिक दुःखों की खोज करे। दुःख के कारणों और उसके रूप अथवा भेदों का निर्देश सबके सम्मुख करे। प्रायः तृष्णा और कामना को ही दुःख का मूल कहा गया है। पानप ने भी तृष्णा और कामना को दुख का मूल कहा है।[4]

(३) **निरोध**—दुःख के कारणों के दूर करने तथा दुःख-निवारण के लिए किए गए प्रयत्न को निरोध कहा जाता है। पानप ने इन प्रयासों में ज्ञान को विशेषता प्रदान की है। ज्ञान से माया का पाश कट जाता है और दुःखों के कारण दूर हो जाते हैं।[5]

(४) **मार्ग**—दुःख के निवारण करने वाले प्रयत्नों और साधनों की साधना-पद्धतियों को मार्ग कहते हैं। वैराग्य एवं संन्याम को ही बौद्धों ने 'मार्ग' कहा है। पानप ने वैराग्य को स्वीकार किया है किन्तु वे संन्यास के पक्ष में नहीं दिखाई पड़ते। वे निरासक्त रहकर निष्काम कर्म करने को तथा निस्पृह 'रहनी' को ही उपयुक्त मार्ग मानते हैं।[6]

पानप का विश्वास था कि निस्पृह, निस्संग, निर्विषय रहकर जगत् में

---

१. पानपबानी—२·२-१०
२. पानपबानी—८, ९, १०, ११, १२, १४ और १६
३. पानपबोध—८·१
४. पानपबोध—१९·२०
५. पानपबोध—२०·२-३
६. पानपबानी—२०·४-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवहार करना वैराग्य अथवा भेष को धारण करना है। वह इस भाँति निष्काम-भाव से कर्म करते रहने को उत्तम समझते हैं।[1]

पानप ने शून्य शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। वे बौद्ध धर्म के शून्यवाद से भी प्रभावित हैं। शून्य की धारणा कबीर की भाँति पानप ने भी अपने ढंग की है। बौद्ध मतानुसार शून्य में शून्य, विज्ञान और महासुख ये तीनों गुण माने गए हैं। पानप ने भी इस अर्थ में शून्य का प्रयोग किया है।

> सून्यै पावै सून्यै धावै, सून्यै माहि समावै।
> कहै पानप सून्य कूं खोजै, तो बहुरि न भौ जल आवै ॥[2]

पानप शून्य का प्रयोग योगियों के ब्रह्मरन्ध्र के अर्थ में भी करते हैं। पानप ने भी बौद्धों के मतानुसार तत्त्व को बहुत कुछ अनिर्वचनीय कहा है। पानप पर बौद्धों के मध्यम मार्ग (मज्झम पटिपदा) का भी प्रभाव पड़ा है। बौद्ध धर्म में मध्यम मार्ग का अनुसरण करना श्रेयस्कर माना जाता है। पानप ने इस मध्यम मार्ग का अनुसरण अपने ढंग से किया।

बौद्ध धर्म काया-क्लेशमय उग्र तप में अधिक विश्वास नहीं रखता। पानप को भी क्लिष्ट साधना एवं काया-क्लेपमय तप नहीं रुचा, सहज पर ही बल दिया।[3]

बौद्ध वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था का घोर विरोध करते थे। बौद्ध धर्म साम्य का प्रेरक था। पानप पर भी इसका पूरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने वर्णाश्रम-धर्म की उपेक्षा की और साम्यवाद का प्रतिपादन किया है। पानप पर बौद्ध धर्म का प्रभाव तो पड़ा किन्तु दोनों का मौलिक भेद भी है। वे बौद्धों के प्राणभूत तत्त्व अनीश्वरवाद और अनात्मवाद के कट्टर विरोधी हैं, अटूट आस्तिक हैं।

पानप सारग्रही संत थे। प्रत्येक प्रमुख धर्म के सार-तत्त्वों को उन्होंने आत्मसात् किया। किसी बौद्ध भिक्षुक के सम्पर्क में रह चुके होंगे अथवा सिद्धों अथवा नाथों के माध्यम से उन पर बौद्ध धर्म की छाया पड़ी होगी।

१·११ पातंजल-योग मार्ग और पानप

योग अनादिकाल से भारत में साधना का प्रमुख अंग रहा है। वेदों एवं उपनिषदों में भी योग का वर्णन पाया जाता है। कहा यह जाता है कि आदि पुरुष हिरण्यगर्भ ने सर्वप्रथम मनुष्य-जाति के लिए योग-विद्या का उपदेश दिया था। पंतजलि ने हिरण्यगर्भ द्वारा प्रतिपाद्य योगशास्त्र का ही पुनः प्रतिपादन किया। यह योग-दर्शन 'पातंजल-योग-दर्शन' के नाम से प्रख्यात हुआ।

---

१. पानपबानी—२०·४-६
२. सुषमवेद—६-१०
३. पानपबानी—१४·१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पातंजल-योग-दर्शन के चार विभाग हैं—समाधिपाद, साधनपाद विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद, पतंजलि ने योग की परिभाषा—'चित्तवृत्ति निरोधः' कहा है। योग को समाधि की संज्ञा भी प्रदान की है। समाधि अथवा योग दो प्रकार का बताया है—सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात। चित्त की एकाग्रता में सम्प्रज्ञात समाधि होती है। सम्प्रज्ञात समाधि की साधना के लिए तीन विषयों का सहारा लेना पड़ता है, इन्हें गृहीता, ग्रहण तथा ग्राह्य कहा जाता है। ग्राह्य विषय दो प्रकार के होते हैं—स्थूल एवं सूक्ष्म। लक्ष्यवेधक जैसे स्थूल निशाने को साधकर क्रमशः सूक्ष्म तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म निशाना साधने का अभ्यास करता है। उसी प्रकार योगी भी सर्वप्रथम स्थूल विषयों को और फिर सूक्ष्म विषयों को ध्यान का आलम्बन बनाता है।

एकाग्रता में चित्त की दशा विशुद्ध स्फटिक-मार्ग के समान होती है। स्फटिक-मार्ग के सामने जो भी वस्तु होगी वही उसमें प्रतिबिम्बित होकर उसे अपने आकार का बना देती है और इसी प्रकार एकाग्रता के समय ध्येय वस्तु चित्त में प्रतिबिम्बित होकर चित्त को अपने ही आकार का बना लेती है तथा उस समय चित्त में ध्येय वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं रह सकती।

चित्त-वृत्ति-निरोध के लिए आठ अंगों की आवश्यकता है। ये अंग आठ हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

बाह्य और आन्तरिक इन्द्रियों के निग्रह-संयम को 'यम' कहते हैं। यम पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य। इनका पालन करने से दुःख और अज्ञान का नाश होता है। नियमों का पालन करने से मन का निग्रह होता है। नियम पाँच होते हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्राणिधान। सुख-पूर्वक बैठने तथा शरीर को साधने को 'आसन' कहते हैं। आसनों की सिद्धि से शरीर सबल हो जाता है। श्वास को भीतर भरना, उसे वहीं रोकना तथा धीरे-धीरे बाहर फेंकना इस क्रिया को प्राणायाम की संज्ञा दी गई है। प्राणायाम से मन का संयमन होता है। इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करना, इन्द्रियों का बाहरी विषयों से कोई सम्पर्क न रहना, इन्द्रियों का पूर्णरूप से मन के वश में हो जाना—'प्रत्याहार' कहलाता है। 'चित्त' को नाना विषयों से हटा कर किसी एक ही ध्येय में नियोजित करना 'धारणा' तथा एक ही केन्द्र में अखण्ड रूप से एकाग्र रहना 'ध्यान' कहलाता है। 'समाधि' साधन-रूप है। समाधि की अवस्था में संयम (ध्यान, धारणा, समाधि) का विनियोग करना आवश्यक है।

निरोध-परिणाम की प्राप्ति पर योगी को अनेक विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं। स्वर्ग के देवता उसे नाना प्रकार के प्रलोभन देते हैं। सच्चे और पक्के योगी प्रलोभनों से बिनाविचलित हुए कैवल्य-प्राप्ति के लिए ही प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकार की साधना से जीव के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। मुक्त तथा विशुद्ध स्वरूप मनुष्य कैवल्य-भाव में अवस्थित हो जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप के ऊपर पातंजल योग का प्रभाव है। पानप की योग-साधना में यम-नियम आदि का समावेश है, किन्तु पातजल योग के विभूतिपाद के प्रत्यक्षीकरण का संकेत नहीं मिलता।

पानप की योग-साधना का विस्तृत विवेचन यथास्थान आगे के अध्याय में किया जाएगा।

१.१२ वज्रयान और पानप

बौद्ध-धर्म की महायान शाखा ने गौतम बुद्ध को देवत्व प्रदान किया, तदनन्तर उनके उपदेशों के श्रवण, मनन तथा पाठ आदि की प्रथा चल पड़ी। वे उपदेश दीर्घकाय होते थे जो पाठ के उपयुक्त न थे। अतः उन्हें सूत्रवत् बनाया गया। इन सूत्रों ने मन्त्रों का रूप ले लिया। इन मन्त्रों में अलौकिक तथा अपार शक्ति की कल्पना की गई। मन्त्रों को महत्त्व प्रदान करने वाला समूह मन्त्रयान के नाम से प्रख्यात हुआ। मन्त्रयान के अधिक प्रचार से श्रद्धालुओं की संख्या में अभिवृद्धि हुई। मन्त्रयानी साधकों में से अनेक व्यक्तियों ने इन श्रद्धालु अनुयायियों की उदारता से लाभ उठाकर धन-संग्रह किया और इस धन-संग्रह ने विलासिता को जन्म दे दिया। तदनन्तर इसके प्रख्यात साधक, सिद्धों के नाम से पुकारे गये। चौरासी सिद्धों को इसकी ख्याति और विस्तार एवं प्रचार का श्रेय दिया जाता है।

वज्रयानी सिद्धों ने महायान की शून्यता को प्रज्ञा और करुणा को 'उपाय' के नाम दे दिए तथा इन दोनों के मिलन को साधक का परम लक्ष्य ठहराया। बौद्ध-मत का बोधिचित, विशुद्ध एवं व्यापक करुणा-भाव न रहकर, वज्रसत्व बन गया। प्रज्ञा का निष्क्रिय ज्ञान-मात्र कहकर उसे स्त्री का रूप दे दिया गया तथा इसके विपरीत सक्रिय तत्त्व को पुरुष मानकर इन दोनों के अन्तिम मिलन को शक्ति एवं शिव के मिलन के समान परमावश्यक समझा जाने लगा। स्त्री-पुरुष, शिव-शक्ति, वज्र-प्रज्ञा पर्याय हो गये। इन दोनों के पारस्परिक मिलन की अन्तिम दशा को समरस अथवा महासुख की संज्ञा प्रदान की गयी। यही वज्रयानियों का अन्तिम लक्ष्य हो गया। वज्रयानियों ने वज्र-शब्द को पुंसेन्द्रिय तथा कमल को स्त्रीन्द्रिय की संज्ञा दी और इस प्रकार इनकी साधना केवल कामोपभोग का साधन-मात्र रह गई। इसका परिणाम यह हुआ कि घोर अनाचार की वृद्धि हो चली। ऐसे सिद्धान्तों के आधार पर वज्रयानी सभी दुर्व्यसनों में प्रवृत्त होते रहे और समाज में अनैतिकता, अनाचार तथा व्यभिचार का प्रचार करते रहे।

पानप पर वज्रयानियों का प्रभाव नहीं दृष्टिगत होता यदि थोड़ा-बहुत कहा भी जा सकता है, तो संकेतात्मक रूप में—

> तिरिया तारण हार है, जो गहलीजै साथ।
> तिरिया पुर्ष दोऊ सग मिलैं, तब मिटै काल की घात॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तिरिया तन सूँ नीसरै, फिर तन माँहि समाय ।
कहै पानप जैसा तत विचारै, सो मुक्ता फल षाय ।।
नैन नारी पलक के निरगै ।[१]

१.१३ सहजयान और पानप

इन चौरासी सिद्धों में ऐसे सिद्ध भी थे जिन्होंने साधना के मर्म को समझा था । महासुख, पूर्णानन्द अथवा समरस की दशा का अन्य नाम सहज था । इस मत को इसी से सहजयान की संज्ञा प्रदान की गई । सहजयान मूल रूप में सात्विक ही था । इन सहजयानी सिद्धों ने साधना में चित-शुद्धि एवं सहजमन-निरोध को ऊँचा स्थान दिया है । शून्य-साधना में भी इन्हें विश्वास था । ये ईश्वर का सहज स्वरूप द्वैताद्वैत विलक्षणवाद मानते हैं । उसी की उपासना का आदेश उन्होंने दिया है । ये लोग हृदयस्थ ब्रह्म में आस्था रखते थे । उसकी प्राप्ति इन्होंने हठयोग से भी बतलायी है । हृदयस्थ बुद्ध की भावना ने सिद्धों को रहस्यात्मक भी बना दिया है । वे दार्शनिक सिद्धान्तों को विचित्र ढंग से प्रकट किया करते थे । ऐसी अभिव्यक्ति को विद्वानों ने संधा अथवा संध्या भाषा के अन्तर्गत माना है ।

सहजयानी सिद्धों की प्रमुख प्रवृत्ति खण्डन-मण्डन की थी । ये लोग दूसरे सम्प्रदाय की बातों का खण्डन कठोर शब्दों में करते थे और अपने मत का मण्डन भी करते थे । वर्ण-व्यवस्था के ये कट्टर विरोधी थे । तीर्थाटन, गंगा-स्नान और मूर्ति-पूजा आदि में इन्हें आस्था न थी । ये आडम्बर और पाखण्ड के विरुद्ध थे । इस प्रकार इन्होंने सब प्रकार से अपने धर्म को सरल और सहज रूप देने की चेष्टा की थी । सहज साधना का अन्तिम उद्देश्य चित्त की शुद्धि बतलाता है, जिसके द्वारा हमें सहजावस्था की उपलब्धि होती है और जो सहज ही हमारे परमार्थ का आदर्श रूप है । सहज निज स्वभाव का प्रतीक है ।

सहजयानियों ने वज्रयानियों की सांकेतिक भाषा को सार्थक किया । इड़ा-पिंगला नामक नाड़ियों के द्वारा पवन-शोधन करके महासुख की प्राप्ति बतायी । युगनद्ध के स्थान पर योगाभ्यास द्वारा साधना की जाने लगी । यह एक ऐसा मार्ग बना जिसमें किसी प्रकार की क्लिष्ट, निकृष्ट अथवा हेय साधना नहीं थी ।

पानप पर सहजयान-साधना का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है । पानप सात्विक स्वभाव के थे । उन्हें सदाचरण अत्यधिक रुचिकारी था । वे साधना में सरलता तथा सात्विकता पसन्द करते थे ।

सिद्धों के अनुकरण पर उन्होंने ब्रह्म को द्वैताद्वैत विलक्षण कहा है ।[२] पानप

---

१. पानपबानी—२.५५-५६ ।
१. पानपबानी—१.१, २, ३, ६, ७ एवं ८ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने भी हृदयस्थ ब्रह्म की उपासना विधेय ठहरायी है।[१] इन्होंने भी आत्म-निग्रह तथा मनोजय को साधना में आवश्यक माना है।[२] सहजयानियों का सहज शब्द तो पानप ने अपना ही लिया और उसका खूब प्रचार किया।[3] सहजयानियों की खण्डन-मण्डन-प्रवृत्ति भी पानप में पायी जाती है। इनकी उलटबाँसियाँ भी सिद्धों की संधा भाषा से मिलती-जुलती है। पानप ने सिद्धों के समान ही तीर्थाटन, मूर्ति-पूजा, गंगा-स्नान, रोज़ा, नमाज़ और अज़ान आदि की निन्दा की है।[४] पानप पर यह प्रभाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पड़ा होगा। सम्भव है, पानप पर यह प्रभाव नाथ-सम्प्रदाय की साधना-पद्धति के माध्यम से पड़ा हो।

१·१४ कौल सम्प्रदाय और पानप

इस मत के प्रथम प्रवर्त्तक मत्स्येद्र नाथ कहे जाते हैं। कौल साधकों के अनुसार कुल का अर्थ 'शक्ति' और अकुल का अर्थ 'शिव' होता है। कुल से अकुल का का सम्बन्ध-स्थापन ही 'कौल मार्ग' है।[५]

इस मत में शिव को अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अनीश्वर, धर्महीन तथा निरंग बताया गया है। शिव में अव्यक्त भाव से स्थित शक्ति इच्छा-रूप में व्यक्त होती है। यही आद्या शक्ति आविर्भूता तथा त्रिपुरा है। शिव इसके बिना कुछ भी करने में समर्थ नहीं। 'इ' कार शक्ति का द्योतक है, शिव में 'इ' कार निकाल देने पर शव बच रहता है। इसी से शक्ति ही उपास्य है।

शक्ति की उपासना करने वाले शाक्त कहे जाते हैं, इन्हीं को कौल भी कहा गया है। अन्य सम्प्रदाय वाले विलष्ट साधना करके परमानन्द की प्राप्ति करते हैं, पर इन तान्त्रिक लोगों का दावा है कि कौल साधक अपनी साधना के अनुसार इस आनन्द का अनुभव सरलता से कर लेते हैं।

साधक के लिए पंचमकार—मद्य, मत्स्य, माँस, मुद्रा तथा मैथुन का सेवन करना परमावश्यक है। इस साधना में भोग और योग का मिश्रण होने से ये वज्र-यानी साधना के अवशेष हैं।

कौल साधक के लिए जीव-शक्ति कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध करना आवश्यक है। शक्ति ही महाकुण्डलिनी रूप से जगत् में व्याप्त है, वही कुण्डलिनी रूप में मानव-शरीर में स्थित है। मनुष्य की जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं में कुण्डलिनी निश्चेष्ट रहती है, इसके द्वारा शरीर-धारण का कार्य होता है।

---

१. पानपबानी—१·४, ५

२. ,, —१·७।

३. ,, —१·१५।

४. पानपबानी—८·१, ६·१, १०·२, १२·४, १६·३, २३·२७।

५. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय—पृ० ६१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधना के द्वारा साधक कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करता है। उद्बुद्ध कुण्डलिनी इन सभी चक्रों को पार करती हुई सहस्रार में प्रवेश करती है। सहस्रार को कैलाश भी कहा जाता है। यहाँ शक्ति शिव से मिल जाती है। इस प्रकार शिव-शक्ति के सम्मिलन से परमानन्द उपलब्ध हो जाता है जो कौल साधक का ध्येय था। साधक को फिर कुछ भी कर्त्तव्य नहीं रह जाता।

कौल सम्प्रदाय में साधकों की तीन श्रेणियाँ बतायी गई हैं—पशु, वीर तथा दिव्य। इनकी अवस्थाओं को भी पशु-भाव, वीर-भाव तथा दिव्य-भाव कहते हैं। इनके लिए साधना के अलग-अलग मार्ग बताए गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि पशु-भाव वालों को वाममार्गी साधना का अधिकार रहा होगा।

तन्त्रशास्त्र में सात प्रकार के आचार बताए गए हैं—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार तथा कौलचार। वेदाचार में वैदिक काम्य कर्म हैं। वैष्णवाचार में निरामिष भोजन, व्रत-उपवास, ब्रह्मचर्य और भजना-सक्ति है। शैवाचार में यम, नियम, धारणा, समाधि की साधना तथा शिवरात्रि की उपासना है। दक्षिणाचार में उपर्युक्त तीनों आचारों का पान करना तथा भोग आदि का सेवन करके इष्ट मन्त्र का जाप करना है। वामाचार में आत्मा की वामा (शक्ति) रूप में कल्पना करके साधना करना। सिद्धान्ताचार में मन को अधिकाधिक शुद्ध करके सभी वस्तुओं के शुद्ध होने का भाव अपनाना, यह समझना कि सब कुछ परम शिव ही है। कौलाचार साधना की सर्वोच्च अवस्था है। इसमें भेद-बुद्धि का नाश हो जाता है, अद्वैत की सिद्धि हो जाती है। संक्षेप में यही कौल मार्ग है।

पानप पर इस सम्प्रदाय का कोई विशेष सीधा प्रभाव नहीं दिखाई पड़ा।

१.१५ नाथ-सम्प्रदाय और पानप

भारतीय धर्म-साधना में नाथ-सम्प्रदाय विविध नामों से विख्यात है। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में ही सिद्धमत (पृ० १२) योगमार्ग (पृ० ५) योग सम्प्रदाय (पृ० ५८), अवधूत सम्प्रदाय (पृ० ५६) और अवधूत मत (पृ० १८) आदि विविध नामों से इसका परिचय दिया गया है।[१]

नाथ-सम्प्रदाय के आदि—आचार्य श्री आदिनाथ या भगवान् शंकर ही माने जाते हैं। मध्य युग में इसका पुनरुत्थान करने का श्रेय बाबा गोरखनाथ को ही है। गोरखनाथ का उदय सिद्धों की वीभतस तामसिक साधना-पद्धति की प्रतिक्रिया-रूप में हुआ था। इस सम्प्रदाय में सदाचरण को विशेष महत्त्व दिया जाता है। सिद्ध-साधना के प्रधान उपादान मद्य, माँस, मैथुनादि नाथ-पंथ में अत्यन्त हेय माने जाते हैं। नाथ-पंथ के प्रख्यात प्रवर्तक गोरखनाथ जी का मध्यकालीन विचारधारा के प्रवर्तकों में सर्वोच्च स्थान है। मध्य युग में शंकराचार्य के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा ऐसा व्यक्तित्व नहीं हुआ जो गोरखनाथ से समानता कर सके।

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय पृ० १।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप पर नाथ-पंथ का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

नाथ-पंथ के दार्शनिक-सिद्धान्त

इस सम्प्रदाय के अनुयायी अपने को वेदान्तियों, सांख्यों, मीमांसकों, बौद्धों तथा जैनों आदि दार्शनिकों से भिन्न मानते हैं। वे वेद-शास्त्रादि में विशेष आस्था नहीं रखते। वे ओंकार शब्द में आस्था रखते हैं और उसकी ही साधना करते हैं। पुस्तकीय ज्ञान को भी वे तुच्छ दृष्टि से देखते हैं।

ये ब्रह्म-तत्त्व को द्वैताद्वैत विलक्षण मानते हैं :

"वसति न सून्यं-सून्यं न वसति अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर में वालक बोले, ताका नाव धरउगे कैसा॥"

—गोरखवानी पृ० १

गोरखनाथ जी कहते हैं कि परमतत्त्व अत्यन्त अगम है। वह इन्द्रियों का विषय नहीं। उसे न हम अस्ति-रूप कह सकते हैं और न नास्ति रूप। वह अस्ति और नास्ति दोनों से परे हैं। उसका निवास-स्थान आकाश अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में है। उसका नाम नहीं रखा जा सकता।

इनका शब्द में विश्वास है। वे 'शब्द' ही को सब कुछ कहते हैं। यही शब्द-वाद प्रणवोपासना का रूप धारण कर लेता है, उसमें नाद और बिन्दु की भी चर्चा मिलती है। ये नाद को नाथांश तथा बिन्दु को शरीरांश मानते हैं। इनकी दृष्टि में नाथ-स्वरूप में लय होना ही मुक्ति है। ये अद्वैतावस्था से भी परे सदानन्द की अवस्था बताते हैं जो बाह्याचार के पालन से नहीं मिल सकती। इनका विश्वास है कि शक्ति सृष्टि करती है, शिव पालन करते हैं, काल संहारक है और नाथ मुक्ति का दाता है। नाथ मुक्तात्मा है, शेष सभी जीव हैं। ये माया को भी मानते हैं। माया का एक रूप विद्या है, जो मोक्षदायी है और दूसरा अविद्या जो बन्धन-कारक है।

पानप पर नाथ-पंथ के दार्शनिक सिद्धान्तों की भी छाया दिखायी पड़ती है। पानप ने परम तत्त्व का निरूपण द्वैताद्वैत विलक्षण ज्योति-स्वरूपी तत्त्व के रूप में किया है।

घट में दीपग वलत है, पाँच तत्त्व कर बात।
कहै पानप दीपग सही, वलत रहै दिन रात॥
हम बासी उस देश के; जहाँ पारब्रह्म को षेल।
दीपग देष्या अगम में, बिन बाती बिन तेल॥
तेल विना बाती विना, दीपग बलै अनेक।
अन्तर चितवै पाँनपा, मगन भयो मन देष॥

ब्रह्म के अंग को निरणै॥ १९-२१-१

---

१. पानपबानी—२-१९-२१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उक्त उदाहरण लगभग उसी प्रकार का है जैसा संत कवीर का। पानप ने भी माया के विषय में बहुत कुछ कहा है। उन्होंने कनक और कामिनी की निन्दा की है। इन्होंने शब्दोपासना को भी स्वीकार किया है। अनेक स्थलों पर नाद-बिन्दु की चर्चा पानप ने भी की है। नाथ-पंथी के समान पानप भी नाद को ईश्वरांश और बिन्दु को शरीरांश ध्वनित करते है। मोक्ष-पद का वर्णन भी नाथ-पंथियों के समान ही किया है।[1]

१.१६ नाथ-सम्प्रदाय की साधना-पद्धति और पानप

नाथ-पंथ-योगी को जटिल एवं क्लिष्ट साधना करनी पड़ती है। नाथ-पंथी योगियों का विश्वास है कि सहस्रार में स्थित गगनमण्डल में औंधे मुँह का अमृत-कुण्ड है। इसे चन्द्र-तत्त्व भी कहते हैं। इसमें से निरन्तर अमृत झरता रहता है। जो योगी इस अमृत का उपभोग कर लेता है वह अजरामर हो जाता है। इसका उपभोग करना कठिन ही है। इसका पान मुक्त योगी, जिसने श्रेष्ठ गुरु प्राप्त कर लिया है, कर सकता है। इस अमृत को पान करने के लिए सांसारिक भोगों के बन्धनों से मुक्त होना है। यह वैराग्य-भावना गुरु-कृपा से ही साधक में उत्पन्न होती है। यह वैराग्य-भावना नैतिक संयमों में निम्नांकित को प्रमुखता देती है :

(१) मन की पवित्रता का विशेष ध्यान रखना वांछनीय है।

(२) वेद, स्मृति, पंडित, मूर्ति-पूजा आदि मिथ्याडम्बरों से दूर रहना अपेक्षित।

(३) योगी को धैर्यवान् होना चाहिए।

(४) योगी को विकार-रहित होना चाहिए।

(५) योगी को शीलवान् होना चाहिए।

(६) मध्यम मार्ग का अनुसरण योगी को करना चाहिए।

(७) उसे ब्रह्मचर्य-व्रत का कठोरता से पालन करना अनिवार्य।

(८) योगी को मद्य, मांस, भाँग तथा अन्य मादक पदार्थों से दूर रहना चाहिए।

(९) क्लिष्ट साधना से बचना चाहिए।

(१०) पुस्तकीय ज्ञान को महत्त्व नहीं देना चाहिए।

उक्त नैतिक आचरणों तथा गुरु की कृपा से यह वैराग्य भावना दृढ़ हो जाती है। तब साधक को निम्न तीन प्रकार की साधनाओं को करना चाहिए—

(१) इन्द्रिय-निग्रह, (२) प्राण-साधना, (३) मन-साधना। साधना पर बहुत ही जोर दिया गया है। इन्द्रियों का सबसे बड़ा आकर्षण नारी है, इसी से इस पंथ में नारी

---

१. पानपबानी—४, ६, ७, १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की घोर निन्दा की गई है। यही नहीं पानप ने तो 'नैन नारी पलक के अंग को निरणै' स्वतन्त्र सब्दी रची है।[1]

(१) इन्द्रिय-निग्रह से विन्दु का स्थैर्य प्राप्त होता है, शरीर नीरोग तथा सशक्त होता है और आसन में दृढ़ रहने की क्षमता प्राप्त हो जाती है।

(२) प्राण-साधना में प्राणायाम द्वारा प्राण-साधना की जाती है। योगी में प्राण-विजय की कामना का प्रादुर्भाव होता है और तब योगी प्राणायाम की साधना में प्रवृत्त होता है। प्राणायाम के द्वारा दसों वायु वश में हो जाती हैं। शरीर के रोम-रोम में अनेक छिद्र हैं। इनसे होकर शरीर में पवन आता-जाता है। इन रोम-छिद्रों को बन्द करने के लिए ही नाथ-पंथ में भस्म धारण की जाती है क्योंकि सब द्वारों को बन्द करना नाथ-पंथी योगी के लिए परमावश्यक है।[2]

(३) मन-साधना में प्राण-साधना के उपरान्त मन-साधना करनी होती है। मन-साधना के द्वारा मन को वश में किया जाता है। मन की सभी वृत्तियाँ नाम-रूपात्मक संसार के विषयों की ओर रहती हैं। साधक उन्हें मन-साधना की इस क्रिया को उलटी चाल भी कहा जाता है। इस प्रकार इन्द्रिय-निग्रह से आसन, प्राण-साधना से प्राणायाम और मन-साधना से प्रत्याहार सिद्ध होते हैं। इनके सिद्ध हो जाने के उपरान्त साधना कुण्डलिनी-उत्थापन तथा नाड़ी-शोधन के रूप में आगे बढ़ती है। चक्र-भेदन की क्रिया भी करनी होती है। षट्-चक्र-भेदन के उपरान्त शब्द-सुरति-योग की अवस्था आती है। यह योग अनाहत नाद से सम्बन्ध रखता है। यह नाद कुण्डलिनी-भेदन पश्चात् सुनाई पड़ता है। इसी में शून्यता की अनुभूति होती है।

नाथ-पंथ की इस साधना-पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पानप पर है। साधक को इसके लिए सर्वप्रथम वैराग्य-भावना दृढ़ करनी पड़ती है। अपनी रहनी-करनी-कथनी को ठीक करना होता है तथा गुरु की प्रतिष्ठा करनी पड़ती है। वैराग्य-भावना,[3] मन की पवित्रता,[4] वेद-शास्त्र एवं मूर्तिपूजा का विरोध,[5] विकार रहित रहना,[6] मद्य-माँस आदि निषेध,[7] आदि सभी बातें पानप में पाई जाती हैं। लगता है नाथ-पंथ की त्रिविधि साधना से भी पानप परिचित थे। इन्द्रिय-निग्रह की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने भी नारी-निन्दा की है। प्राण-साधना और मन-साधना भी

---

१. पानपबानी—४३, ६२
२. नाथ-पंथ में योग-कल्याण का योगांक पृ० ७७०,
३. पानपबानी—३.२, ४·१
४. ,, —१६·१, १०·४
५. ,, —१६·६, १६·२८
६. ,, —२१·४
७. ,, —३२·८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप में मिलती है। नाथ-पंथ में काया-साधन, कुण्डलिनी-उत्थापन, नाड़ी-साधना का महत्त्व है ही। पानप ने शब्द-सुरति-योग को अपनाया और शून्य स्थिति का भी वर्णन किया है।

पानप पर नाथ-पंथी भाषा और अभिव्यक्ति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इतना ही 'नीझर झरना' वाक्यांश गोरख का है जिसका प्रयोग पानप ने अनेक स्थलों पर अनेक बार किया है।[1]

गोरखनाथ द्वारा प्रयुक्त शब्द भी कबीर की भाँति पानप में भी कम नहीं पाए जाते हैं। यथा—नाद-व्यंद, सुरत-निरत आदि।

इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि नाथ-पंथ का पानप पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। दार्शनिक विचारों, योगी-स्वरूप, साधना, कथनी, करनी और रहनी पर उनका प्रभाव पड़ा है।

१.१७ संत-मत और पानप

हमारे देश में प्राचीन-काल से ही सन्त-परम्परा चली आ रही है। पानप को सन्त परम्परा से निम्नांकित बातें प्राप्त हुईं :

(१) कर्म और वैराग्य का समन्वय

सभी सन्त भजन के साथ-साथ कर्म करने में विश्वास रखते थे। गृह-त्याग में इनका विश्वास नहीं था। निरासक्त गृहस्थ-जीवन व्यतीत करना इनका उद्देश्य था। पानप ने भी इस बात को स्वीकारा है।[2]

(२) भेद भाव विहीनता

वर्णाश्रम-धर्म का विरोध कालान्तर से होता चला आ रहा था। मध्यकाल में स्वामी रामानुज ने भक्ति-क्षेत्र का द्वार सबके लिए खोल दिया। सन्त नामदेव ने भी भेद-भाव की निन्दा की। पानप ने भी जाति-पाँति के इस भेद-भाव को व्यर्थ बतलाया।

(३) ब्रह्म की निर्गुणता

ब्रह्म की निर्गुण-भावना को सभी सन्तों ने स्वीकार किया है। सन्त नामदेव ने भी ब्रह्म को निर्गुण कह कर गाया है। पानप ने भी अद्वैतवाद ही का प्रतिपादन किया हालांकि उन्होंने अनेक सगुण वाची शब्दों का प्रयोग किया, किन्तु उनका "राम" आदि कबीर की ही भाँति है।

(४) नाम-साधना

भक्ति-क्षेत्र में नाम-साधना प्राचीनकाल ही से प्रचलित है। नामदेव ने नाम-साधना को अधिक महत्त्व दिया है। भक्ति-क्षेत्र में पानप ने भी नाम-जप को विशेष महत्त्व दिया।

---

१. गोरखबानी पृ० २०
२. पानपबानी पृ० १०५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह सत्य है कि पानप पर सन्त मत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सन्त मत की परम्परा से पानप का सम्बन्ध रहा है। पानप का कथन है—

"गोरख, दत्त, भरथरी, गोपी, जलंधर जोग सम्भाले हो।
नानक, पीपा, कान्ह, मुरारी, दास कबीर पुकारे हो॥[१]
छिपी न भगती कबीर की, नानक छिपा न बोला।
पानपदास परगट कहै, तू कर आतम सूँ मेला॥[२]

इस प्रकार से सिद्ध है कि प्राचीन सन्तों के प्रति पानपदास ने श्रद्धा प्रकट की है।

१.१८ इस्लाम-दर्शन का प्रभाव और पानप

पानप के आविर्भाव के शताब्दियों पूर्व मुस्लिम विचारधारा तथा सभ्यता का प्रभाव भारतवर्ष पर पड़ चुका था। कबीर पर भी उसका प्रभाव पडना आश्चर्यजनक नहीं। टाइटस ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन इस्लाम' में लिखा है—"हिन्दुत्व के कारण इस्लाम में गम्भीर परिवर्तन हुए हैं और हिन्दू-धर्म आज भी आश्चर्यजनक आत्म-विश्वास तथा संतोष के साथ अपने निश्चित मार्ग पर चल रहा है।[3]

डा० ताराचन्द जी का भी मत है कि 'हिन्दू मस्तिष्क के मूल-तत्त्व में ही परिवर्तन हो गया और दूसरी ओर मुसलमानों ने जीवन के सभी क्षेत्रों में हिन्दुओं का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया।[४]

ई० बी० हैवेल ने भी लिखा है—"इस्लाम ने भारत के राजनीतिक केन्द्रों पर अधिकार कर लिया, उसकी सेनाओं को नियंत्रित किया और उसके राजस्व को हड़प लिया किन्तु फिर भी उसने अपने सबसे प्रिय पदार्थ मानसिक साम्राज्य को हाथ से नहीं जाने दिया और उसकी आत्मा ने कभी घुटने नहीं टेके।[५]

पानप एक सारग्रही सन्त थे। उनके निकट हिन्दू-मुस्लिम अथवा किसी अन्य मत-मतान्तर का कोई प्रश्न नहीं था। वह सब कहीं और प्रत्येक से सदगुण ग्रहण कर लेने की चेष्टा करते थे। इस्लाम-दर्शन के अनुसार परमेश्वर एक है। वह एक मात्र परमेश्वर है। "ला इला-हा इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूललुल्लाह" यह कुरान के दो सूरों के अंशों के मेल से बना है। इसका अर्थ है—"अल्लाह के सिवा कोई उपासना के योग्य नहीं—मुहम्मद सल्लाल्लाहु अलैह व सल्लम अल्लाह के

---

१. पानपबोध-स्तुति—५, ३
२. पानपबोध-सबदी—३४, २१
३. एस० आर० शर्मा—भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास पृ० २२२
४. इन्फ्लूएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर पृ० १३७
५. एस० आर० शर्मा—भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास पृ० २१४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रसूल हैं। श्री रामपूजन तिवारी कहते हैं—"अल्लाह का आकाश, पाताल, पृथ्वी सब जगह प्रकाश है। कुरान का अल्लाह समूचे संसार के ऊपर निगाह रखता है। वह बुरे कर्मों का बुरा और अच्छे कर्मों का अच्छा फल देता है। मनुष्य और अल्लाह के बीच निरंकुश मालिक और सेवक का सम्बन्ध है।[1]

उक्त उदाहरण से यह प्रतीत होता है कि इस्लाम की अल्लाह-भावना में वह एकाधिपति शहंशाह है जिसके ऊपर कोई दूसरा शासनकर्त्ता नहीं। वही जगत् के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा रखता है। वह दण्ड देता है, पर जो अच्छे कर्म करते हैं या उसमें विश्वास करते हैं वे सुख का उपभोग करते हैं, अर्थात् वह पक्षपाती है, परन्तु पानप को इस्लाम की यह अल्लाह-भावना मान्य नहीं। पानप तो परमात्मा को विश्व के कण-कण में व्याप्त मानते हैं। जो घट-घट में व्याप्त है, वह संख्यातीत है और वह अद्वैत है :

"पीर पैगम्बर औलिया, केते षान सुलतान।
कहै पानप एक याद बिन, हो गए गरद मसाण॥
पीर पैगम्बर देवता, धावत है ससार।
हर हजूर जान्या नहीं, कहै पानप जगत गँवार॥
मुसलमान अल्लहै से डरे, मरण हक जीवतामरे।
बकरी पाँच करे तबकीर, दरद बंद सोई जाणै पीर॥
अपनी सी पीड़ और की जाणै, करै बंदगी अधर ठिकाणै।
षोजै कदम लगावै जाँन, कहै पानप सोई मुसलमान॥[2]

पानप का निश्चित मत है कि इन वाह्याडम्बरों से भेद-विभेद ही फैलता है, आत्म-शुद्धि नहीं हो पाती। पाखण्डों का पानप ने विरोध किया है :

"षुदा षुदी से दूर है, नाकर षुदी गंवार।
षुदी जगत के सीस पर, पानप जम की है पैजार॥
षुदी कुफर सैंदूर है, कुफरी हद्दाँ दोय।
कुफर तजै दीदार हो, कहै पानप झै कोय॥

कुरान में मानवीय आत्मा को ईश्वर से सम्बद्ध बताया गया है। वह सर्वोपरि है। उसके उद्गम की अनेक स्थितियाँ बतलाई गई हैं। कुरान शरीफ के अनुसार निधन के उपरांत सभी आत्माएँ निर्णय के दिन की प्रतीक्षा करेंगी। जीवात्मा अजर, अमर, अविनाशी है, वह अनन्त है, वह सभी भेदों से ऊपर है, वही है ब्रह्म का अंश जो एक रस सर्वत्र व्याप्त है, वह उससे भिन्न है ही नहीं। फिर कौन कयामत के दिन तक पाप-पुण्य का फैसला सुनने के लिए रुका रहेगा, यह प्रश्न उठता ही नहीं।

---

१. श्री रामपूजन तिवारी—सूफी मत साधना और साहित्य पृ० २४६
२. ज्ञान सुषमनी—८१-८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुरान शरीफ के अनुसार ईश्वर ने कुन (हो जा) शब्द-मात्र से विश्व का निर्माण किया था। परमात्मा ने सर्वप्रथम सृष्टि में आदम को बनाया। वह उसी का प्रतिरूप था जिसमें उसने अपनी आत्मा को डाला था। इस आदम से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। हल्लाज नासूत (मानवीय प्रकृति) को लाहूत (ईश्वरीय प्रकृति) से किसी प्रकार भिन्न मानता है।

इस्लाम में आत्म-शुद्धि के लिए पंच-कर्तव्यों का विधान था। तोहीद (एक ईश्वर पर विश्वास), सलात (प्रार्थना), रोजा (उपवास), जकात (दान) और हज (काबे की यात्रा) ये पाँच स्तम्भ माने गए हैं। इनके करने से आत्म-शुद्धि होती है और अल्लाह से तादात्म्य की तत्परता आती है।

इस्लाम में रमजान के महीने की भी बड़ी महिमा है। पवित्र होने के लिए इस मास में उपवास (रोजा) रखना परमावश्यक बन गया। इसमें दिन का बहुत महत्त्व है, रात्रि का नहीं। दिन में सब प्रकार के संयम का आदेश है।

पानप भी कबीर की ही भाँति इस्लामी साधना से सन्तुष्ट नहीं दीखते। उन्हें पंच वक्ता नमाज, रोजा, हज की यात्रा आदि में आडम्बर ही दृष्टिगत हुआ है।

इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि पानप पर इस्लामी दर्शन तथा साधना का प्रभाव नहीं है। यदि थोड़ा प्रभाव है तो एकता की दृष्टि से—

"हिन्दू तुरक का पानप एक, सोई सच्चा जो करै बबेक।
विरले हर जन पानप पाया, बिन पानप याही जनम गंवाया ॥"[1]

१. १९ सूफी मत और पानप

सूफी मत का उदय रूढ़िवादी इस्लाम प्रतिक्रिया रूप में हुआ था, इसका उद्गम-स्रोत इस्लाम के समान कुरान ही से है। ईसा की सातवीं शताब्दी में सूफी मत उस समय अंकुरित हो रहा था जब मुस्लिम जगत् में ईसाई-प्रभाव से संन्यास-जीवन के लिए एक महान् क्रांति हो रही थी। महा पण्डित राहुल साँकृत्यायन ने लिखा है—"अरब से निकला इस्लाम भक्ति-प्रधान धर्म था, ईसाई और यहूदी-धर्म भी भक्ति-प्रधान थे। यूनानी दर्शन तर्क प्रधान था, केवल भक्ति-प्रधान धर्म बुद्धि को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। समाज को स्थिरता प्रदान करने के लिए श्रद्धालुओं की जरूरत होती है—श्रद्धालुओं की श्रद्धा को डिगा कर, बिना नकेल के ऊँट की भाँति स्वच्छन्द भागने वाली बुद्धि को फँसाना जरूरी है—इन्हीं ख्यालों को लेकर यूनानियों के पीछे भारतीय रहस्यवाद से मिश्रित नव अफलातूनी दर्शन की बुनियाद रखी थी। जब इस्लाम के ऊपर भी यही संकट आया, तो उन्होंने भी उसी तैयार हथियार को इस्तेमाल किया। ईसाई साधक तथा हिन्दू बौद्ध योगी साधक उस वक्त भी मौजूद थे, इस्लामी विचारक यह भी देख रहे थे। ये योगी साधक कितनी

---

१. सुषमवेद—ज्ञान सुषनी पृ० ९८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफलता के साथ भक्तों और दार्शनिकों दोनों के श्रद्धाभाजन हैं. इसलिए इस्लाम ने भी सूफीवाद के नाम से गृहस्थ या त्यागी फकीरों की एक जमात तैयार की।[1]

सूफी मत में ईश्वर को रम्यातिरम्य माना गया है। शिवली ने कहा है—"परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देखता हूँ।[2]" सूफी मत के अनुसार केवल ईश्वर ही वास्तविक है और कुछ नहीं। अत: वही सर्वत्र और सर्वरूप है। नूर मुहम्मद ने कहा है कि ईश्वर को किसी ने नहीं उत्पन्न किया और न कोई उसके समान है। वह समान रूप से व्याप्त है, दूसरा कुछ भी नहीं। समुद्र की लहरें समुद्र में उठती हैं, पर वे उससे भिन्न नहीं। यह जगत् भी उससे भिन्न नहीं।

पानप के अनुसार भी ईश्वर विश्व में और विश्व ईश्वर में रमा हुआ है, अत: वह घट-घट वासी है।[3] अद्वैतवाद, सूफी मत और पानप एक ही स्वर में बोलते दृष्टिगत होते हैं। जीवात्मा के विषय में भी सूफी मत आत्मा और परमात्मा में परमार्थत: कोई अन्तर नहीं मानता। जब सारा विश्व उसी की अभिव्यक्ति है, तब जीव उससे अलग कैसे हो सकता है।[4] पानप ने स्पष्टतया कह दिया कि मुझ में और तुझ में कोई अन्तर नहीं। वही सब में एक रस व्याप्त है। इस सिद्धान्त में तो पानप और सूफी मत एक है, परन्तु प्रेम के क्षेत्र में सूफी द्वैत को मानते हैं। सूफीमत में प्रेम-साधना है। प्रेमी प्रेम से प्रेम को जगाता है और प्रियतम को भी प्रेमी बनाकर एकरूपता ग्रहण करता है। यदि ईश्वरतर व्यक्तित्व का पूर्णत: अभाव हो जाए तो माधुर्य भाव और मादक भाव ही न रहें और साधना का आधार असत् हो जाए।

सूफी मत में व्यावहारिक सत्ता निराधार नहीं, पारमार्थिक सत्ता पर निर्भर है। इसीलिए उनके मत में भी लोक-व्यवहार शाश्वत धर्म (सत्य, शिव तथा सुन्दर) के आधार पर ही होना चाहिए, विशृंखला रूप में नहीं। सूफियों ने इसीलिए लोक-प्रेम को विशेष रूप से महत्त्व दिया है, क्योंकि इसके सहारे उनको आत्मरति प्राप्त हो सकती है और यह लोक-प्रेम (इश्के मजाजी) अध्यात्म-प्रेम (इश्के हकीकी) का साधन बन सकता है।

पानप पर इस सूफी प्रेमवाद का प्रभाव है। पानप का प्रेम-पंथ बहुत कठिन है—

---

१. राहुल सांकृत्यायन-दर्शन-दिग्दर्शन—पृ० १०१
२. "आई नेवर सी एनथिंग बट गाड" (आउट लाइन्स आफ इस्लाम कल्चर) पृ० ५०३
३. पानपबानी—१६, ८
४. पानपबोध—११, ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"प्रम पंथ बहुत कठन है, सों ही सहनैं सेल ।
कहै पानप कायर भजै, कोई सूरा खेले खेल ॥[1]

विशेष बात यह है कि पानप का प्रेम-पंथ बहुत सुगम भी है :

"प्रेम पंथ बहु सुगम है, जाकी नक सुध बाट ।
सुरत बाँध जो जन चढै, कहै पानप पावै घाट ॥[2]

इस प्रेम-तत्त्व से आत्मा निर्मल होती है और आनन्द की प्राप्ति होती है ।

सूफी साधना-पद्धति में नैतिकता को बड़ा महत्व दिया गया है । सूफियों ने इस्लाम-साधना के पंच-स्तम्भ को नहीं अपनाया । सदाचरण-पालन करने से आत्मा स्वर्ण की भाँति निर्मल हो जाती है, ऐसा सूफियों का विचार रहा है, सदाचरण से आत्म-गुणों की अभिव्यक्ति होती है और साधक का हृदय मंजकर दर्पण की भाँति निर्मल हो जाता है जिसमें यथार्थ स्पष्टत: प्रतिबिम्ब्रित होता है ।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पानप ने प्रत्यक्ष रूप से सूफियों के सभी तत्त्वों को स्वीकार नहीं किया, फिर भी सूफी संत-समागम के परिणामस्वरूप सूफियों की बहुत-सी बातें पानप में पायी जाती हैं । इसका कारण सूफी मत तथा भारतीय अद्वैतवाद में बड़ा ही साम्य है । इतना ही नहीं, भारतीय योग-मार्ग का भी सूफी मत पर प्रभाव है । पानप का अद्वैत तथा योग मार्ग दोनों से ही सम्पर्क रहा था, और इसी कारण पानप में सूफी-मत की बातें दिखलायी पड़ती है ।

१.२० पानप पर पड़े हुए परिस्थितिजन्य और आध्यात्मिक प्रभावों का संक्षिप्तीकरण

(अ) आस्तिक शृंखला

श्रुति-सम्मत विचारों से पानप को निम्नलिखित तत्त्व प्राप्त हुए :

१—एकात्मक अद्वैतवाद
२—ज्ञानवाद
३—गुरु-भक्ति तथा भगवद्भक्ति
४—अध्यात्म-योग
५—प्रणवोपासना
६—जन्मान्तरवाद
७—निष्काम कर्म

एकात्मक अद्वैतवाद

श्रुतिसम्मत विचारधारा में सर्वत्र एकात्मक अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा है । कठोपनिषद् में कहा गया है—जिस प्रकार सूर्य सभी लोकों का नेत्र होकर भी नेत्रों के विषयों से दूषित नहीं होता, उसी प्रकार सभी भूतमात्र का एक ही अन्तरात्मा

---

१. पानपबोध—११, १५
२. पानपबोध—११, १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संसार के दुःख से लिप्त नहीं होता, वरन् उनसे दूर रहता है। यह अन्तरात्मा एक है, पर सबको वश में कर लेता है। वह एक है, पर अपने को अनेक रूप का बना लेता है। जो धीर पुरुष, इस आत्मा को अपने अन्तरात्मा में अनुभव करते हैं, उन्हीं को चिर-सुख की प्राप्ति होती है, अन्य को नहीं।[१] वेदान्त भी इस अद्वैत का प्रतिपादन करता है। गीता को भी यह मत मान्य है। पानप ने भी इस मत को अंगीकार किया।

ज्ञानवाद

उपनिषद् ग्रंथों में ज्ञानवाद का ही वर्णन है। गीता में ज्ञान का स्वरूप पूर्ण-रूप से स्पष्ट किया गया है। जिस ज्ञान के द्वारा सर्वव्यापी अनन्त चेतन रूप हुआ अपने अन्तर्गत समष्टि बुद्धि के आधार पर सम्पूर्ण भूतों को देखेगा और उसके उप-रान्त मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप में एकीभाव हुआ, सच्चिदानन्दमय ही देखा, वही ज्ञान है।[२] समस्त भिन्न पदार्थों में एक ही व्यक्त तत्त्व के दर्शन करना 'ज्ञान' है। पानप का अद्वैतवाद ज्ञानमूलक ही है।

गुरु-भक्ति एवं भगवद्भक्ति

उपनिषद्, गीता तथा अन्य श्रुति-प्रामाण्यवादी ग्रंथों में ये दोनों ही तत्त्व पाये जाते हैं। श्वेताश्वेतरोपनिषद् में कहा गया है कि जिसकी परमात्मा में उत्तम भक्ति है और परमात्मा के समान अपने गुरु में भक्ति है, उसे सभी पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।[३]

पानप ने गुरु-भक्ति और भगवद्-भक्ति दोनों को ही पूर्णतया ग्रहण किया है।

सतगुरु मिलै तो हरि भेंटै, सतगुरु मिलै सब भरम मेटै।
परगट आतमराम बतावै, पानप पलक बिछूर नहिं जावै ॥[४]

अध्यात्मयोग

कठोपनिषद् में स्थिर इन्द्रिय-धारणा को योग कहा गया है। गीता में भी मन को वश में करने को 'योग' बताया है :

"निःसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे अर्जुन ! अभ्यास और यत्न तथा वैराग्य से वश में होता है, इसलिए इसको अवश्य वश में करना चाहिए।"[५] पानप ने भी मनोयोग तथा योग-मुक्ति पर ही विशेष जोर दिया है।

---

१. कठोपनिषद् अध्याय—२।२।११
२. गीता—अ० ४, श्लोक ३५
३. श्वेता०—६-२३
४. पानपबोध—४-१४
५. गीता—६।३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रणवोपासना

उपनिषदों में प्रणवोपासना का वर्णन है। कठोपनिषद् में प्रणव को ही एक मात्र ब्रह्म-रूप माना गया है।[१] प्रणव के महत्त्व को पानप ने बहुत उच्च स्वर से स्वीकार किया है :

"जों अषंड मंडलं चिराचितं, अगमं अगोचरं अज्जावनं ।
अकाता मूरतं, तस्यातं निज आसनं ॥
जोतस्य जोती सरूपं जोतं, धरंतं साधुवा धारनं ।
तस दर्शनं सत्त सत्तं, कोटक जीव उधारतं ॥
उधरंत साधुवा एवं वबेकं, चेतनं चित्त अपारकं ।
वदत्त पांनप सत्त सत्तं, ध्यान सचर नो धारतं ॥
भरसंत सर्बे लोकानां, एवं तत्त विसारकं ।
जन्म रतनं बोहरों न पावते, तस्य आसा मरम भूर्त ॥"[२]

पानपदास संस्कृतज्ञ तो थे नहीं फिर भी उन्होंने ओंकार की महिमा को भावावेश में अभिव्यक्त किया है, अतएव उनका तात्पर्य है कि ईश्वर ओंकार वाच्य है, वो ही पूर्ण है, सर्वज्ञ है, उससे बाहर किसी भी पदार्थ की स्थिति नहीं है फिर भी ईश्वर इन्द्रियों द्वारा देखा नहीं जा सकता है। मन, बुद्धि की पहुँच से बाहर है, जन्म-रहित, अविनाशी है और स्वयं ही अपना आधार है। प्रकाशों का भी प्रकाश है। इस ज्योति का साक्षात्कार वास्तविक सत्य है, जीवों को मुक्तिप्रद है, ऐसे आत्म-ज्ञान रूपी सत्य को भूल कर मनुष्य संदेह में भ्रमता रहता है और बहुमूल्य मनुष्य योगी को व्यर्थ गँवाता है। यह मनुष्य योनि बार-बार प्राप्त नहीं होगी, इसकी आशा करना भ्रम है।

जन्मान्तरवाद

श्रुति-ग्रंथों में जन्मान्तरवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा है। कठोपनिषद् में एक स्थल पर कहा है कि मृत्यु के उपरान्त जीव अपने-अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार शरीर धारण करने के लिए किसी योनि को प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थिर भाव को प्राप्त होते हैं। पानप ने भी जन्मान्तरवाद को स्वीकार किया है।

निष्काम-कर्म

गीता में निष्काम-कर्म पूर्णतया प्रतिष्ठित है—"निष्काम कर्मयोगी ममत्त्व-बुद्धि रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।"[३]

---

१. कठोपनिषद्—१-२-१६
२. पानपबानी—नामस्तोत्र-पृ० १-४
३. गीता—५-११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप को भी निष्काम भाव से कर्म करने की बात मान्य है ।

(आ) वैष्णव मत

पानप ने वैष्णव मत के प्रति श्रद्धा प्रकट की है । पानप ने वैष्णव विचार-धारा से निम्नलिखित तत्त्व ग्रहण किए हैं :

(१) भगवान् के विविध नाम,
(२) ब्रह्म के निर्गुण-सगुण दोनों स्वरूपों के प्रति श्रद्धा,
(३) भक्ति-उपासना एवं प्रपत्ति,
(४) सदाचरण-प्रधानता (वैष्णव योग)
(५) माया तत्त्व ।

(१) वैष्णव मत में भगवान् के सहस्र नाम बताए हैं । पानप ने इनमें से राम, हर, हरि, गोविन्द, मुकुन्द, विष्णु, पुरुषोत्तम, परमनिधान, त्रिदेव, अगम, अगोचर, अलख, पूर्ण-ब्रह्म, पारब्रह्म, ब्रह्म आदि अनेक नामों से ब्रह्म को अभिहित किया है ।

(२) वैष्णव मत में ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूप मान्य हैं । पानप ने निर्गुण ब्रह्म को ही अपनाया । भगवान् में विशिष्ट गुणों का आरोप करके सगुण रूप जैसा वर्णन किया । भगवान् को कहीं पर भक्तवत्सल तथा कहीं सर्वज्ञ आदि नामों से अभिहित किया गया है ।

(३) वैष्णव मत में पहले से ही भक्ति और उपासना का विशेष महत्त्व था । आगे चलकर रामानुज तथा रामानन्द ने प्रपत्ति-मार्ग का प्रवर्तन किया । भगवान् की शरण जाना 'प्रपत्ति' है । पानप ने प्रपत्ति को स्वीकार किया ।

(४) वैष्णव मत में अष्टांग योग का भी विधान है । अष्टांग में यम-नियमादि पर विशेष जोर दिया गया है । भागवत् में यम-नियमादि की संख्या बारह-बारह हो गई—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, ह्री, असंचय, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा और अभय, यम हैं तथा शौच, बाह्य शौच, आभ्यन्तर जप, तप, होम, श्रद्धा, आतिथ्य, भगवत्-दर्शन, तीर्थाटन, परार्थचेष्टा और सन्तोष नियम हैं । इस प्रकार से स्पष्ट है कि इस मत में सदाचारों को विशेष महत्त्व दिया गया है । पानप ने पूर्ण रूप से इन्हें अपनाया और स्थान-स्थान पर इनका वर्णन किया है ।

(५) मायातत्त्व आचार्य शंकर की देन है । वैष्णव मत के मायावादी आचार्यों के प्रभाव से माया प्रतिष्ठित हुई है । पानप ने माया-तत्त्व और उसके बन्धन के काटने पर अधिक जोर दिया है ।

(इ) नास्तिक-दर्शन

बौद्ध-धर्म—बौद्ध-धर्म भारत मे पानप के समय में लुप्तप्रायः हो चुका था । इसलिए पानप पर उसका प्रभाव होना सम्भव नहीं है । पानप सारग्रही महात्मा थे, उन्होंने बौद्ध धर्म की जानकारी के लिए चेष्टा की हो, इसमें आश्चर्य नहीं । बौद्ध धर्म के निम्नलिखित तत्त्वों की छाया पानप में दिखाई पड़ती है :

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) आर्य-सत्य,
(२) बुद्धिवादिता,
(३) तत्त्व की अनिर्वचनीयता,
(४) मध्यममार्ग,
(५) काया-क्लेशमय उग्र तप का विरोध,
(६) समता-भाव।

आर्यसत्य—बौद्धों के चार मूल तत्त्व आर्य-तत्त्व कहलाते हैं। वे दुःख, समुदय, निरोध और मध्यमार्ग हैं। पानप में यह चारों आर्य सत्य पाए जाते हैं।

बुद्धिवादिता—बौद्धों में युक्तिशरण (बुद्धिवादी) भिक्षुक की महत्ता है। बौद्धों की बुद्धिवादिता पानप को मान्य है। पानप ने ब्रह्म-निरूपण में श्रुति-ग्रन्थों के नैतिकवाद और बौद्धों के तत्त्व-अनक्षरत्त्व को अपनाया है।

मध्यममार्ग का अनुसरण—बौद्ध साधक निरन्तर दो अन्तों को छोड़कर मध्यम मार्ग पर जोर देते रहे हैं। पानप ने भी मध्यम मार्ग के अनुसरण की बात कही है।

काया-क्लेशमय उग्र तप का विरोध—बौद्धों ने उग्र तप का विरोध किया। पानप ने भी काया क्लेशमय उग्र तप का विरोध किया। क्लिष्ट साधना का परित्याग करने तथा सहज साधना को अंगीकार करने की बात कही।

समतावाद—बौद्ध धर्म, वर्णाश्रम-धर्म प्रधान ब्राह्मण-धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में उदय हुआ था। पानप ने साम्य भाव पर ही जोर दिया। विषमता का सभी क्षेत्रों से निराकरण करना पानप ने अच्छा समझा।

(ई) वज्रयान और सहजयान

मध्ययुग में वज्रयान और सहजयान का अच्छा प्रचार था। बाद में दोनों मत एक हो गए थे। ये बौद्ध धर्म की विकृत शाखाएँ हैं। कुछ बातें इनकी भी पानप में पायी जाती हैं—

(१) सिद्धों में शून्योपासना का महत्त्व था। शून्यवादी भावना नास्तिक थी। कुछ सिद्धों ने उसे आस्तिक भी माना था। इन सिद्धों ने नाथ-पंथ का प्रवर्तन किया और इन्होंने शून्यवाद को आस्तिक रूप प्रदान किया। पानप ने भी बहुत कुछ अंश तक शून्यवाद को अपनाया है।

(२) हृदयस्थ द्वैताद्वैत विलक्षण ब्रह्म में आस्तिक सिद्धों का विश्वास था। पानप पर भी यह प्रभाव पड़ा।

(३) खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति सिद्धों में प्रबल थी। ये बाह्याचारों का खण्डन करते थे तथा अपने मत का मण्डन करते थे। उन्हीं की भांति पानप ने भी अनेक बाह्याडम्बर तथा पाखण्डों का विरोध किया।

(४) पानप की अभिव्यक्ति सिद्धों से प्रभावित जान पड़ती है। सिद्ध प्रायः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहस्यात्मक तथा संकेतात्मक ढंग से बातें करते थे। यह रहस्यात्मक अभिव्यक्तियाँ सन्धा अथवा सन्ध्या भाषा के नाम से प्रसिद्ध हैं। पानप की उलटबांसियाँ, रूपक आदि सिद्धों से मिलते-जुलते हैं।

(उ) नाथ-सम्प्रदाय

वाममार्गी सिद्धों की तामसिक साधना की प्रतिक्रिया के रूप में नाथ-पंथ का उदय हुआ। पंथ में सदाचरण-पालन पर जोर दिया गया। इनकी साधना हठयोग से प्रभावित है। पानप पर नाथ-पंथ का पर्याप्त प्रभाव है :

(१) नाथ-पंथियों की द्वैताद्वैत विलक्षण ज्योति-स्वरूपिणी ब्रह्म-धारणा पानप को मान्य है। नाथ-पंथियों के शब्द-वाद का भी प्रभाव है। नाथ-पंथ के नाद-बिन्दु आदि कितने ही पारिभाषिक शब्द भी पानप में पाए जाते हैं।

(२) नाथ-पंथी साधना का भी पानप पर प्रभाव है। गुरू का महत्त्व, इन्द्रिय साधना, प्राण-साधना, मन-साधना आदि पर पानप ने भी जोर दिया है। पानप में नाड़ी-साधना और कुण्डलिनी-उत्थापन भी पाया जाता है। चक्र-भेदन, अजपा जाप, सुरति-शब्द-योग, शून्य और सहज आदि बातें नाथ-पंथ से पानप ने ग्रहण कीं।

(३) नाथ-पंथी भाषा और अभिव्यक्ति का भी पानप पर पर्याप्त प्रभाव है। कहीं-कहीं तो गोरखनाथ के शब्दों, शब्दांशों और वाक्यों को पानप ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है।

(४) नाथ-पंथ में उलटी चाल का भी वर्णन है। वृत्तियों को अन्तर्मुखी करना उलटी चाल है। पानप ने उलटी चाल की चर्चा अनेक स्थलों पर की है।

जैन-धर्म—जैन-धर्म की अहिंसा का प्रभाव पानप पर है। तन्त्र-मन्त्र तथा मुस्लिम धर्म का विशेष प्रभाव पानप पर नहीं पड़ा।

(ऊ) सूफीमत

पानप के समय मे सूफी साधना विकासोन्मुख थी। पानप पर इसका प्रभाव दृष्टिगत होता है।

हक—प्रेमवाद सूफी-मत में प्रसिद्ध है। पानप पर इसकी छाया दिखाई पड़ती है।

इश्क—सूफी साधना में ईश्वर को विशेष महत्त्व दिया गया है। सूफियों के इश्क से पानप प्रभावित हैं। उन्हीं के ढंग पर उनमें प्रेम-रस आदि के वर्णन पाये जाते हैं।

पानप में सूफियों की प्रतीकमय अभिव्यक्ति पायी जाती है। दाम्पत्य जीवन के अनेक उद्धरण प्रतीकों द्वारा सूफी-साधना में पाये जाते हैं। दाम्पत्य-प्रतीक-पद्धति पानप ने भी अपनायी।

(ओ) सम्पूर्ण प्रभावों की प्रतिक्रिया

सभी धार्मिक एवं दार्शनिक प्रभावों का केवल क्रियात्मक प्रभाव भी हुआ। प्रतिक्रियात्मक प्रभाव से पानप में विध्वंसात्मक तत्त्वों की अवतारणा हुई—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) वर्णाश्रम धर्म तथा विविध बाह्याचारों का विरोध,
(२) सभी क्षेत्रों में विषमता का विरोध,
(३) क्लिष्ट साधना का प्रतिकार,
(४) लोक व वेद के अंधानुकरण का विरोध,
(५) मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद का खण्डन,
(६) तामसिक साधना का घोर विरोध।

इन क्रियात्मक एवं प्रतिक्रियात्मक प्रभावों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप पानप ने अपने दर्शन की भित्ति तैयार की। यह भित्ति निम्न प्रकार है :

(१) कलुषित वातावरण तथा सभी गूढ़ समस्याओं के मूल में कोई एक ही कारण है। उसके अन्वेषण तथा प्रचार से समस्याएँ सुलझ जाएँगी और वातावरण शुद्ध होगा, एवं उसके कारण की खोज।

(२) जीवन के सभी क्षेत्रों में द्वैत भाव अथवा विषमता ही सभी झगड़ों, उपद्रवों का कारण है। द्वैत भाव को नष्ट करके एकत्व की भावना जागरित करना।

(३) मानव-कल्याण के लिए सच्चे धार्मिक तत्त्वों का प्रचार।

(४) ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म-मार्गों का तथ्य तथा लोक-कल्याण के लिए उनका प्रयोग।

(५) बाह्योपचार, आडम्बरपूर्ण साधना का घोर विरोध।

(६) वर्णाश्रम-धर्म से उत्पन्न भेदभाव, जाति-पाँति तथा साम्प्रदायिकता का विरोध।

(७) क्लिष्ट साधना के स्थान पर नैतिक संयम तथा मनोजय।

(८) परमार्थ का अन्वेषण तथा जीवनोद्देश्य की पूर्ति।

(९) वैराग्य भावना तथा कर्मवाद का समन्वय और लोक-संग्रहार्थ कर्म की निष्पत्ति।

(१०) लौकिक जीवन में आत्म-प्रतीति का अभ्यास, प्रेम-भाव के साथ परस्पर सद्व्यवहार।

(११) मानव-सेवा द्वारा नरहरि-दर्शन का तथ्य उपर्युक्त निश्चयों के आधार पर पानप ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। पानप के दार्शनिक सिद्धान्त गूढ़ातिगूढ़ होते हुए भी सरल एवं सहज क्रियात्मक अभिव्यक्ति से परम सत्ता की अनुभूति तथा उसके द्वारा व्यक्तिगत, सामाजिक तथा पारलौकिक दर्शन से आनन्द की प्राप्ति पर विशेष जोर दिया है।

आगे के प्रकरणों में पानप के आध्यात्मिक सिद्धान्तों आदि का विवेचन किया जाएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईश्वर-दर्शन (ब्रह्म)

तात्त्विक जिज्ञासा, मूल-तत्त्व, ब्रह्म-परम्परा, पानप द्वारा ब्रह्म-वर्णन, ब्रह्म का व्यक्त रूप, ब्रह्म के अन्य स्वरूप, पानप की नाम-प्रियता, पानप के ब्रह्म-वर्णन की विशेषता।

पूर्ण ब्रह्म समीप है, लखे न कोई ताहि।
भूले काजी पंडिता, जनम अकारथ जाहि॥
कुरान कहै गीता कहै, ब्रह्म सकल घट मांहि।
कहै पानप भरमा जगत, ताको खोजे नांहि॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३ ईश्वर-दर्शन (ब्रह्म)

तात्त्विक जिज्ञासा

आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति के लिए साधक के हृदय में उसके प्रति अभिलाषा एवं उत्कण्ठा का प्रादुर्भाव होता है, साधक आदर्श प्राप्ति के लिए आतुर होता है, उसे एक-एक पल युग के समान प्रतीत होता है। अपने चरम लक्ष्य के लिए साधक अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तत्पर हो जाता है। साधक के हृदय की यह स्थिति जिज्ञासावस्था कहलाती है।

ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति के लिए की गई जिज्ञासा ब्रह्म-जिज्ञासा कही जाती है, इसीलिए तो वेदान्त ब्रह्मसूत्र का आरम्भ 'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा' से किया गया है।

ब्रह्म-विद्या अथवा ब्रह्म ज्ञान सब किसी को उपलब्ध नहीं होता। मुण्डकोपनिषद् में कहा है "परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से, और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। यह जिसको स्वीकार कर लेता है, उसके लिए ही अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है।[1]

पानप के जीवन का चरम लक्ष्य ब्रह्म-विचार ही है। योग्य तथा अनुभूति साधक की खोज में पानप अनेक स्थानों पर भटके। अनेक साधु-जनों के सत्संग में भाग लिया। एक दीर्घावधि के उपरान्त प्रभु की कृपा से उन्हें सद्गुरू की प्राप्ति हुई। आगे चलकर तो पानप ने कहा है—

गुरु परमेसुर एको जान।
गुरु मिल पड़ी प्रभु की पहचान ॥[2]

---

१. मुण्डक० ३-२-३
२. पानपबानी—५-१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सद्गुरु ने पानप पर कृपा की। उन्हें ब्रह्म प्राप्ति की युक्ति बताई और पानप परम लक्ष्य-प्राप्ति में संलग्न हो गए और कह उठे :

गुरु किरपा सूँ तुमको जाना।
अब काह प्रभु तुमरो अहताना॥[1]

मूल-तत्त्व

अध्यात्मवादी विश्व में व्याप्त, अखण्ड, अव्यक्त, अनन्त मूल-तत्त्व मानते हैं। इस मूल-तत्त्व को अस्तित्व, सत्ता एवं अन्तिम सत् कहते हैं। सत्ता का कोई अन्य आधार नहीं और न उसके ऊपर कोई अन्य सत्ता ही है। सत्ता ही चरम अस्तित्व है। सत्ता के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ का कोई अस्तित्व नहीं।

पानप के अनुसार मूल-तत्त्व अव्यक्त, अरूप है। वह परमगति है और वही है अन्तिम ज्ञान-सत्। सत्ता अकथ एवं अनिर्वचनीय है। वही परम तत्त्व है जिसकी प्रेरणा मात्र से सकल विश्व का व्यापार चल रहा है।[2] इस अन्तिम सत्य को जानना ही चरम लक्ष्य है।

सत्ता को दार्शनिकों ने नाम देने की चेष्टा की है। अध्यात्मवादी उसे ब्रह्म, पारब्रह्म आदि नामों से बताते हैं। पानप ने सत्ता को अनेक नामों से विभूषित किया है। वे उसे ब्रह्म,[3] पारब्रह्म,[4] आदि नामों से भी ध्वनित करते हैं।

ब्रह्म-परम्परा

पारमार्थिक तत्त्व, परमतत्त्व, अन्ततम सत् एवं परम अस्तित्व को ब्रह्म की संज्ञा भी दी गई है। प्राचीनकाल में वैदिक साधकों ने उपासना के हेतु बहुदेववाद का प्रश्रय लिया। प्राकृतिक उपादानों का देवोमय भाव भी अग्नि, वायु एवं सूर्य आदि का भाव भी ईश्वरोपम भाव में परिणत हो गया।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में निर्गुण ब्रह्म का वर्णन मिलता है। जिस मूल सत्ता से सब कुछ उत्पन्न हुआ है, जो सर्व व्याप्त है उसे न सत् कहा जा सकता है, न असत्—

'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीदजो नो व्योमा परो यत्।'

अर्थात् जो कुछ है सो पहले नहीं था, जो कुछ नहीं है सो भी नहीं था। न पृथ्वी थी, न आकाश था, न उसके परे स्वर्गलोक।

उपनिषदों में ब्रह्म की पूर्ण प्रतिष्ठा है। तैत्तिरीयोपनिषद् में—इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, गति, पालन और स्थिति तथा इस सम्पूर्ण जगत् के लय के कारण को ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म ही पूर्ण है, सब कुछ वही है, वह

---

१. पानपबोध—५-१
२. पानपबानी—१०-१२
३. पानपबानी-स्तोत्र—६
४. पानपबानी-स्तोत्र—१०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सब प्रकार से पूर्ण है। यही एक ब्रह्म है अपूर्व, अद्वितीय, अनन्तर और अबाह्य। ब्रह्म एक ही है दूसरा नहीं। वह अस्थूल, अनणु, अह्रस्व और अदीर्घ है। यह निखिल जगत् ब्रह्म ही है। ब्रह्म सबमें व्याप्त हुआ। वह एक विविध रूपों में प्रदर्शित हो रहा है। सकल विश्व ब्रह्म ही है। माया से विश्व का सर्जन करता है।

पापन ब्रह्म-परम्परा से परिचित थे। श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा उन्होंने तत्त्वान्वेषण किया। अपनी साधना तथा स्वानुभूति की कसौटी पर अपने निष्कर्षों को शुद्ध-परिशुद्ध किया और उत्तमोत्तम सिद्धान्तों को लोक-कल्याणार्थ प्रसारित किया।

पानप द्वारा ब्रह्म-वर्णन

पानप ने ब्रह्म को मूल-तत्त्व कहा है। ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्य है। वह काल, देश और अवस्था से परे अर्थात् सकल अतीत है।[१] वह अबाधित है। विश्व के सभी पदार्थ विनाशशील तथा परिवर्तनशील हैं, परन्तु विश्व का आधार होते हुए भी ब्रह्म अविनाशी है।[२] वह दिशातीत है तथा दिकातीत है।[३] ब्रह्म स्वतन्त्र सत्ता है। कोई अन्य सत्ता उसके ऊपर नहीं है। वह किसी अन्य के द्वारा अनुशासित नहीं। वह किसी अन्य के द्वारा बनाया नहीं गया, उसका कोई आधार नहीं, उसका भेद जाना नहीं जा सकता।[४]

ब्रह्म कारण से परे है। वह किसी अन्य का कार्य नहीं। वह आनन्दस्वरूप है। किसी दूसरी सत्ता ने उसे निर्मित नहीं किया। उसके माँ नहीं, बाप नहीं। वह न उत्पन्न ही होता है और न मृत्यु को ही प्राप्त होता है। उसने किसी को उत्पन्न नहीं किया और न किसी अन्य ने उसे पैदा किया अर्थात् ब्रह्म कारण-कार्य सम्बन्ध से रहित, अजन्मा, अमर निर्विकार तथा अविनाशी है।[५]

ब्रह्म सभी अनुभव जन्य कल्पनाओं से परे है, वह त्रिकालातीत है। वह त्रिकालज्ञ एवं सर्वव्यापी है।[६]

वह अद्वैत तत्त्व है। उसके दो भेद बताना अबुद्धि का काम है, निराभ्रम है।[७] किसी अन्य से उसकी समता नहीं की जा सकती। कोई दूसरा ब्रह्म है ही नहीं जिससे उसकी समता बतायी जा सके।[८]

---

१. सुपमवेद—१·११, १४, १५
२. ,, ३·८, १४
३. पानपबानी—४·३, ८
४. पानपबोध—१·८, १४, १५
५. पानपबानी—६·७, ११
६. ,, ११·१७
७. पानपबोध—६·१
८. ,, ७·५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह अरूप है, उसे संकेत से बताया नहीं जा सकता। वह जैसा है वही जानता है। उसे यह है और वह नहीं है, इस प्रकार बताया नहीं जा सकता।[1]

ब्रह्म सभी भेदों से परे है। उसे मनुष्य भी नहीं कहा जा सकता तथा उसे मनुष्य से भिन्न देव, यति, योगी, अवधूत आदि ही नहीं कहा जा सकता है। वह अभेद्य है।[2]

वह सत्, रज, और तम तीनों गुणों से परे है, अर्थात् निर्गुण है। वह गुणातीत और निर्गुण है। पानप के कथन का तात्पर्य है कि ब्रह्म जगत् के नामरूपात्मक पदार्थों की भाँति उत्पन्न होता है, न पनपता है और न वृद्धि को पाता है और न नाश को ही प्राप्त होता है। जगत् के नामरूपात्मक पदार्थों में ही परिवर्तन होता रहता है, ब्रह्म पर इनका कोई प्रभाव नहीं होता। गुणों का खेल संसार में ही होता है।

पानप संसार को अवस्तु में वस्तु का आरोप कहते हैं। संसार असत् है। उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं। यह अध्यास तथा विवर्त का कारण है जो संसार सत्य जैसा प्रतीत होता है।

ब्रह्म वर्ण विहीन है। उसका कोई रंग नहीं बताया जा सकता है। न वह श्यामल वर्ण का है और न श्वेत वर्ण का है।[3]

वह एक है या अनेक है यह भी नहीं बताया जा सकता क्योंकि वह संख्यातीत है।[4] वह अनन्त है। उसका आदि, मध्य और अन्त निर्धारित नहीं किया जा सकता।[5] विश्व के सभी पदार्थ चैतन्यपूर्ण हैं, अतः ब्रह्म चेतन्य है, वही सत्य तत्त्व है, पूर्ण है, निर्विशेष है। जैसे पानी से हिम बन जाता है और हिम गल कर पुनः जल बन जाता है और जल सूखकर हवा में उड़कर अरूप में विलय हो जाता है। वह अरूप सत्ता से बना था, अरूप में विलय हो गया। उसके भी भेद को कहा नहीं जा सकता है, ब्रह्म अवर्णनीय है।[6]

पानप ब्रह्म ही को पारमार्थिक सत्ता स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार नामरूपात्मक सृष्टि के सभी पदार्थ नश्वर हैं, परिवर्तनशील हैं। पृथ्वी, जल, वृक्ष आदि सब नष्ट हो जाते हैं, केवल ब्रह्म ही अविनाशी है, अबाधित है।[7]

---

१. सुषमवेद—१·८
२. ,, १·१७
३. पानपबानी-स्तोत्र—१३
४. पानपबोध—१६·३
५. ,, १६·६
६. पानपबानी-कामासोध—११
७. पानपबानी—८·१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्म का कोई आकार नहीं, क्योंकि आकारवान् पदार्थ कभी भी निस्सीम और अनन्त नहीं हो सकता। वह अनन्त है, अपार है।[१]

वह इन्द्रियातीत है। उसे आँखों से देखा नहीं जा सकता। वह अकथ है, वाणी से उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उसका आदि, मध्य एवं अन्त कुछ भी नहीं है, जो बताया जा सके।[२]

वह दूर से दूर और निकट से अति निकट है। उसको दूरस्थ भी एवं निकटस्थ भी कह सकते हैं। भ्रमपूर्ण दृष्टि से उसके सत्य-स्वरूप को नहीं देखा जा सकता। अतः वह मनुष्य से दूर है। ज्ञानवान व्यक्ति के लिए वह सर्वत्र व्याप्त है और उसके अति निकट है।[३]

ब्रह्म अविभाज्य है। वह घटता-बढ़ता भी नहीं। वह ऐसा भी नहीं कि कहीं अधिक हो और कहीं कम, और कहीं पतला हो या कहीं मोटा। वह तो आदि, मध्य और अन्त सर्वत्र अखण्ड है, अविभाज्य है।[४]

पानप 'ब्रह्म' को सर्वत्र व्याप्त तो कहते ही हैं, वह ब्रह्म में जगत् को भी व्याप्त बताते हैं। जगत् उसमे और वह जगत् में है, दोनों एक दूसरे में ओत-प्रोत हैं।[५]

पानप ने ब्रह्म का वर्णन भाँति-भाँति से किया है। ब्रह्म का प्रतिपादन करने के लिए वे जो भी उपयुक्त भाषा, वातावरण, नाम, साधन, प्रयत्न आदि उपलब्ध कर सके उनकी सहायता से ब्रह्म का वर्णन किया।

निर्गुण ब्रह्म का वर्णन विशेषणों का प्रयोग करके निर्गुण अव्यक्त रूप, द्वैताद्वैत विलक्षणवाद, सर्वविवर्जितवाद, परात्पर तथा नेति-नेतिवाद आदि कई वादों के अनुरूप किया है।

पानप ने ब्रह्म-वर्णन को अनेक प्रकार से रूपायित किया है।

विशेषणयुक्त ब्रह्म-वर्णन

पानप ने ब्रह्म को निर्गुण एवं अरूप बताया है। ब्रह्म में विशेषणों का आरोप करके भी पानप ने वर्णन किया है। कई स्थलों पर उन्होंने एक विशेषण से ब्रह्म को विशिष्ट करके उसका वर्णन किया है, उदाहरणार्थ—

जिसने उस एक को जान लिया, उसने सब कुछ ही जान लिया। एक से सब हो जाते हैं, पर सबसे एक नही बनाया जा सकता।[६] केवल एक राम की आशा

---

१. पानपबानी—१६·७
२. „ १६·६
३. „ १६·१३
४. „ १४·३१
५. „ १४·२७
६. „ १७·५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही उचित है, अन्य आशाएँ तो व्यर्थ हैं। जिसका हृदय एक से बँध जाता है, वही निश्चिन्त सो सकता है।[१] हमने तो एक ही को समझा है, जो दो कहते हैं उनको तथा जिन्होंने उस एक को नहीं पहचाना उन्हें नरक ही मिलता है।[२]

पानप का ब्रह्म अलौकिक है, अद्भुत है, अनन्त है और है अन्ततम सत्य, सर्वव्यापी तत्त्व तथा सर्वातीत तत्त्व। ऐसा तत्त्व कभी भी एक या दो-तीन संख्याओं से नहीं बताया जा सकता। अतः पानप द्वारा एक का प्रयोग अद्भुत, अलौकिक, केवल, अद्वितीय और अनुपम आदि के अर्थ में हुआ है।[३]

एक का प्रयोग एकत्व की भावना के रूप में भी किया गया है।[४] हिन्दू, मुसलमान एवं अन्य वर्णों के परस्पर के संघर्ष को समाप्त करने के लिए एकत्व की भावना को जाग्रत करना परमावश्यक था।

सृष्टि के सभी उपादान एवं पारमार्थिक तत्त्व सभी एकत्वपूर्ण हैं, अतः सभी वर्णों को एकत्व भाव से रहना ही चाहिए। इस सिद्धान्त के लिए भी पानप ने एक का प्रयोग किया है।[५]

रसानन्द स्वरूप ब्रह्म

उल्लासपूर्ण मन की दशा आनन्दावस्था होती है। आनन्द एवं परमानन्द के प्रति प्राणी की स्वाभाविक अभिरुचि होती है। ब्रह्म सर्वोत्कृष्ट तथा मधुरतम रस है जिसके पान से परमानन्द की उपलब्धि होती है। अन्य लौकिक रस तथा आनन्द ब्रह्मानन्द के सम्मुख फीके तथा ओछे हैं। सांसारिक सुख और आनन्द तो क्षणिक होते हैं, केवल ब्रह्मानन्द ही शाश्वत तथा चिरस्थायी होता है।

पानप ने अव्यक्त ब्रह्म को रसानन्द रूप कहा है। राम को रसायन रूप कह कर उसकी रसरूपता या आनन्द विशिष्टता का वर्णन किया है। राम-रसानन्द का मादक प्रभाव भी अवर्णनीय है। राम-रस का मादक प्रभाव इतना प्रबल है कि वह एक बार बढ़ जाने पर कम नहीं होता और इसका रसपान करने वाला अपने तन की सुध-बुध खो बैठता है और मादक प्रभाव में झूमता-फिरता है। इस ब्रह्मानन्द-रस का प्रभाव तन की सुध-बुध ही नहीं खोता वरन् एक क्षण के लिए भी यदि उसका संचार हृदय में हो जाता है, तो सम्पूर्ण शरीर ही शुद्ध-परिशुद्ध हो जाता है, खरा हो जाता है।[६]

---

१. पानपवानी—१८·३
२. ,, १८·५
३. ,, १८·१५
४. ,, १८·१७
५. ,, १७·६
६. ,, १७·२२-२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप राम रसानन्द से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सबको इसका पान करने की शिक्षा दी। यह रस महँगा है, इसे प्रत्येक नहीं पी सकता। इस रस को पीने से मन उल्लासपूर्ण हो जाता है और अनन्त-ज्ञान का प्रकाश हो जाता है।[१]

पानप रसानन्द-ब्रह्म की प्रशंसा करते नहीं अघाते। उनके अनुसार रसानन्द ब्रह्म को प्राप्त करना चरम लक्ष्य है।

सत्य एवं ज्ञानस्वरूप ब्रह्म

पानप ने ब्रह्म को सत्य एवं ज्ञान-स्वरूप भी बताया है। सत्य तथा ज्ञान दोनों अरूप हैं। पानप कहते हैं कि जो पदार्थ सभी देश, काल एवं दशा में एक-सा स्थिर रहे, उसमें कोई भी परिवर्तन होना असम्भव हो, वही सत्य है। उत्पत्ति और विनाश के क्रम में परिवर्तित होने वाले पदार्थ असत्य ही हैं।

ऐसा पदार्थ ब्रह्म ही है जो सत्य तत्त्व है। पानप ने उसे सत्यरूपी राम कहा है। वह निरंजन, निष्कलंक, निर्लेप, देवों में देव तथा सत्यरूप राम है। उसे पाने के हेतु सद्‌गुरू की सेवा अपेक्षित है।[२]

पानप ने ब्रह्म को सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थात् वट-बीज, जो अति लघु होता है, उसमें भी समाया हुआ तथा इतना बृहदाकार है जो सकल विश्व में व्याप्त है, बताया है।[३]

ज्योति स्वरूप ब्रह्म

निर्गुण ब्रह्म को ज्योति स्वरूप एवं अनन्त प्रकाश के रूप में वर्णन करने का उल्लेख उपनिषदों में है। ज्योति अथवा प्रकाश रूप-रेखा रहित है।

पानप ने ब्रह्म को ज्योतिस्वरूपी ध्वनित किया है। पानप ब्रह्म को शरीर के अन्तर्गत ब्रह्मरन्ध्र में स्थित बताते हैं उनका कहना है कि इस शरीर रूपी सरोवर में एक अनुपम कमल है जिसके भीतर बिना रेखा और रूप के पुरुषोत्तम, परम प्रकाश रूप ब्रह्म अवस्थित है।[४]

ज्योति स्वरूप ब्रह्म का तेज़ इतना प्रकाशमान है कि उसका वर्णन करना सामर्थ्य के बाहर है। वह वर्णन शब्दातीत है, वह केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है, समझा जा सकता है।[५]

ज्योति और प्रकाश को 'नूर' कहा जाता है। नूर का अर्थ प्रकाश होता है। सूफियों में नूरवाद की विवेचना है। 'नूर' से सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है।

---

१. पानपबानी—५·६, ७
२. ,, ८·३, ४
३. ,, १०·६
४. पानपबोध—६·३, ४
५. ,, ७६·७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ने भी नूर का प्रयोग किया है। उस खुदा ने एक प्रकाश उत्पन्न किया है और उस प्रकाश से सब सृष्टि उत्पन्न की भले और बुरे सभी को बनाया।[1]

प्रकाश सकल विश्व को प्रकाशित करता है और जीवन प्रदान करता है। परमार्थ सत्य ब्रह्म सकल विश्व को प्रकाशित करके जीवन प्रदान करता है। ब्रह्म का ज्योति स्वरूप का वर्णन इसी कारण किया गया है।

शब्द रूप ब्रह्म

शब्द ब्रह्म की धारणा प्राचीन काल ही से चली आती है। उपनिषदों में शब्द-ब्रह्म का विवेचन है। योगशास्त्र में शब्द ब्रह्म को महत्ता प्रदान की गई है। योगसूत्र समाधिपाद में ईश्वर का निरूपण 'तस्य वाचकः प्रणवः' कह कर ऊँकार को ईश्वर का वाचक उद्घोषित किया है।

शब्द ब्रह्म की इस धारणा को पानप ने उच्च स्वर से उद्घोषित किया है। उनकी कृतियों में अनहद नाद का वर्णन है। 'ओंकार' से शब्द-ब्रह्म की ओर संकेत किया है।[2]

पानप ने नाद-बिन्दु-साधना का उल्लेख भी किया है। नाद-बिन्दु की साधना भी शब्द-ब्रह्म की साधना ही है। इस अनहद नाद को ही बिन्द और बिन्दु को नाद कहा है तथा इसकी साधना के द्वारा ईश्वर के साक्षात्कार की बात भी कही है।

शब्द-ब्रह्म की साधना के लिए पानप ने अनेक बार कहा है। शब्द-ब्रह्म के प्रतिरूप प्रणव अथवा 'ओंकार' को पानप ने श्रद्धापूर्वक अपनाया है और उसे विश्व का मूल-चेतन-तत्त्व कहा है—

ओं अखंड मण्डलं चिराचितं, अंगम अगोचर अजावनं।
जोतस्य जोती सरूपं, जोतं धरन्तं साधुवा धारनं॥[3]

पानप का कहना है कि शब्द गुरु और शिष्य सब है, शिष्य-गुरु दोनों समान ही हैं। वेद, पुराण, सुर, मुनि, सन्त सबने शब्द का माहात्म्य कहा है और उसकी साधना की है। शब्द ही से सब सुना जाता है, षट् दर्शन और वैरागी भी शब्द की महिमा गाते हैं। शब्द से शरीर और जगत् उत्पन्न हुए और शब्द ही का विस्तार है। सर्वत्र शब्द ही शब्द है।[4]

शून्य रूप ब्रह्म

बौद्ध मत में शून्यवाद एक प्रख्यातवाद है। महायान-शाखा के प्रवर्तक नागार्जुन ने शून्य के सम्बन्ध में भारी चर्चा की है। शून्य के लक्षण इस प्रकार बताए हैं—

---

१. पानपबोध—६·८
२. ,, ६·१
३. ,, ५·१-३
४. ,, ६·६, ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह न सत् है न असत् है, न सत् और असत् दोनों है। न दोनों से भिन्न ही है। इन चारों सम्भावित कोटियों से विलक्षण ही एक तत्त्व है। इसे माध्यमिकों ने 'परम तत्त्व' कहा है।[1]

पानप ने शून्य को आस्तिक भाव से ब्रह्म-रूप में अपनाया। शून्य रूप ब्रह्म का वर्णन पानप ने कई स्थलों पर किया है। पानप ने कहा है कि वह अवर्ण्य है और वर्णहीन भी है, वह न धूप है न छाया ही। गुरु की शरण से उसको पाया जा सकता है। वह अस्थिर है, अजर है, अमर है। वह सहज रूप में समा जाता है और उसे जान लेता है।[2]

कहीं-कहीं पानप ने शून्य शब्द को सुषुम्ना के वाचक के रूप में और कहीं पर ब्रह्मरन्ध्र के द्योतक के रूप में प्रयुक्त किया है। पानप ने मृत्यु के उपरान्त शून्य रूप ब्रह्म में समा जाने की ओर भी संकेत किया है।[3]

पानप ने शून्य का प्रयोग अभाव रूप और क्षणिक रूप के अर्थ में नहीं किया जैसा कि अधिकतर बौद्धों ने किया है। यह स्मरणीय है कि पानप का शून्यवाद बौद्धों के शून्यवाद से भिन्न है।

पानप का शून्यवाद योगियों एवं सन्तों से प्रभावित होते हुए भी एक सच्चे श्रद्धालु और आस्तिक भक्त का शून्यवाद है, तभी तो पानप कह उठे—

'सुन्य क्षेत्रं अन्तरोमित्रं, देवो परम निवासतं ॥'[4]

पानप का शून्यवाद ब्रह्मवाद से प्रभावित है और इसी कारण उन्होंने शून्य-रूप-ब्रह्म का वर्णन किया है। पारमार्थिक सत्य, ब्रह्म एवं शून्य के लक्षण एक जैसे ही हैं।

अनिर्वचनीय तत्त्व रूप ब्रह्म

निर्गुण ब्रह्म का विवेचन अनिर्वचनीय तत्त्व रूप में किए जाने की पद्धति प्राचीन काल ही से प्रचलित है। ब्रह्म का अनिर्वचनीय तत्त्व रूप में वर्णन करने का आभास उपनिषदों में मिलता है।

पानप ने ब्रह्म का तत्त्व रूप में वर्णन किया है। उनका कहना है कि वह ऐसा अनूप तत्त्व है जिसका कोई आकार नहीं है और जो पुष्प की सुगन्ध से भी सूक्ष्म है।[5] पुष्प की गन्ध अरूप है और अत्यन्त सूक्ष्म है, परन्तु वायु के संयोग से दूर-दूर तक पहुँच कर अपनी गंध से प्रफुल्लित कर देती है।

---

१. मध्यमकारिका—१·७
२. पानपबोध-नामस्तोत्र—१७, १८
३. ,, ,, १०·११
४. ,, ,, ९
५. सुषमवेद—९·१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ने निर्गुण ब्रह्म को अनिर्वचनीय कहा है। उसके अनुसार उस तत्त्व का इन्द्रियों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे वाणी से नहीं बताया जा सकता, उसका बताना तत्त्व की अनभिज्ञता ही है। पानप को प्रेमीरूपी रस मिल गया पिलाने वाला तो मिलता नहीं। मैं क्या दिखा दूँ, वह आँख से देखा नहीं जा सकता। पानप ने उस अनिर्वचनीय तत्त्व को गूँगे का गुड़ कहा है।[1]

अनिर्वचनीय तत्त्व का अनुभव भी अनोखा है। उसकी अनुभूति से चंचल मन केन्द्रीभूत हो जाता है, शांति की उपलब्धि हो जाती है। शरीर में प्रकंपन एवं प्रफुल्लन का संचार होता है और परमानन्द की अनोखी स्थिति प्राप्त हो जाती है। अनिर्वचनीय तत्त्व रूप ब्रह्म भीतर की वस्तु है, बाहर की नहीं। उसकी अनुभूति में निमग्न ही रहा जा सकता है।[2]

अनिर्वचनीय तत्त्व रूप ब्रह्म का वर्णन पानप के अनेक प्रकार से किया है :

(अ) ब्रह्म में निर्गुणतावाचक विशेषणों का आरोप करके।

(आ) विश्वोत्पत्ति के पूर्व की अवस्था का वर्णन करके।

(इ) विभावात्मक वर्णन करके।

(ई) नकारात्मक शैली का प्रयोग करके।

(अ) निर्गुणतावाचक विशेषणों से युक्त ब्रह्म-वर्णन

पानप ने ब्रह्म को निर्गुणतावाचक विशेषणों से युक्त करके उसका वर्णन किया है।

ब्रह्म आँखों से देखा नहीं जा सकता है, अतः वह अलख है। वह अत्यन्त सुन्दर है, सदा-सर्वदा रहने वाला है, वह अनुपम है। वह गुण रहित है, उसका नाम नहीं रखा जा सकता, वह किसी के द्वारा बनाया नहीं जाता और उसका अन्त भी नहीं होता है, वह अरचित है।[3]

ब्रह्म का भेद पाना असम्भव है, उसे इन्द्रियों से पाया नहीं जा सकता अतः वह अगम और अगोचर है। ब्रह्म का कोई रूप नहीं, कोई रंग नहीं, उसका आदि और अन्त नहीं, उसका कभी नाश नहीं होता। वह अविनाशी है और सबके हृदय में व्याप्त है।[4]

वह सभी कर्मों से अलिप्त है, निर्भय है। उसका कोई आकार नहीं, वह निराकार है। वह शून्य रूप है, अत्यन्त सूक्ष्म है, वह अरूप है, उसे किसी भी प्रकार

---

१. सुपमवेद—११·१०

२. सुपमवेद—१५·१०, ११

३. पानपबानी—१२·१७, १८, २३, २४

४. ,, —१८·११, १२, १५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखा नहीं जा सकता। वह अक्षय है, अतः उसे निकट या दूर कहना ही असम्भव है। बिना पहचाने कैसे ज्ञान किया जा सकता है।[1]

निर्गुण ब्रह्म का वर्णन निर्गुणतावाचक विशेषणों से युक्त होना अनुपमेय है।

(आ) सृष्टि के पूर्व की अवस्था के द्वारा ब्रह्म-वर्णन

मनुष्य की जिज्ञासा रही है कि सृष्टि के पूर्व मूल-तत्त्व कैसा था? क्या था? था भी या नहीं था? उसका विवेचन साहित्य में भाँति-भाँति से पाया जाता है। पूर्वोक्त प्रकार से वेद के नासदीय सूक्त में निर्गुण ब्रह्म का विवेचन मिलता है कि जो कुछ है सो पहले नहीं था, जो कुछ नहीं है सो भी नहीं था। न पृथ्वी थी, न आकाश था, न उसके परे स्वर्गलोक। इसी प्रकार का उल्लेख यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में भी मिलता है।[2]

पानप के अनुसार नामरूपात्मक सृष्टि में जब कुछ नहीं था तब वही स्वयं अपनी शक्ति से विद्यमान था। वह अरूप और निर्गुण ब्रह्म था। निर्गुण-ब्रह्म की अभिव्यक्ति की दो पद्धतियाँ पानप में और भी पाई जाती हैं। ये दो शैलियाँ हैं—एक विभावात्मक शैली और दूसरी नकारात्मक शैली। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

(इ) विभावात्मक शैली के द्वारा निर्गुण-ब्रह्म-वर्णन

ब्रह्म वर्णन की विभावात्मक शैली उपनिषदों में भी पाई जाती है। विभावात्मक शैली में ब्रह्म-वर्णन का उदाहरण है—वह परमात्मन् हाथ पैरों से रहित होकर भी समस्त वस्तुओं का ग्रहण करने वाला तथा सवेग सर्वत्र गमन करने वाला है। वह आँखों के बिना सब कुछ देखता है और बिना कान के सब कुछ सुनता है। वह जो कुछ जानने योग्य वस्तुएँ हैं उन सबको जानता है, परन्तु उसको जानने वाला कोई नहीं। ज्ञानी पुरुष उसे महान् कहते हैं।

पानप ने भी उपर्युक्त विवेचन से मिलती-जुलती विभावात्मक शैली में ब्रह्म वर्णन किया है कि निर्गुण ब्रह्म बिना मुख के खा लेता है, बिना चरण चल लेता है। वह इन्द्रियातीत है, परन्तु उनकी प्रेरक शक्ति होने के कारण इन्द्रियों के सभी कार्य उसी के अधीन होते हैं। उस चैतन्य के बिना इन्द्रियाँ जड़वत् हैं। वह कुछ न होता हुआ भी सब कुछ है। उसे महाज्ञानी ही जान सकते हैं।[3]

(ई) नकारात्मक शैली द्वारा निर्गुण ब्रह्म-वर्णन

नकारात्मक शैली द्वारा ब्रह्म वर्णन उपनिषदों में भी पाया जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में एक स्थल पर लिखा है—

---

१. पानपबानी—२१·५, ६,

२. ऋजुर्वेद—१०, १२६, १

३. पानपबानी—१२·१७, २१, २५, २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"वह ब्रह्म न स्थूल है, न अणु है, न क्षुद्र है, न विशाल है, न अरुण है, न द्रव है, न छाया है, न तम है, न वायु है, न आकाश है, न रंग है, न रस और न गंध ही है। न नेत्र है, न कर्ण है और न वाणी है, न मन है न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माया है, उसमें, वह न अन्दर है, न बाहर है।"[1]

पानप में भी नकारात्मक शैली द्वारा ब्रह्म-वर्णन पाया जाता है। उन्होंने ब्रह्म को न दूर है, न निकट है, न वही शीत है, न उष्ण है, न वह शब्द है न स्वाद है, न माता-पिता है और न अन्य सम्बन्धी वाला बताया है।[2]

इसके उपरान्त पानप यह भी कहते हैं कि ब्रह्म न शुद्ध है और अपवित्र ही, न उसकी कोई जाति है। जगत् के नामरूपात्मक पदार्थों में से ब्रह्म कुछ भी नहीं है। वह नित्य, मुक्त, सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह अद्वैत है अन्य कुछ भी नहीं।[3]

निर्गुण ब्रह्म का सर्वविवर्जित रूप

ब्रह्म को सभी भेदों से परे निरूपित करने की परम्परा प्राचीन काल ही से चली आ रही है। गीता में लिखा है कि इस अव्यक्त से परे दूसरा सनातन अव्यक्त पदार्थ है जो सब भूतों के नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता। इस अव्यक्त को अक्षर भी कहते हैं। यह परम उत्कृष्ट या अन्त की गति कहा जाता है, जिसे पाकर फिर जन्म में लौटा नहीं जाता, वही मेरा परम स्थान है। यहाँ ब्रह्म को सभी भेद-उपभेद तथा जाने हुए नामरूपात्मक पदार्थ और न जाने गए पदार्थों से भी परे कहा गया है। एक प्रकार ब्रह्म सर्वविवर्जित है।

पानप ने ब्रह्म को गुणातीत तथा सर्वातीत कहा है। पानप ब्रह्म को विश्व जनित सभी भेदों से रहित बताते हैं।[4]

पानप का ब्रह्म वेद, भेद, पाप, पुण्य, ज्ञान, ध्यान, अस्थूल, शून्य और वेश आदि तथा तीनों लोक के सभी पदार्थों से विवर्जित है। इसे पानप का सर्वविवर्जित-वाद कहा जा सकता है।[5]

द्वैताद्वैत विलक्षण रूप ब्रह्म

शून्यवादी नागार्जुन ने माध्यमिक कारिका में मूल-तत्त्व के विषय में कहा कि वह तत्त्व जैसा है वैसा है। उसका वर्णन करना कठिन है। वह न सत् है, न असत्, न सत्—असत् दोनों है, न दोनों से भिन्न है। इस प्रकार इन चारों सम्भावित कोटियों से विलक्षण ही एक तत्त्व है, जिसे माध्यमिकों ने अपना परम तत्त्व कहा है और इस तत्त्व को अलक्षण भी कहा है।

---

१. बृहद०—३/८/८
२. पानपबानी—३·१२
३. ,, —७·१८
४. पानपबानी—१४·६
५. ,, —१६·२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाथ पंथ सिद्धान्ततः अद्वैतवादी ही है परन्तु अद्वैतवादियों से अपने सिद्धान्तों को उत्तम और उत्कृष्ट दिखाने के लिए इस मत में मूल-तत्त्व को द्वैताद्वैत विलक्षण कहते हैं।

द्वैत और अद्वैत से विलक्षण तत्त्व को स्पष्ट करने वाला मत द्वैताद्वैत विलक्षणवाद कहलाया, यह नाथ-पंथी योगियों का मत है।

पानप पर नाथ-पंथ का प्रभाव है। अतः उन्होंने भी कई स्थलों पर ब्रह्म का द्वैताद्वैत-विलक्षणवाद की भाँति वर्णन किया है।

पानप ब्रह्म को ऐसा अद्भुत तत्त्व बताते हैं, जिसको वेद तथा पुराण आदि भी नहीं जानते। पानप ने विलक्षण ब्रह्म को निरंजन नाम भी दिया है।[1] उनका निरंजन विलक्षण तत्त्व ही है।

हो सकता है कि पानप ने नाथ-पंथी योगियों से वाद-विवाद में अपनी विजय के लिए द्वैताद्वैत विलक्षणवाद से मिलती-जुलती बातें कहीं हों, यों उन्होंने सर्वत्र निर्गुण एवं गुणातीत ब्रह्म ही का वर्णन किया है। नाथ-पंथी योगियों के सम्पर्क में रह कर इतना प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है।

निर्गुण परात्पर ब्रह्म

नामरूप एक सीमा है जिसमें अरूप की अभिव्यक्ति होती है, इसे 'हद' कहते हैं। सत्, रज और तम तीनों गुणों से अतीत अरूप सत्ता है, जिसे निस्सीम, अनन्त कहते हैं और साधारण शब्दों में इसे बेहद कहेंगे। इन दोनों अवस्थाओं से परे भी जिस तत्त्व की कल्पना की जाए वह परात्पर है।

पानप ने ब्रह्म को तिहुँलोक-विवर्जित तक कह डाला है।[2] वास्तव में पानप का सर्वविवर्जितवाद ही, योगियों का द्वैताद्वैत विलक्षणवाद, वेदों का परात्परवाद, बौद्धों का अनिर्वचनीयवाद तथा रहस्यवादी भक्तों का अद्भुतवाद है।

सर्वातीत ब्रह्म ही परात्पर है। उसके विषय में क्या कुछ बता सकना सम्भव भी है, कदापि नहीं। वह रूप-अरूप के पर विभावात्मक रूप में है, जहाँ उत्तमोत्तम साधक एवं ज्ञानी भी पहुँच सकने में असमर्थ है।[3]

नेति-नेतिवाद

सत्य-तत्त्व का विवेचन करते-करते जब लौकिक भाषा तथा वाणी असमर्थ हो जाती है, उस समय नेति-नेति कहना ही उपयुक्त होता है।

पानप ने निर्गुण ब्रह्म का अनेक प्रकार से वर्णन किया। अन्त में पानप ने नेति-नेति का प्रश्रय लिया। उन्होंने कहा है कि ब्रह्म का वर्णन कहाँ तक किया

---

१. पानपबानी—७·५, ६
२. ,, —१६·२
३. ,, —१६·४, ५, ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाए। वह ऐसा है, वैसा नहीं। इस वाद-विवास पर समय-व्यर्थ न करके उसके प्रति श्रद्धा ही वांछनीय है और उसका गुणगान करना ही श्रेयस्कर है।[1]

कर्तृत्व ब्रह्म का स्वाभाविक गुण नहीं है, यह केवल बाह्य उपाधिमात्र है जिसको हम भ्रमवश ब्रह्म में आरोपित करते हैं। सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म इन दोनों स्वरूप में ब्रह्म एक ही है। सगुण ब्रह्म या ईश्वर अथवा परमेश्वर निर्गुण ब्रह्म हीं का प्रतिरूप है। जगत्-व्यवहार के लिए वह ईश्वर है, परन्तु निरपेक्ष रूप में वह परब्रह्म है।[2] ब्रह्म के तटस्थ लक्षण का वर्णन आगे है।

ब्रह्म का व्यक्त रूप (ब्रह्म का तटस्थ लक्षण अथा व्यावहारिक सत्ता)

यद्यपि शुद्ध सत्ता अनेक रूपों में प्रकट होती है तथापि युक्ति उन्हें यथार्थ नहीं मानती, तब तक यह स्वीकार करना पड़ता है कि जगत् के मूल-कारण में ऐसी अनिर्वचनीय शक्ति है जो वह वस्तुतः अद्वैत (अपरिणामी) होते हुए भी अनेक रूपों में अपने को उद्भासित करती है। आस्तिकवाद के शब्दों में इस दार्शनिक तथ्य को मायाशक्ति सम्पन्न सृष्टिकर्ता ईश्वर कह सकते हैं। यही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् ईश्वर या सगुण ब्रह्म है। संसार के समस्त विषय नामरूप का परित्याग कर रूपान्तर में परिणत हो जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वे अपने मूल-कारण सत्ता में विलीन हो जाते हैं और इसी से ईश्वर को लयकर्ता या संहारकर्ता भी कहते हैं।

श्रद्धायुक्त भक्तों ने उस तत्त्व में अनेक गुणों का आरोप करके असीम सामर्थ्यवान् के रूप में प्रतिपादित किया। इन भक्त साधकों को अव्यक्त में अनेक विशेष गुणों का आरोप करके सत्ता को व्यक्त जैसा कल्पित करना अनिवार्य-सा हो जाता है। तभी तो पानप कहते हैं।

'दीन दयाल दरद दुख भंजन, नाथन के पतिनाथ।
कहै पानप जन कोई-कोई जानै, रहत सदा संगात॥'[3]

भक्ति मानव-हृदय की अनन्यासक्ति है। यह आसक्ति सगुण और साकार के प्रति सहज ही हो जाती है। आराध्य में विशेष मानवोचित एवं दिव्य गुणों का होना अनिवार्य है और इसी कारण भक्तों ने ईश्वर में अनेक दिव्य गुणों का आरोप करके उसके सगुण रूप की कल्पना की।

भक्ति-भावना के हेतु तथा व्यावहारिक दृष्टि से पानप विविध प्रकार से अनेक विशिष्ट गुणों का आरोप करके मायोपाधिक ब्रह्म की कल्पना करते हैं।[4]

---

१. पानपवानी—१९·१६, १७
२. ,, —११·१२, १४
३. पानपबानी-ज्ञान सुषमनी—११·५
४. ,, ,, १९·२०-२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ब्रह्म को सृष्टिकर्त्ता के रूप में केवल कहने-सुनने अर्थात् व्यावहारिक दृष्टि से ही व्यक्त करते हैं ।[१] क्योंकि ब्रह्म तो अरूप, अचिन्त्य, अजन्मा, और अकर्त्ता आदि है । सत्, रज और तम गुणों वाली माया है । उस माया से आच्छन्न ब्रह्म को ही तो ईश्वर, परमेश्वर आदि नाम से पुकारा जाता है । यद्यपि मायोपाधिक ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप है तथापि ईश्वर स्वरूप में माया के द्वारा नामरूपात्मक विश्व का विस्तार करता है ।

पानप का स्पष्ट मत है कि निर्गुण ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता । यह सव विकार तो माया में ही होते हैं और माया-जन्य भ्रम से मानव-बुद्धि उन्हें ब्रह्म का विकार मान लेती है ।[२]

पानप का आशय है कि जगत् जव तक भासित होता है तब तक वह एक मात्र सत्ता ब्रह्म के ही आश्रित रहती है, जैसे रस्सी में आभासित सर्व-भाव उस रस्सी के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ में नहीं रहता, परन्तु जिस तरह उस रस्सी में सर्वत्व की भ्रांति के कारण कोई विकार नहीं आता अथवा जिस तरह नाटक के पात्र को राज्य की प्राप्ति या नाश से कोई यथार्थ लाभ अथवा हानि नहीं होती उसी तरह जगत् के सुख-दुःख, पाप-पुण्य एवं अन्य विकारों तथा विषयों से ब्रह्म प्रभावित नहीं होता ।[3]

पानप ने ब्रह्म में अनेक दिव्य विशिष्टताओं का आरोपण किया है । भक्त का साध्य शुद्ध सत्ता एवं निर्गुण ब्रह्म है । भक्त की साधना की प्रारम्भावस्था अपरिपक्व होती है । अपने मन को केन्द्रीभूत करने के लिए भक्त विशिष्टताओं द्वारा आराध्य में अनेक गुणों की कल्पना करके अनन्यता-उपलब्धि के लिए प्रयत्न करता है ।[४]

भक्त जब अपनी भावना द्वारा अनेक दिव्य गुणों की कल्पना अपने आराध्य में करता है और एक विशिष्ट कल्पना जन्य स्वरूप की भावना अपनी बुद्धि में धारण करता है तो आराध्य का यह स्वरूप-भावना निर्निमित दिव्य स्वरूप कहलाता है ।

भक्त अपनी बुद्धि के द्वारा भाँति-भाँति की कल्पना करता है और अपनी कल्पना के अनुकूल भगवान् के विशिष्ट स्वरूप एवं आकार की कल्पना करके अपनी बुद्धि में उस स्वरूप का निर्माण कर उसकी उपासना में दत्तचित्त होता है । इसे बुद्धि विनिर्मित स्वरूप कहते हैं ।

भक्त विश्व के अपरिमित शक्ति वाले विलक्षण पदार्थों के माध्यम से आराध्य के प्रति भक्ति-भावना का संयोजन करता है; इसे प्रतीकमय स्वरूप कहते हैं ।

---

१. पानपबानी-ज्ञान सुषमनी—१६·२७
२. ,, ,, १२·३
३. पानपबानी—१४·३-७
४. ,, —१७·५-७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पानप में ये तीनों प्रकार के स्वरूप पाए जाते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन उपयुक्त होगा—

ब्रह्म का भावना-विनिर्मित दिव्य स्वरूप

भक्त भावना के आवेश में अपने उपास्य में श्रेष्ठतम, सर्वोत्कृष्ट एवं मानवोचित विशिष्टताओं का आरोप करता है और अपने आपको भगवान् के समक्ष एक निम्नतर प्राणी के रूप मे व्यक्त करता है।

पानप ने अपने परमेश्वर को संवेदनशील और अनन्त करुणामय रूप में ध्वनित किया है। वह इतना दयालु है कि जिस पर कृपा कर देता है उसके सभी कार्य सम्पन्न एवं पूर्ण हो जाते है, वह दीन दुःखियों का हितैषी है।[१]

पानप ने भगवान् के भक्ति-भावना-विनिर्मित विग्रह का अत्यन्त सुन्दर, श्रद्धापूर्ण एव प्रेममूलक चित्रण किया है :

नैनन में छाय मधुर स्याम, धर मनसा दरसन अष्टजाम।
जहाँ खिड़की लागी तिल परिमान, कोई संचै सुरत हरजन सुजान ॥[२]

पानप ने अवतारवाद का खण्डन किया और यही बताया कि निर्गुण ब्रह्म अवतार नहीं हो सकता, यह तो जगत्-व्यवहार और भक्तों की भावना द्वारा कल्पित रूप है। पारमार्थिक दृष्टि से इनका अस्तित्व नहीं माना जा सकता।[3]

पानप आवागमन के कार्य को माया बताते हैं, जो उत्पन्न होता है और मृत्यु को प्राप्त होता है, वह ब्रह्म नही है। वह सब माया का खेल है। वह प्रतिपाल है, अजर-अमर है। वह निर्विषयी, निर्वैर और निःसंग है।[४]

अतएव पानप ब्रह्म के सगुण स्वरूप को स्वीकार नहीं करते अर्थात् उन्होंने कभी भी इस बात को स्वीकार नहीं किया कि निर्गुण ब्रह्म भक्तों की रक्षा के लिए मनुष्य की भाँति जन्म लेता है और भू-भार को उतार करके धर्म की स्थापना करता है। पानप के अनुसार व्यवहार के लिए ही यह बातें कही जाती हैं।[५]

भक्त भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के हेतु भाँति-भाँति की कल्पना द्वारा अनेक मानवी सम्बन्धों का आरोप भगवान् और अपने बीच स्थापित करता है। भगवान् और भक्त के बीच किसी भी प्रकार का अन्तर उसे खलता है। लोक में प्रायः दो सम्बन्ध ऐसे हैं जिनमें प्रेम की चरम परिणति देखी जाती है। ये दो हैं—दाम्पत्य सम्बन्ध तथा वात्सल्य-सम्बन्ध।

---

१. पानपबानी—१०·५, ६, ७
२. ,, १३·२
३. ,, १७·५,६
४. ,, १७·१७
५. ,, १८·५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप में दोनों सम्बन्ध पाए जाते हैं। वर-वधू के वैवाहिक सम्बन्ध से दाम्पत्य-जीवन का सम्बन्ध स्थापित होता है। पानप ने अपने को दुल्हिन और भगवान् को पति रूप में कल्पना करके दाम्पत्य-सम्बन्ध का भी वर्णन किया है।[1]

पानप में वात्सल्य-सम्बन्ध के वर्णन भी पाए जाते हैं। वे कहते हैं कि हे भगवान्। मैं तो तेरा पुत्र हूँ और तू मेरा पिता है, हम दोनों एक ही स्थान में वास करते हैं।[2]

इस प्रकार पानप ने ब्रह्म में अनेक विशिष्टताओं का आरोप करके उनके दिव्य का वर्णन किया है।

ब्रह्म का बुद्धि-विनिर्मित विराट् स्वरूप

ब्रह्म का बुद्धि-विनिर्मित रूप वेद के पुरुष सूक्त में पाया जाता है। सूक्त का आरम्भ इस प्रकार है :

'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
......................त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

अर्थात् पुरुष के सहस्र मस्तक हैं, सहस्र नेत्र हैं, सहस्र पैर हैं। यह समस्त पृथ्वी में व्याप्त है और उससे दस अंगुल परे भी है। जो कुछ है और जो कुछ होगा वह सब 'पुरुष' ही है। वह अमरत्व का स्वामी है। जितने अन्न से पलने वाले जीव हैं, सबमें वही है। उसकी इतनी बड़ी महिमा थी और अपनी महिमा से बड़ा वह पुरुष था। सम्पूर्ण विश्व उसका चतुर्थांश-मात्र है, तीन पाद बाहर अन्तरिक्ष में हैं। उसके एक पाद से सर्वभूत व्याप्त है। उसके तीन पाद अमृत हैं, जो द्युलोक में है। वही चारों ओर चराचर विश्व में व्याप्त है।[3]

गीता में भी ब्रह्म के विराट् स्वरूप का वर्णन मिलता है।

पानप ने ब्रह्म के बुद्धि विनिर्मित स्वरूप का वर्णन किया है। भगवान् के विराट् स्वरूप के वर्णन के साथ-साथ उसमें दिव्य सौन्दर्य की भी झलक पायी जाती है। पानप का विराट् ब्रह्म करोड़ों सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है, करोड़ों महादेवों की महिमा से मण्डित तथा करोड़ों दुर्गाओं की शक्ति से समन्वित है। वह करोड़ों ब्रह्माओं के ज्ञान से विभूषित है। उसके दरबार में नवों ग्रह हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। करोड़ों धर्म उसके प्रतिहारी हैं और करोड़ों पवन उसकी परिक्रमा करने में व्यस्त हैं। करोड़ों नाग उसकी सेज सजाए हुए हैं। करोड़ों कुबेर उसका भण्डार भरते हैं

---

१. पानपबानी—१३·७
२. पानपबोध—१४·८
३. यह सूक्त ऋग्वेद १·५०, यजुर्वेद ३१/१-२ तथा श्वेताश्वतरोपनिषद ३/१४ में है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और करोड़ों लक्ष्मी उसका शृंगार करती हैं। वह इतना महान् है कि करोड़ों ज्ञान भी उसका भेद बताने में असमर्थ हैं।[1]

ब्रह्म के बुद्धि-विनिर्मित स्वरूप के वर्णन रसहीन एवं शुष्क हो सकते हैं, परन्तु पानप का वर्णन सरस एवं सौंदर्यपूर्ण है।

आराध्य का स्वरूप यदि कठोर ही रहा तब तो भक्ति के स्थान पर भय ही होगा और इसी कारण पानप ने ब्रह्म को सौंदर्य एवं अनन्त सामर्थ्य से विभूषित दिव्य रूप में प्रदर्शित किया है।

पानप उच्च कोटि के भावुक एवं भक्त थे तभी तो ब्रह्म का ऐसा सुन्दर वर्णन कर सके।

पानप ने ब्रह्म में कर्तृत्व-शक्ति, संहार-शक्ति एवं धारण-शक्ति का भी आरोप किया है। ब्रह्म को सम्पूर्ण विश्व का नियन्ता कहा है।[2]

पानप का स्वामी अनेक विशिष्टताओं का भण्डार है। उसके गुणों का अन्त नहीं।

ब्रह्म का प्रतीकमय स्वरूप

भक्त अपनी ज्ञातव्य वस्तुओं के आधार पर ही अपनी भावनाओं को आराध्य में संयोजित करने की चेष्टा करता है। वह अनेक प्रतीकों की योजना करके प्रतीकोपासना करता है। ये प्रतीक अमूर्त भी होते हैं और मूर्त भी। प्रतीकोपासना अथवा प्रतीकों के माध्यम से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति अत्यन्त प्राचीन है। उपनिषदों में इस पद्धति के उदाहरण मिलते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को अन्न, औषधि आदि के मूर्त प्रतीकों के द्वारा बताया गया है। ब्रह्म को प्राण और मन के प्रतीकों द्वारा भी बताया गया है।

पानप में प्रतीकमय ब्रह्म वर्णन कम ही पाए जाते हैं। एक-आध स्थल पर इसका उल्लेख है। पानप ने ब्रह्म को मन रूप बताया है:

'मन लागा उनमन्न सों, गगन पहूँचा जाइ ।।[3]

यहाँ 'उनमन्न' से तात्पर्य ब्रह्म ही से है। पानप ने ब्रह्म के तटस्थ लक्षणों का विवेचन किया है। सगुण और निर्गुण का विभेद भी पानप को मान्य नहीं है।[4]

यद्यपि ईश्वर अथवा भगवान् परब्रह्म का औपाधिक रूप-मात्र है तथापि उसका महत्त्व कम नहीं है। निचली सीढ़ी के सहारे ही क्रमशः ऊपर चढ़ा जाता है। उपनिषदों का तथा सभी सिद्ध पुरुषों का विश्वास है कि सत्य का साक्षात्कार क्रमशः आध्यात्मिक उन्नति के द्वारा होता है।

---

२. पानपबोध—१४·५
३. ,, १८·६
१. पानपबानी—१७·३
२. ,, ११·५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह निर्भ्रान्त सत्य है कि पानप ने गुणातीत ब्रह्म ही को पारमार्थिक सत्य माना है। पानप द्वारा ब्रह्म का भाँति-भाँति वर्णन करना सार्थक ही है। किसी वस्तु के सम्बन्ध में दूर या सत् शब्दों का प्रयोग किया जाता है तथा किसी अन्य वस्तु के समीप या असत् होने का भी अप्रत्यक्ष रूप से बोध हो जाया करता है।

पानप ब्रह्म ही को परम तत्त्व, पारमार्थिक सत्य मानते हैं। उन्हें विश्व में पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

पानप की नाम-प्रियता

ब्रह्म के सम्बोधन एवं परिचय के लिए अनेक नामों का प्रयोग पाया जाता है। मूल-तत्त्व को अनेक नाम से बताने की परम्परा रही है। सन्तों ने उसे कई नामों से उद्घोषित किया है।

परशुराम चतुर्वेदी ने "संत-काव्य" में बताया है कि जयदेव ने ब्रह्म के लिए राम एवं गोविन्द नाम का प्रयोग किया है। संत वेणी ने उसे निरंजन तथा 'राम' नाम दिया है। संत त्रिलोचन ने ब्रह्म कहा है। संत नामदेव ने गोविन्द, पारब्रह्म, राम तथा विट्ठल आदि नामों का प्रयोग किया है। स्वामी रामानन्द ने ब्रह्म के लिए राम नाम का प्रयोग किया है। संत सेन नाई ने ब्रह्म के लिए, मदन, गोविन्द आदि नामों का प्रयोग किया है। संतों की नाम-प्रियता इस प्रकार विदित ही है। सभी संतों ने ब्रह्म के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया है।

नाम के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण अवलोकनीय है :

ब्रह्म, पारब्रह्म, हर, आतमराम, हरि, अलष, अरूप, नाम, निरगुण, ब्रह्म, अगम, राम, पुरस, तिरदेवा, आतमतत्त, परमातम, ततसार, प्रभु, ब्रह्म, अगन, अंठर, साहिब, सन्त, देव अनूप, तीरथ, गुरसबद, अजर, अगमअगोचर, अन्तरजामी, जगदीश, रामकृष्ण, राधे-कृष्ण, षुदा, विसरूप, सच्चासाहिब, करता, करमहार, ठाकुर, आप, भगवान्, रहीम, सहज, पूरा, केसव, परमजीत, साहब, खसम, साँई, नारायन, जोत, ईश्वर, पुरुषोत्तम, हजूर, सुन्य, प्रमातमा, सिव, शक्ति, चौथा पद, अभैपद, सबद, अनहद, निजपद, अमृत, उनमन, परम-निधान आदि नामों का पानप ने प्रयोग किया है।

पानप ने स्वयं अपने समय के सभी प्रचलित मत-मतान्तरों द्वारा मूल-तत्त्व अथवा ब्रह्म के लिए जो नाम प्रयुक्त किए जाते थे उन सबको अपनाया और अपनी अभिरुचि के अनुकूल उनका प्रयोग किया।

भगवान् का एक नाम उत्तम है तथा दूसरा उससे निम्न है, इन विचारों ने भी परस्पर विद्वेष और कलह को जन्म दिया था। हिन्दू-मुसलमान, नाथ-सिद्धों, वैष्णव, शैव आदि मतमतान्तर परस्पर झगड़ा करते थे। अपने मत के द्वारा प्रयुक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवन्नाम को उत्तम तथा दूसरे मत के नाम को निकृष्ट कह कर झगड़ा कर बैठते थे।

पानप ने उनके इस कृत्य की भर्त्सना की और यही कहा कि भगवान् के असंख्य नाम हैं और प्रत्येक नाम के प्रयोग से उसी का बोध होता है। किसी एक ही नाम को लेकर परस्पर द्वेष, घृणा एवं वैर-भाव रखना अनुचित है, व्यर्थ है।

पानप ने स्वयं अपने समय के प्रचलित मत एवं धर्म हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, नाथ-पंथ, सिद्ध, वैष्णव, शैव तथा सन्तमत आदि द्वारा प्रयुक्त नामों का प्रयोग अपनी वाणी में किया।

पानप के राम-हर

पानप की बानी में राम-नाम का तथा हर-नाम का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। सगुण भक्ति-धारा के अनुसार राम को विष्णु का अवतार माना जाता है। पानप ने अवतारवाद का खण्डन किया है। अतः पानप का राम और हर निर्गुण है, निर्गुण ब्रह्म है :

अन्तर माँही राम हमारा, सदा समीप पलक नहीं न्यारा।
ध्यान साईं जासू प्रभु कूँ देषै, कहै पानप सूझै पुरस अलेषै ॥[1]
ते हर सूँ वेमुष भए, घट मैं किया न पोज ॥[2]

राम और हर को पानप ने निर्गुण उद्घोषित करते हुए सर्वत्र व्याप्त तत्त्व, पारमार्थिक सत्य, अजन्मा, निराकार ब्रह्म को माना है।

पानप के ब्रह्म-वर्णन की विशेषता

पानप अध्यात्म-प्रधान चिन्तक थे। उनकी आध्यात्मिकता तर्क पर आधारित न थी। वे स्वानुभूतिपरक सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन करते थे।

पानप का जीवन आध्यात्मिक तथ्यों की शोध एवं अन्वेषण में बीता था। विभिन्न मत-मतान्तरों धार्मिक सम्प्रदायों एवं दार्शनिक विचारधाराओं से उन्होंने बहुत कुछ प्राप्त किया था।

स्थूल रूप से ब्रह्म के दो स्वरूपों का वर्णन होता रहा है—"व्यक्त तथा अव्यक्त। पानप ने ब्रह्म के अव्यक्त एवं निर्गुण स्वरूप का ही प्रतिपादन किया है।

पानप ब्रह्म की पारमार्थिक एवं व्यावहारिक सत्ता मानते हैं। अपनी पारमार्थिक दशा अथवा स्वरूप-लक्षण में ब्रह्म गुणातीत, निराकार, अरूप, निर्विकार, सच्चिदानन्द और सत्यंज्ञानमनन्त स्वरूप है। यह निरुपाधिक है।

---

१. पानपबानी—ज्ञानसुषमनी ३·५
२. ,, ,, ५·८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप भक्त थे और उन्होंने भी ब्रह्म की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार किया है। भक्ति के आवेश में पानप ने भगवान् में विशिष्ट गुणों का आरोप करके भावना एवं बुद्धि द्वारा उसके दिव्य एवं विराट स्वरूप की कल्पना की है। पानप ने किसी भी स्थल पर ब्रह्म के स्थूल एवं इन्द्रिय-ग्राह्य स्वरूप का प्रतिपादन नहीं किया। अवतारवाद तो कबीर की भाँति पानप में भी खोजने पर नहीं मिलता। वह निर्गुणवादी हैं।

पानप का ब्रह्म अरूप है, निर्गुण है परन्तु निष्क्रिय नहीं। वह स्वयं प्रकाशक है। अपने को अभिव्यक्त करने का उसका स्वभाव है, प्रवृत्ति है। वह अनन्त सामर्थ्यवान है और सामर्थ्यवान में अपने को प्रकट करने का नैसर्गिक स्वभाव होता है। वह स्वतः स्फूर्त है।

निर्गुण ब्रह्म का जितनी भी सम्भावित युक्तियों से वर्णन किया जा सकता है, वह पानप ने किया है। पानप सगुण एवं निर्गुण स्वरूप के पारस्परिक विभेद को नहीं मानते। ब्रह्म के व्यक्त रूप को वे अवतारवाद न मानकर उसकी व्यावहारिक सत्ता मानते हैं। निरुपाधि ब्रह्म ही मानवी बुद्धि द्वारा कल्पित उपाधि युक्त ईश्वर कहलाता है। ब्रह्म में कोई परिवर्तन नहीं होता, भ्रम तो मानवी बुद्धि में होता है। भक्ति-भावना के लिए तथा अद्वैत-स्थिति की उपाधियुक्त ब्रह्म की भी अपनी उपादेयता है। सत्य का साक्षात्कार एकदम नहीं हो जाता वरन् क्रमशः होता है, जैसे अन्तिम सीढ़ी पर अन्य सीढ़ियों पर चढ़ते हुए ही पहुँचा जाता है।

जीवन के किसी क्षेत्र में पानप को द्वैत भावना अथवा असमानता नहीं सुहाती, अतएव अद्वैत ब्रह्म के व्यक्त-अव्यक्त दो विभेदों को वे दो न मानकर एक ही अद्वैत ब्रह्म के अवस्था-रूप कहते हैं।

सत्य एक है, मूल तत्त्व एक है फिर द्वैत अंगीकार किया जाए, यह पानप को स्वीकार नहीं,। एकत्व की साधना पानप का चरम लक्ष्य है।

ब्रह्म अनिवर्चनीय है, इन्द्रियातीत है, उसका वर्णन इस वाणी से हो ही नहीं सकता। वह ऐसा है और वैसा नहीं, इस तर्क-वितर्क में समय नहीं खोना चाहिए।

पानप ने कहा है कि ब्रह्म वाद-विवाद का विषय नहीं बनाया जा सकता। इन्द्रियातीत के सम्बन्ध में तर्क करना व्यर्थ का समय खोना है। वह पारमार्थिक सत्य है, यह विश्वास योग्य है। श्रद्धा और भक्ति के साथ उसका गुण-ज्ञान ही करना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वस्तुतः हम इतना ही कह सकते हैं कि पानप ने तत्त्वान्वेषण आध्यात्मिक दृष्टि और पद्धति से किया। अपनी स्वानुभूति की कसौटी पर आध्यात्मिक तथ्यों को तपाया, संवारा और उसको खरा समझ कर उनका प्रतिपादन किया।

पानप ने परमतत्त्व का वर्णन करने में कठिनाई का अनुभव किया। कहीं-कहीं ब्रह्म को इन्द्रियगम्य एवं भाषागम्य नहीं माना और इसीलिए विरोधात्मक भाषा का भी प्रयोग किया।

अध्यात्म-दर्शन के अन्तर्गत अगले पृष्ठों में पानप के आत्म-विचार का विवेचन किया जायेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आत्म-दर्शन (जीवात्मा)

आत्म-परम्परा, पानपका आत्म-तत्त्व-वर्णन, आत्मा का एकत्व एवं अद्वैतता, आत्मा और ब्रह्म, विविध रूपकों द्वारा आत्म-वर्णन, आत्म का व्यक्त स्वरूप, आत्मा के दो स्वरूप, माया भ्रमित जीवों की कोटियाँ पानप द्वारा आत्म-वर्णन की विशेषता ।

आत्म-दर्शन घट-घट पर गट, जोई चितवे ताको दिष्ट भरी ।
परगट दरशन ना परतीता, दुनिया बन-बन भटक मरी ।
कोई जन चित-चेतन होय जागा, अकल अगोचर बाँध धरी ।
कहै पानप दोह पंथ अगोचर, सतगुरु मिल खबर परी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४ | आत्म-दर्शन (जीवात्मा)

आत्म-परम्परा

मनुष्य-शरीर के भीतर एवं बाहर जिस तत्त्व का प्रकाश है, उसे जानने का प्रयास सदैव से चला आ रहा है। प्राचीनकाल से चेष्टा रही है कि वह आत्मा क्या है? उसका स्वरूप क्या है? उसकी गति-प्रगति आदि क्या है?

जीवात्मा के स्वरूप का परिचय ऋग्वेद के प्रसिद्ध मन्त्र 'द्वा सुपर्णा' में व्यक्त किया गया है। इस मन्त्र में कहा गया है—"सदा साथ रहने वाले, परस्पर सख्य भाव रखने वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमें एक जीवात्मा उस वृक्ष के फलों का उपभोग करता है किन्तु दूसरा उनका उपभोग न करता हुआ साक्षी रूप में केवल देखता रहता है।[१]

उपनिषदों में आत्म-तत्त्व की पूर्ण प्रतिष्ठा है। यहाँ ब्रह्म और आत्मा को एक ही ध्वनित किया गया है। यह आत्मा ब्रह्म है।[२] मैं ब्रह्म हूँ, यह आत्मा ब्रह्म है, सबका अनुभव करने वाला है।[३] आत्मज्ञान को उपनिषदों में जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है—"इस आत्मा की खोज करनी चाहिए तथा आत्मा है; इस प्रकार उसकी उपासना करनी चाहिए। यहाँ आत्मा को परमार्थ-सत्य एवं मूल-तत्त्व माना गया है।[४]

---

१. ऋग्वेद—१/१६४/२०
२. बृहद०—२/५/१९
३. ,, २/५/१९
४. ,, २/४/५, १/४/७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीता में आत्मा को शुद्ध-बुद्ध एवं मुक्त-स्वरूप कहा गया है। आत्मा नित्य है। वह अकाट्य, अक्लेद्य, अछेद्य है। वह न कभी उत्पन्न हुआ था, न होता है और न होगा। वह शाश्वत एवं सनातन है। वह अजर-अमर है। आत्मा अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकार्य, निर्विकार है, उसके लिए शोक करना व्यर्थ है। गीता में आत्मा को मूल-तत्त्व ही माना है।

बौद्ध दर्शन में आत्मन् नाम की कोई वस्तु नहीं मानी जाती। इनके अनुसार सभी नाम-रूप परिवर्तनशील हैं, क्षणभंगुर है। नित्य कुछ है ही नहीं। न्याय-वैशेषिक दर्शन आत्मन्-तत्त्व को मानते हैं। यहाँ ज्ञान का जो अधिकरण है वही आत्मा कहा गया है। आत्मा को द्रष्टा, सर्वज्ञ, नित्य, सर्वव्यापक कहा गया है। ये भिन्न-भिन्न शरीर में भिन्न-भिन्न आत्मा मानते हैं। मीमांसा-दर्शन शरीर, इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा अर्थात् जीवात्मा की सत्ता मानते हैं। यह नित्य तथा अविनाशी द्रव्य है, जो वास्तविक जगत् में वास्तविक शरीर के साथ संयुक्त रहता है। जितने जीव हैं, उतने ही आत्मा हैं। प्रत्येक जीव में पृथक्-पृथक् आत्मा हैं। जीव-बन्धन में आते हैं और मोक्ष भी पाते हैं।

इन दर्शनों में आत्मा को ब्रह्म के समकक्ष नहीं माना गया है। आत्मा की संख्या भी अनेक बताई गयी है।

योग-दर्शन के अनुसार आत्मा अथवा जीव स्वभावतः शुद्ध चैतन्य-स्वरूप है। यह वस्तुतः शारीरिक बन्धनों और मानसिक विकारों से मुक्त रहता है। अज्ञान के कारण यह चित् के साथ अपना तादात्म्य कल्पित कर लेता है अर्थात् भ्रमवश अपने को चित् समझने लगता है।

'चित्' प्रकृति का प्रथम विकार है। इसमें सत्त्वगुण की प्रबलता रहती है। चित्त स्वभावतः जड़ है, परन्तु आत्मा के निकटतम होने के कारण उस पर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जिससे उसमें चैतन्य का आभास पड़ जाता है। जब चित्त का किसी विषय से सम्पर्क होता है तब वह उसी विषय का आकार धारण कर लेता है। इन्हीं विषयों के अनुरूप चित्त-विकारों के द्वारा आत्मा को विषयों का ज्ञान होता है। यद्यपि आत्मा में स्वतः कोई विकार या परिणाम नहीं होता तथापि परिवर्तनशील चित्तवृत्तियों में प्रतिबिम्बित होने के कारण इसमें परिवर्तन का आभास होता है। इस तथ्य को योग-दर्शन में इस प्रकार बताया है—

"चित्तवृत्ति-निरोध से द्रष्टा की अपने रूप में स्थिति हो जाती है। दूसरे समय में द्रष्टा का वृत्ति के सदृश स्वरूप हो जाता है। जिसका पुरुष के लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहा, ऐसे गुणों का अपने कारण में विलीन हो जाना कैवल्य है अथवा द्रष्टा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना कैवल्य है।"[1]

---

१. पातंजल योगदर्शन-सूत्र—१/३, ४, ४/३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सांख्य दर्शन में तीन प्रकार के पुरुष माने गए हैं—व्यक्त, अव्यक्त तथा ज्ञ। ज्ञ के विशेष ज्ञान से दुःख की आत्यतिकी निवृत्ति होती है, ऐसा कहा गया है। सांख्य मत में मूल-प्रकृति और जीवात्मा को परोक्ष तथा अतीन्द्रिय कहा गया है। उसकी सिद्धि के लिए वेद-वाक्य ही प्रामाण्य है। नामरूपधारी पुरुष को बद्ध पुरुष की संज्ञा दी गई है। जन्म-मरण होने, कार्य में प्रवृत्त होने, सुख-दुःख के मोह वाले मनुष्य अनेक होते हैं।[१] ज्ञ पुरुष शुद्ध-बुद्ध चैतन्य स्वरूप है। यह निर्गुण, अविनाशी और मुक्त हैं। शरीर के सुख-दुःख आदि मन के अनुभव हैं, आत्मा के नहीं।

शंकर वेदान्त के अनुसार जिस तत्त्व का व्यतिरेक अथवा बाध नहीं हो सकता वह अव्ययी तत्त्व ही सत्य एवं नित्य है। आचार्य शंकर कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपने अस्तित्त्व से नकार नहीं सकता—मैं हूँ, यह अनुभव सभी को होता है। वही ज्ञाता है और वही ज्ञेय है। उसे जानने के लिए किसी ज्ञान की अपेक्षा नहीं। वह स्वयं सिद्ध है। आत्मा अकर्त्ता है, अभोक्ता है और सुख-दुःख के परे है। सुख-दुःख की समस्त प्रतीतियाँ अन्तःकरण, शरीर और इन्द्रियों आदि उपाधियों के सम्बन्धों के कारण हैं, वे आत्मा के निजी स्वरूप में नहीं है। स्वरूप-लक्षण में आत्मा नित्य, मुक्त, अजन्मा, निराकार, अमर, अनन्त, सर्वव्यापी, चैतन्य स्वरूप है।[२]

विशिष्टाद्वैत के अनुसार चित्त-तत्त्व ही जीवात्मा है, जो देह, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा बुद्धि से भिन्न है। यह स्वप्रकाश, नित्य, अणु, अव्यक्त और निर्विकार है।

द्वैताद्वैत-दर्शन में जीवात्मा को अणु कहा गया है। ये लोग श्रुति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इनके अनुसार प्रत्येक प्राणी में भिन्न-भिन्न जीव है। आत्मा अनन्त एवं गुणमयी माया से आवद्ध है। यह द्रष्टा, भोक्ता और कर्त्ता सभी है।

नाथ-पंथ के प्रवर्त्तक गोरखनाथ ने आत्म-तत्त्व का परिचय देते हुए कहा है—

"आतमां मधे प्रमात्मां दीसै, ज्यों जल मधे चन्दा।"[3]

इस प्रकार वेद से लेकर उपनिषद् तथा अन्य सभी भारतीय दर्शनों ने आत्म-तत्त्व के सम्बन्ध में विचार किया और उसके स्वरूप आदि का प्रतिपादन किया।

अधिकांश दर्शन प्रायः इस मत का प्रतिपादन करते है कि मनुष्य-जीवन का चरम लक्ष्य है आत्म-ज्ञान। आत्मा एवं परमात्मा अथवा ब्रह्म में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। ब्रह्म के समान आत्मा भी नित्य, मुक्त, अनन्त, अजर, अमर और अविनाशी है। अज्ञान अथवा अविद्या के कारण मानवी बुद्धि में विकार उत्पन्न होता है और

---

१. सांख्यकारिका—२, ६ और १८
२. शांकरभाष्य—१/१/१, २/१/२, २/३/४०
३. गोरखबानी—पृ० ४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आत्मा अपने को शरीर से आबद्ध समझने लगता है तथा सुख-दुःख आदि क्लेशों का भोक्ता बनता है।

भारतीय-दर्शनों के समान पानप ने भी आत्म-ज्ञान को जीवन का चरम लक्ष्य बताया है और आत्म-तत्त्व निरूपण किया है, आगे इसका विवरण दिया जाएगा।

पानप का आत्म-तत्त्व वर्णन

उपनिषदों में आत्म-ज्ञान का विशद् महत्त्व-प्रतिपादित किया गया है। आत्मा को ही जानो तथा आत्मा है, इस प्रकार उसकी उपासना करो आदि के द्वारा आत्म-ज्ञान को जीवन का चरम लक्ष्य बताया है।

पानप की रचनाओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि पानप ने आत्म-विचार को जीवन का चरम लक्ष्य बनाया था। पानप ने अनेक स्थलों पर कहा है कि अपने स्वरूप अर्थात् आत्म-विचार करने से शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। अपने स्वरूप को जान लेने पर मनुष्य जन्म-मरण से छुटकारा पा जाता है। मनुष्य अपने स्वरूप को जाने और आत्मस्थित हो जाए तो वह सभी दुःखों से छूट जाता है। अपने स्वरूप को जान लेना ब्रह्म को जान लेना है और परमपद की उपलब्धि हो जाना है।[1]

इतना ही नहीं उन्होंने स्वयं अपने अनुभव की बात भी कही है। वे कहते हैं कि जब से मैंने आत्म-तत्त्व को पहचान लिया तब से काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि विकारों से छुटकारा हो गया तथा निर्वैर एवं निस्संग होकर मैं निर्भय हो गया।[2]

पानप के अनुसार आत्म-तत्त्व अन्यतम सत्य है। उसकी पारमार्थिक सत्ता है। उसे मैं हूँ अथवा हम हैं की अनुभूति से व्यक्त किया है। इस सकल विश्व में आत्म-तत्त्व व्याप्त है।[3]

पानप के अनुसार आत्मा सर्वव्यापी तत्त्व। भाँति-भाँति के घड़े अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं, परन्तु वे सब एक ही मिट्टी के बनाए गए हैं! इसी प्रकार सभी नाम रूपात्मक प्राणियों में आत्म-तत्त्व व्याप्त है।[4]

पानप ने आत्म-तत्त्व को अरूप-निर्गुण, अजर-अमर, अविनाशी बताया है। आत्मा का भेद पाना असम्भव ही है। उसका विनाश भी नहीं किया जा सकता।

पानप द्वारा किया गया आत्म-वर्णन उपनिषद् एवं गीता के अनुरूप है। पानप ने आत्मा को निराकार, अनन्त एवं विर्विकार कहा है। आत्मा संसार के नाम रूप से परे हैं। वह न जन्म लेता है और न मरता ही है। वह शरीरों में व्याप्त है,

---

१. पानपबानी—७·३, ४, ५, ७-१०
२. ,, ९·३
३. ,, ९·६
४. ,, ९·३,४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर शरीर, धातुएँ, रक्त, माँस और अस्थि आदि नहीं है। वह ब्रह्म का अंश है उसका और ब्रह्म का अटूट सम्बन्ध है।[1]

पानप के अनुसार आत्मा अद्वैत है। वह स्वयं प्रकाशक है। वह चैतन्य है और आनन्दस्वरूप है। वह अनूप, निर्विकारी तत्त्व है। वह आकाश की भाँति अनन्त है। आत्मा के चैतन्य ही से प्रकाशित यह शरीर कार्य करता है। आत्मा के अलग हो जाने पर यह निस्तेज एवं निर्जीव हो जाता है।[2]

पानप ने आत्मा को अनेक स्थलों पर ब्रह्म का समकक्ष घोषित किया है। निजस्वरूप, निरंजन, निराकार, अपरम्परा से यह स्पष्ट हो जाता है।

आत्मा का एकत्व एवं अद्वैतता

सन्त पानप ने आत्मा को अद्वैत कहा है। उनका विश्वास है कि आत्मा एक है जो लोग द्वैतवाद में विश्वास रखते हैं, वे इसको अज्ञानवश जान नहीं पाते और उन्हें नरक ही प्राप्त होता है।[3]

आत्म-तत्त्व सर्वव्यापी है। हम माया के कारण आत्मा और ब्रह्म की अद्वैतता नहीं पहचान पाते। सर्वत्र एक ही तत्त्व है, उसे आत्मा कहें या ब्रह्म कहें। छान्दोग्य-उपनिषद् में कहा गया है—"नास्ति द्वैतम् अर्थात् दूसरा कुछ है ही नहीं।"

जीव की संख्या के सम्बन्ध में विविध दर्शनों में मतभेद है। न्याय, वैशेषिक आदि जीव की अनेक संख्या मानते हैं। सांख्यवादी जीव को स्वतन्त्र और अनादि तो कहते हैं परन्तु बद्ध पुरुष की ये भी अनेक संख्या मानते हैं। अद्वैतवादी जीव की अनेकता में विश्वास नहीं करते। इनका दृढ़ मत है कि जीव एक और अद्वैत तत्त्व है।

पानप ने आत्म-तत्त्व की एकता एवं अद्वैतता के लिए अनेक उदाहरण दिए हैं। माया से अविच्छिन्न जीव अपनी अद्वैतता को भूल जाता है। अलग-अलग कितने ही मृत्तिका से निर्मित पात्रों में जल भर उन्हें धूप में रख दिया जाए तो उनमें सूर्य का प्रतिबिम्ब अलग-अलग पात्रों में अलग-अलग दिखाई पड़ता है, जबकि सूर्य एक ही है। इसी प्रकार आत्मा एक है परन्तु अलग-अलग नाम-रूपों में अनेक दिखाई पड़ता है।

इस प्रतिबिम्बवाद की शरण महात्मा पानप ने भी ली है। उनका कथन है कि जलाशय के किनारे बैठकर लहरदार जल में एक मनुष्य का प्रतिबिम्ब कई दिखाई पड़ेगा। इसी प्रकार आत्मा भी एक है जो अनेक दिखाई पड़ता है। इससे

---

१. पानपबोध—७·७,८
२. ,, ८·५
३. ,, ६·१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी आगे बढ़कर कहा कि सकल विश्व में आत्म-तत्त्व के अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ अन्ततम अस्तित्व के रूप में है ही नहीं। केवल आत्मा ही पारमार्थिक सत्य है।[1]

आत्मा की संख्या तथा अद्वैतता के सम्बन्ध में पानप उपनिषद् तथा अद्वैतवाद से पूर्ण सहमत हैं।

आत्मा तथा ब्रह्म

पानप आत्मा और ब्रह्म में भेद नहीं मानते। एक आध स्थल पर पानप ने अंशांशी-भाव की ओर संकेत किया है, यह भाव अखण्डात्मक है। बूँद और समुद्र का जो सम्बन्ध है, वैसा ही ब्रह्म और आत्मा का है। बूँद में समुद्र व्याप्त है और समुद्र में बूँद व्याप्त है। दोनों को एक दूसरे से विलग करना असम्भव ही है।[2] इसी प्रकार ब्रह्म और आत्मा एक-दूसरे में व्याप्त है, तन्मय हैं।

ब्रह्म-जीव की एकता एवं अद्वैतता अथवा सम्बन्ध को पानप ने स्पष्टतया घोषित किया है। पानप एक क्षण के लिए भी ब्रह्म और आत्मा को दो कहने को तैयार नहीं है। वे कहते हैं :—

अवधू गुरु की कृपा से इन्द्रियातीत ब्रह्म का अनुभव कर लिया और हमें तो सर्वत्र अपना ही स्वरूप दिखाई पड़ता है। जिस प्रकार बृहद्काय वट-वृक्ष एक अत्यन्त छोटे से बीज में अन्तर्हित होता है तथा उसी से वृक्ष की उत्पत्ति हो जाती है और उसी वृक्ष में छाया भी अवस्थित रहती है इसी प्रकार ब्रह्म में आत्म-तत्त्व है और उसी में माया भी है। आकाश में अभाव और अभाव में ही आकार भी है। इसी प्रकार शाश्वत ब्रह्म से नामरूप है और सृष्टि का विस्तार है। सूर्य में किरणें सन्निहित हैं और उन किरणों में प्रकाश भी है। इसी प्रकार ब्रह्म में जीव है और जीव में श्वास भी है। श्वास में शब्द है और शब्द में अर्थ निहित रहता है। ब्रह्म में इसी प्रकार जीव हैं, जीव के बीच मन है, जो इनसे अलग भी है।[3]

पानप का यह अंशांशी-भाव पूर्ण अद्वैतवादी है। जीव ब्रह्म का अंश है और तन्मय भी है।

विविध रूपकों द्वारा आत्म-वर्णन

पानप ने आत्मा का वर्णन कई प्रकार से किया है। उनका संक्षिप्त विवरण आवश्यक है। आत्मा के स्वरूप को व्यक्त करने के लिए उसे कभी प्राणरूप, कभी ज्योति-स्वरूप, वाणी-स्वरूप तथा पवन-रूप, कभी शब्द-रूप तो कभी मन-रूप-आत्मा का पूर्ण आभास सम्पन्न करने के लिए ही भाँति-भाँति से उसका वर्णन किया गया है।

---

१. पानपबानी—१८.११-१४
२. ,, १८.५, ६
३. ,, १५.१७-२०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आत्मा का प्राण-स्वरूप वर्णन

पानप ने आत्मा के लिए प्राण शब्द का प्रयोग किया है। पानप का मत है कि मानव-शरीर आत्मा के चैतन्य से ही प्रकाशित होता है और कार्य करता रहता है। आत्मा के शरीर से अलग हो जाने पर शरीर निर्जीव हो जाता है तथा वह किसी भी कार्य के करने में समर्थ नहीं होता। प्राण जब शरीर को छोड़कर चल देते हैं तब लोग कह देते हैं कि वह मर गया। प्राण अर्थात् आत्मा नहीं मरता, न जन्म ही लेता है, यह तो देह है जो उत्पन्न और नष्ट होती रहती है।[1]

प्राणों को आत्मा एवं परमात्मा कहने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रश्नोपनिषद् में प्राण को आत्मा तथा प्रजापति-स्वरूप वर्णन किया है और प्राणों की स्तुति करने का भी उल्लेख मिलता है।

प्राण शारीरिक क्रियाओं का नियन्ता एवं प्रेरक है। उसके शरीर से निकल जाने पर शरीर निष्प्राण तथा निर्जीव हो जाता है। सूक्ष्म रूप में आत्मा ही शारीरिक क्रियाओं का अभिनायक है।

ज्योति-स्वरूप आत्मा

जब तक दीपक की बाती प्रज्वलित रहती है, प्रकाश होता रहता है। बत्ती के बुझ जाने पर प्रकाश का भी लोभ हो जाता है। इसी बात से मिलती-जुलती यह बात भी कही जाती है कि अमुक व्यक्ति की जीवन-ज्योति बुझ गई, वह मर गया।

पानप ने आत्मा को ज्योति-स्वरूप एवं प्रकाश-विलय हो जाने पर काया-भवन में अन्धकार हो जाता है अर्थात् मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है। लोग उसे व्यर्थ समझ कर घर से अलग कर देते हैं।[2] यों भी कह सकते हैं कि मनुष्य का शरीर एक सरोवर के समान है, उसमें परम-ज्योति स्वरूप आत्मा, जो निर्गुण एवं निराकार है, एक अनुपम कमल के पुष्प के समान विद्यमान है। कमल पर जल का कोई प्रभाव नहीं होता और इसी प्रकार शरीर के धर्मों का आत्मा पर प्रभाव नहीं होता।

उपनिषदों में भी आत्मा को ज्योति स्वरूप कहा गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है—'अज्ञायं पुरुषः स्वयं ज्योतिः' अर्थात् यह पुरुष या आत्मा ज्योति है।

नाथ-पंथ में भी आत्मा को ज्योति स्वरूप कहा है। गोरखनाथ का कथन है—

"अलष विनाणीं दोइ दीपक रचिले तीन भवन इक जोति।"

अर्थात् परमात्मा ने दो दीपकों का (व्यक्त एवं अव्यक्त) निर्माण किया जिनकी एक ज्योति से तीनों लोक प्रकाशित हो रहे हैं।

---

१. पानपबानी—२०.१७-१८

२. पानपबोध—६.११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ने ज्योति-स्वरूप आत्मा का वर्णन उपनिषद् आदि के अनुकूल किया है।

वाणी-रूप आत्मा

प्राणी के जीवित होने एवं स्वस्थ रहने का प्रमाण उसकी वाणी भी है। वाणी के प्रयोग से ही हम अन्तरतम के गूढ़ से गूढ़ भावों को प्रकट करके अपना आशय दूसरे पर व्यक्त करते हैं।

पानप को इसका आश्चर्य है कि भाँति-भाँति से वाणी स्वरूप जो व्यक्त हो रहा था, वह कहाँ चला जाता है, यह रहस्य उनके कोई भी नहीं कहता। तभी तो पानप बोल उठे—

तीन गुनन की देह बसत है, हर को कैसे पावै।
तीनों त्याग तके चौथे को, तब हर दरस आवै॥[1]

पवन-रूप आत्मा

प्राणी के जीवित रहने का एक लक्षण उसके श्वास-प्रश्वास का परिचालन है। किसी की मृत्यु हो जाने पर उसका श्वास-प्रश्वास चलना बन्द हो जाता है और यह उसके मृत होने की सूचना होती है।

यह श्वास-प्रश्वास वायु द्वारा संचालित होते हैं। यही पवन जब शरीर से विलग हो जाती है, तभी श्वास-प्रश्वास क्रिया स्थगित हो जाती है। पानप ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

मरने वाला मरत है और देखन वाला देखै
बिनसि जाइ कागद की पुड़िया, जब लग पवन तबै लग उड़िया॥[2]

यहाँ आत्मा को पवन रूप कहा गया है।

शब्द-रूप आत्मा

शब्द की उत्पत्ति में अन्दर और बाहर वायु ही निमित्त कारण है। हृदयाकाश में ब्रह्म शब्द-रूप में प्रथम अभिव्यक्त होते हैं। शब्द आरम्भ में तो अव्यक्त रहता है पश्चात् नाना वर्णादि के माध्यम से माया, स्वर, वर्ण-रूप में स्थूल भाव से ब्रह्मात्मक वही सूक्ष्म शब्द प्रकाशित होता है।

पानप के अनुसार शब्द हमारे सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। वह अपनी अभिव्यक्ति द्वारा प्रकट होकर हमारे भीतर के भाव, विचारों को व्यक्त करता है। शब्द स्वतः ही यह कार्य करता है, वह समर्थ है। वह हमारे शरीर में तथा ब्रह्माण्ड में परिपूर्ण है। पानप का कथन है कि कोई भी पदार्थ अथवा वस्तु शब्द रहित नहीं है।[3]

---

१. पानपबोध-शब्दी—१७·६
२. पानपबानी—१७·१६
३. ,, ३·६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन-रूप आत्मा

तैत्तिरीयोपनिषद् में मन को ब्रह्म तथा आत्मा बताया गया है—'मन से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, मन से ही जीवित रहते हैं और इस लोक से प्रयास करते हुए अन्त में मन में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।''

यहाँ मन को मूल तत्त्व आत्मा एवं ब्रह्म ही कहा गया है। उसी से विश्व की उत्पत्ति, गति एवं लय का उल्लेख है।

पानप ने आत्मा को मन रूप कहा है। उपनिषद् की भाँति पानप भी मन को सब कुछ बताते हैं। मन ही कोई वस्तु देता है, मन ही उस वस्तु का पाता है, बिना मन के कुछ भी नहीं होता। मन ही से यह समस्त सृष्टि आकाश आदि हैं।[१]

प्रकाश-रूप आत्मा

उपनिषदों में आत्मा को प्रकाशमय कहा गया है। कठोपनिषद् का उल्लेख है—'स्व प्रकाशित आत्मा के समीप सूर्य नहीं चमकता, उसके तेज के सामने चन्द्रमा, तारे तथा विद्युच्छटाएँ लुप्त हो जाती हैं। अग्नि भी प्रज्वलित नहीं होती, उस आत्मा के प्रकाशत्व को पाकर ही सब प्रकाशित होते हैं। वह प्रकाश-रूप आत्मा सबको प्रकाशित करता है।'

पानप ने भी आत्मा को प्रकाश-रूप कहा है। उनका विचार है कि बिना आत्मा के चैतन्य के अथवा प्रकाश के अन्य पदार्थ अपने-अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकते। पानप का मत है कि लोग व्यर्थ ही झूठ वाद-विवाद करते हैं। अग्नि से जलाया गया बताते हैं और कहते हैं कि जल प्यास को मिटाता है। भोजन से भूख को मिटा देने की बात कहते हैं। यदि ये पदार्थ सब कार्य करने में समर्थ होते तो फिर दुनिया में कोई भी क्षुधित और तृषित या दुःखी रहता ही नहीं। यह सब उस ब्रह्म का ही प्रताप है, प्रकाश है जिसके द्वारा यह सब सम्भव होता है पानप का कहना है कि यह प्रकाशरूपी आत्मा ब्रह्मरन्ध्र में वृत्तियों को केन्द्रित करने पर देखी भी जा सकती है।[२]

आनन्द-स्वरूप आत्मा

पानप ने आत्मा को आनन्दस्वरूप व तैत्तिरीयोपनिषद् में भी आत्मा को आनन्द-स्वरूप बताया गया है—'आनन्द ही ब्रह्म एवं आत्मा है, आनन्द से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्द से ही जीते हैं और आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।''[३]

उपनिषद् के अनुकूल पानप ने आत्मा को आनन्द का मूल कहा है :

"आनन्दमूल सदा पुरसोतम।"[४]

---

१. पानपप्रबोध—११·७
२. पानपबानी—१७. ३, ४-७
३. तैत्ति० ३/६
४. पानपबानी—६. १७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार पानप ने आत्म-निरूपण कई प्रकार से किया है। पानप के अनुसार आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। आत्मा नित्य, मुक्त, शुद्ध, बुद्ध, अनन्त, असीम, निर्गुण, निराकार, निर्विकार, अजर, अमर, अविनाशी, चैतन्य एवं आनन्द-स्वरूप है।[१]

आत्मा का व्यक्त स्वरूप

पिछले पृष्ठों में आत्मा के स्वरूप-लक्षणों का वर्णन किया गया है। यहाँ आत्मा के तटस्थ-लक्षण अर्थात् उसकी व्यावहारिक प्रतीति पर विचार करना है।

आत्मा की व्यावहारिक प्रतीति अथवा इसके व्यावहारिक स्वरूप को शांकर वेदान्त में जीवात्मा अथवा जीव कहा जाता है। जब अन्तःकरण आत्मा को सीमित कर देता है तो इस चैतन्य का अस्तित्व-विचार द्वारा स्थापित होता है और दूसरी ओर इस व्यावहारिक जगत् के छोर में हमें जीव की प्रतीति होती है। अतः कहीं तथा किसी कारण से इनका संयोग होता है।

जिस प्रकार एक ही आकाश भिन्न-भिन्न घटों में अथवा भिन्न-भिन्न कक्षों (मठों) में घटाकाश और मठाकाश आदि का रूप धारण करता है, उसी प्रकार एक ही शुद्ध, चैतन्य, ब्रह्म अथवा आत्मा भिन्न-भिन्न अन्तःकरणों में सीमित होने के कारण भिन्न-भिन्न जीवों के रूप में दिखाई देता है किन्तु यथार्थ में एक ही रहता है, और जिस प्रकार घड़े के फूट जाने पर आकाश का एकत्व स्पष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अन्तःकरण रूपी अविद्या के निकल जाने पर आत्मा भी नित्य मुक्त है, अपने स्वरूप में स्थित पाया जाता है।

आत्मा की व्यावहारिक प्रतीति को पानप ने जीव के नाम से पुकारा। आत्मा अपने स्वरूप-लक्षण के अनुसार नित्य, मुक्त, शुद्ध, चैतन्य, अजर, अमर है, परन्तु माया के कारण भ्रम से अपने का कर्त्ता, भर्त्ता, शरीरी समझ लेता है और जीव कहलाता है, कर्म-फल का भोक्ता बनकर जन्म लेता है एवं मृत्यु को प्राप्त होता है। पानप ने इसे यों कहा है—

"जग भूला माया के धोके, जाता जीव मुक्ति को रोके ।।[२]

जीव से अत्यन्त सूक्ष्माति सूक्ष्म तत्त्व आत्मा अजन्मा है, अमर है। जीव ही जन्म-मरण धारण करता है।

मायोपाधित आत्मा जीव है। आत्मा तो नित्य, मुक्त, शुद्ध है। उसे मुक्ति की आवश्यकता नहीं होती। मोक्ष के लिए जीव ही प्रयत्न करता है।

आत्मा के दो स्वरूप

आत्मा के पारमार्थिक एवं व्यावहारिक दो स्वरूपों का उल्लेख किया जा चुका है। एक सत्य, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, मुक्त-स्वरूप है, और दूसरा स्वरूप जो जीवात्मा, जीव कहलाता है और मायोपाधिक होकर संसार में जन्म लेता और मरता है।

---

१. पानपबानी—१५. ११-१३
२. पानपबानी-ज्ञानसुषमनी—२०. २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यथार्थ में आत्मा तो सदा मुक्त ही है। उसे मोक्ष की अपेक्षा नहीं है, किन्तु अविद्या या माया के कारण जब साक्षी का तादात्म्य अन्तःकरण से हो जाता है, तब जीव को सुख-दुःख की प्रतीतियों से छुटकारा पाने की आवश्यकता होती है। वह अपने स्वरूप को जानना चाहता है अथवा अज्ञान तथा संसार के झंझटों से निवृत्त होना चाहता है।

आत्मा के इन दो स्वरूपों का उल्लेख ऋग्वेद के अतिरिक्त कठोपनिषद् में भी मिलता है; जैसे—दर्पण में सामने आयी हुई वस्तु दीखती है वैसे ही शुद्ध अन्तःकरण में ब्रह्म के दर्शन होते हैं। जैसे स्वप्न में वस्तु अस्पष्ट दीख पड़ती है, उसी प्रकार पितृलोक में परमेश्वर दीख पड़ता है और जैसे जल में रूप की झलक पड़ती है, वैसे ही गन्धर्व-लोक में प्रभु-दर्शन होता है तथा ब्रह्म-लोक में तो छाया और धूप की भाँति जीव और आत्मा दोनों का स्वरूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

पानप ने भी शरीरस्थ आत्मा के दो स्वरूप माने हैं।[1] इन दो स्वरूपों को हम ज्ञाता या ज्ञेय, द्रष्टा या दृश्य के नाम से अभिहित कर सकते हैं। इन्हें साधक तथा साध्य भी कहा जा सकता है।

उपनिषद् का छाया के समान जो तत्त्व है वही भोक्ता जीव है और आतप के समान जो तत्त्व है, वही शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव आत्मा है। पानप की 'सुरत', 'निरत' से भी ऐसा ही भाव ध्वनित होता है।[2]

पानप ने यत्र-तत्र 'सुरत-निरत' का प्रयोग किया है। यहाँ निरति आत्मा अपने शुद्ध-मुक्त स्वरूप में है। सुरति जीवात्मा के रूप में जो अपने शुद्ध-स्वरूप की जानकारी के लिए प्रयत्नशील है। साधना की पराकाष्ठा पर पहुँच कर जीवात्मा और आत्मा का तादात्म्य अर्थात् अपने निज स्वरूप में अवस्थान हो जाता है और तब कल्याण एवं आनन्द की प्राप्ति होती है।

पानप ने अनेक स्थलों पर अपने आप ही अपने स्वरूप को पहचानने की बात कही है। कभी वे कहते हैं :

कोई अकल को लगावै, पूर्ण तत्त सोई पावै,
अनुभव पद पाय-पाय, अनुभव पद गावै है।
कहो जन पानपदास, कहिए न काहू सूं,
जिसके गरज पड़ेगी, सो आप ही चल आवै है ॥[3]

उक्त 'अनुभव पद' के पाने का अभिप्राय है, अपने नित्य, शुद्ध-बुद्ध स्वरूप के ज्ञान ही से अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाना।

---

१. सुषमवेद—१०. १२-१३
२. ,, —१५. २२
३. सुषमवेद-सबद—५'३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि पानप ने आत्मा के दोनों स्वरूपों का वर्णन किया है। जीवात्मा की उन्होंने कई कोटियों का वर्णन किया है।

माया-भ्रमित जीवों की कोटियाँ

अज्ञानी जीव

माया से आच्छन्न जीव अपने नित्य, मुक्त शुद्ध स्वरूप को भूल जाता है और वह अपने शरीर को ही सब कुछ समझ कर मोह, माया, धन-लिप्सा तृष्णा आदि के वश में हो जाता है। नाम रूपात्मक जगत् की ओर उन्मुख रहता है और अनेक विकारों का भण्डार बन जाता है। अपने कृत्यों का फल भोगने के लिए अनेक बार भाँति-भाँति की योनियों में जन्म लेता है तथा मृत्यु को प्राप्त होता है।

पानप ने ऐसे जीवों को अज्ञानी जीव कहा है। अज्ञानी मनुष्य को माया की मनमोहक शक्ति भुला-भुला कर अपने पाश में जकड़ती है। संसार के विषय उसे अपनी जकड़ में लपेटे रहते हैं।[1] पानप कहते हैं कि ऐसे अज्ञानी मनुष्य को यदि उद्बुद्ध करने की चेष्टा की जाती है, तो वह निष्फल ही जाती है। वह समझ-बूझ कर भी अबुद्धि परक कार्यों में ही व्यस्त रहता है।[2]

संसार के अधिक जीव अज्ञानी कोटि के ही हैं। माया रूपी दीपक में ये नर-पतंग अज्ञान के कारण फँसते हैं। कोई भाग्यवान् बिरला ही होता है, जिसे सद्गुरु की कृपा से ज्ञान होता है और वह माया के चंगुल से छुटकारा पा जाता है।[3]

जिज्ञासु जीव

कोई एकाध जीव अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के प्रभाव से माया के इस विषैले बन्धन को त्यागने के लिए तत्पर होता है। सद्गुरु के उपदेश एवं साधु-संगति से उसमें अपने निज-स्वरूप को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा वह अपने नित्य के कार्यक्रम में पवित्रता को अपनाता है।

ऐसे जिज्ञासु में विवेक जागरण हो जाता है। वह विश्व के नामरूप के परे एक अनुपम तत्त्व की ओर उन्मुख होता है। उसकी बहिर्मुखी वृत्ति अन्तर्मुखी होने लगती है।

ज्ञान की आभा से उसका मन एवं बुद्धि निश्चल होने लगती है। संसार के प्रति वैराग्य भाव उसमें उद्भूत होता है। साधना के द्वारा उसकी बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश होता है और वह अपने स्वरूप का चिन्तन करता है।[4]

---

१. पानपबानी—१६·४, ५
२. पानपबोध—१७·१८
३. ,, १५·७
४. ,, ६·११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधक-जीव

तत्त्वान्वेषण के पथ पर अग्रसर होने वाले मनुष्यों को साधक की संज्ञा दी जाती है। साधक चरम लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु कठोर से कठोर साधना में रत होता है।

साधक योग, ज्ञान-भक्ति एवं कर्म आदि साधना मार्गों की साधना द्वारा नामरूपात्मक संसार के मिथ्यात्व से परिचित हो जाता है। अपने दुर्गुणों का परित्याग करता है एवं सभी प्रकार के शुभ गुणों को अंगीकार करता है।

साधना की परिपूर्ण अवस्था के उपरान्त उसमें समदर्शिता का प्रादुर्भाव हो जाता है। उसके मन की सभी शंकाएँ जाती रहती हैं, मन एवं बुद्धि निर्मल हो जाते हैं। वह विश्व के सभी प्राणियों को समभाव से देखता है तथा उनके प्रति सद्व्यवहार करता है। वह सब वाद-विवाद में व्यर्थ समय न खोकर सभी प्राणियों को समान भाव से देखता है।[1] ऐसे समदर्शी साधक में विकारों का लेशमात्र भी चिह्न नहीं रह जाता और कालान्तर में वह निष्काम सन्त हो जाता है।[2]

पानप ने परम तपस्वी साधक को सन्त की संज्ञा प्रदान की है। यह सन्त निर्वैर, निष्काम, निर्विषय होता है और हरि का भक्त होता है।[3]

जीवन्मुक्त

विभिन्न प्रकार की साधना के द्वारा साधक का चित्त एकाग्र हो जाता है। वह आत्म-स्थित हो जाता है और सभी बाह्य विषयों से उसकी साधक-वृत्ति हटकर अन्तर्मुखी हो जाती है। उसका मन इतना अन्तर्मुखी एवं ध्यानावस्थित हो जाता है कि उसे अपनी देह, अपने प्राण आदि की विशेष चिन्ता नहीं रह जाती। नाम-रूपात्मक पदार्थों के प्रति उसे आसक्ति नहीं रहती। जीवन की अन्य क्रियाएँ स्वतः यन्त्रवत् चलती रहती हैं, उनके लिए उसे किसी विशिष्ट प्रकार का प्रयास करने की अपेक्षा नहीं रहती।

पानप के अनुसार जीवन्मुक्त साधक की दशा पागल एवं मूर्च्छित मनुष्य जैसी हो जाती है। वह निज-स्वरूप में निमग्न रहता है। उसे देह की सुध-बुध नहीं रहती और न किसी प्रकार की इच्छा या कामना ही करता है।[4]

मुक्त

साधक अपने चरम लक्ष्य पर पहुँच जाता है। अपने नित्य मुक्त, शुद्ध-बुद्ध

---

१. पानपबानी—१७·६, ९
२. ,, १७·१९, २१
३. ,, १७·२२, २३
४. पानपबोध—२१·३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वरूप को वह समझ लेता है। शुद्ध-बुद्ध स्वभाव में वह अवस्थित हो जाता है। इसे ही पानप ने मोक्ष कहा है। वह नित्य-मुक्त स्वभाव में ही आनन्द का अनुभव करता है। पानप ने ऐसे मुक्त स्वभाव वाले को ब्रह्म-समान कहा है।

पानप कहते हैं—

> मुक्ता चुगे मौनी हंस, पूर्ण ब्रह्म को निज अंस।
> हंसा हंस दोय मिलाय, ले जन मुक्ति को फल खाय ॥[1]

उक्त अवस्था पर पहुँच कर साधक और साध्य का भेद-भाव मिट जाता है और अद्वैत-तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है। मुक्त की दशा सागर एवं बिन्दु के सदृश हो जाती है।[2]

इस प्रकार पानप ने माया द्वारा भ्रमित जीव की कोटियाँ बतायीं और मनुष्य की एक कोटि से दूसरी कोटि में साधना द्वारा परिणति दिखाकर यह बताया कि मनुष्य का नैसर्गिक शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव उसे प्राप्त हो जाता है। मनुष्य का माया से छुटकारा पाकर अपने सत्य-स्वरूप को पहचानना ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य है।

पानप द्वारा आत्म-वर्णन की विशेषता

पानप का आत्म-वर्णन स्वानुभूति परक है। पानप के अनुसार आत्म-तत्त्व को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं, वह स्वतः सिद्ध है। पानप जल-थल, गगन-पृथ्वी, बाहर-भीतर सर्वत्र आत्मा को व्याप्त मानते हैं।[3]

आत्मा शरीर नहीं है, न वह विश्व के नामरूपात्मक पदार्थों में से कुछ है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है, जो सभी पदार्थों में व्याप्त है।

आत्मा चैतन्य, पूर्ण, असीम अनन्त, स्वयं सिद्ध और स्वयं प्रकाशवान होने के कारण आनन्द स्वरूप है। आत्मा अकर्ता, अभोक्ता, अजन्मा है एवं सुख-दुःख के परे है। सुख-दुःख की समस्त प्रतीतियाँ अन्तःकरण शरीर, इन्द्रियाँ आदि उपाधियों के सम्बन्धों के कारण हैं, वे आत्मा के निज स्वरूप में नहीं है।

आत्मा, निर्गुण, निर्विकार, अचिन्त्य है। यह शुद्ध-बुद्ध चैतन्य-स्वरूप है। सत्य, अनन्त और ज्ञान-स्वरूप होने के कारण जो भी आत्मा मनुष्य में है, वही सभी भूतों में भी है, अतएव आत्मा और परमात्मा एक ही है। एक विषय से दूसरे विषय का भेद, ज्ञाता-ज्ञेय का भेद तथा ब्रह्म और ईश्वर का भेद, ये सब माया की सृष्टि है।

---

१. पानपबोध—१६·९
२. ,, १६·१७
३. पानपबानी—१७·६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ने अनेकत्व को मिथ्या कहा और एकत्व अथवा अद्वैत को सत्य-तत्त्व बताया।[1] उपनिषद्, गीता तथा शांकर अद्वैत में जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादन का पानप ने पूर्णतः समर्थन किया है। आत्मा और ब्रह्म वस्तुतः एक है। वह स्वतः प्रकाश, चैतन्य-स्वरूप है। अनन्त आत्मा सीमित जीवात्मा की तरह भासित होता है, उसका कारण है अविद्याजनित शरीर के साथ सम्बन्ध।

अनादि अविद्या के कारण आत्मा भ्रमवश अपने को स्थूल या सूक्ष्म शरीरी समझ लेता है। यही बन्धन है। इस स्थिति में आत्मा अपना यथार्थ स्वरूप (ब्रह्मत्व) भूल जाता है और स्वल्प, क्षुद्र, दुःखी जीव के सदृश संसार के क्षणभंगुर विषयों के पीछे दौड़ने लगता है। आत्मा के इस व्यावहारिक स्वरूप को जीवात्मा या जीव कहते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम जिसे व्यक्तित्व कहते हैं, वही जीव है। जीव में एक तो आत्मा साक्षी के रूप में विद्यमान रहता है और दूसरे कारण-शरीर, तीसरे सूक्ष्म-शरीर और चौथे स्थूल शरीर होते हैं। यह जीव ही कर्त्ता तथा सुख-दुःख का भोक्ता होता है। जिस प्रकार एक ही आकाश भिन्न-भिन्न घड़ों अथवा कमरों आदि में घटाकाश, मठाकाश आदि का रूप धारण करता है, इसी प्रकार एक ही शुद्ध चैतन्य आत्मा भिन्न-भिन्न अन्तकरणों में उपाधियों से सीमित होने पर भिन्न-भिन्न जीवों के रूप में दिखाई देता है किन्तु यथार्थ में एक ही रहता है और जिस प्रकार घड़ों के फूट जाने पर आकाश का एकत्व स्पष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अन्तःकरण रूपी अविद्या के निकल जाने पर आत्मा अपने नित्य मुक्त-स्वरूप में स्थित पाया जाता है।

प्रत्येक जीव के अन्तःकरण, प्रतीतियाँ, अनुभव, संस्कार, कर्म तथा कर्म-फल आदि पृथक्-पृथक् हुआ करते हैं। अतः जीव भी अनेक पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं।

न्याय, वैशेषिक, सांख्य आदि मतों में जिन आत्माओं को पृथक् अथवा अनेक माना गया है, वे आत्माएँ यही जीव हैं, जो अन्तःकरण में शुद्ध चैतन्य के प्रतिबिम्ब से भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं।

पानप के अनुसार यही जीव सुख-दुःख की प्रतीतियों से छुटकारा पाने के लिए तथा अपने स्वरूप को जानने के लिए प्रयत्न करता हुआ माया अथवा अविद्या अथवा भ्रम का उच्छेद कर पाता है और अपने शुद्ध-बुद्ध, नित्य, मुक्त स्वभाव को पहचान कर आनन्दित होता है।[2]

---

१. पानपबानी—१५·१४
२. ,, १७·२१-२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया का उच्छेद किए बिना अनेकत्व की प्रतीति का नाश नहीं होता और बिना अनेकत्व के नाश के एकत्व एवं सत्य-तत्त्व की उपलब्धि नहीं हो सकती और न जीवन का परम लक्ष्य ही प्राप्त होता है।

माया का आवरण अनादि है। माया-तत्त्व के सम्बन्ध में विचार करना अनिवार्य होगा, इसका विचार आगे किया जाएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया

मायावाद की परम्परा, पानप का माया-वर्णन, माया-तत्त्व, माया का स्वरूप और स्वभाव, माया का स्थान और विस्तार, माया और मायापति, माया के भेद ।

माया सूं सब जग बंधा, और सन्तों माया बाँधी ।
माया ने सब जग खाया, सन्तों राखी सत की साँधी ।।
माया का आदर करे, हरि को दे धक्के ।
पानप कहै सुनो भाई साधो, राम कौन विध रक्खे ।।
बैठा राम तमासा देखे, जग कूं माया नाच नचावे ।
और राम की दृष्टि न फेरे, यम फंदे को धावे ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५ | माया

मायावाद की परम्परा

मायावाद भारतीय दर्शन में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। माया का उल्लेख वेदों में भी पाया जाता है। ऋग्वेद में उल्लेख है—"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते[१]" अर्थात् इन्द्र अपनी शक्ति से अनेक प्रकार के रूप धारण कर लेता है। वेदों में रूप बदलने की क्रिया को माया कहा है। उपनिषदों में नाम रूप के अर्थ में 'माया' शब्द का प्रयोग हुआ है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया का उपयुक्त वर्णन है, जो इस प्रकार है—"माया तो प्रकृति को समझना चाहिए और महेश्वर को मायापति। उसी के अंगभूत कारण कार्य समुदाय से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है। यहीं पर लिखा है—"सम्पूर्ण जगत् को माया का अधिपति परमेश्वर पंच महाभूतादि से रचता है तथा दूसरा जीवात्मा उस प्रपंच में माया के द्वारा भली-भाँति बँधा हुआ है।"[२] इस प्रकार उपनिषदों में नामरूपात्मक जगत् को, अविद्या को, भ्रम को तथा प्रकृति को 'माया' कहा गया है।

गीता में माया को 'कृष्ण की शक्ति' कहा गया है, गीता के अनुसार माया को अविद्या, भ्रम तथा प्रकृति रूप में कहा गया है। बौद्ध-दर्शन में स्वप्नवाद तथा क्षणभगुरवाद माया से प्रभावित हैं। न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनों में माया का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु सांख्य दर्शन में अज्ञान या अविवेक के द्वारा आत्मा

---

१. ऋग्वेद ६/४७/१८
२. श्वेता० ४/१०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बुद्धि या मन से अपना पार्थक्य नहीं समझता और उन्हें अपना ही अंग समझने लगता है। दूसरे शब्दों में विशिष्ट स्वभाव युक्त विशिष्ट नाम रूपधारी व्यक्ति बन जाता है। आत्मा और अनात्म विषय में भेद के ज्ञान का अभाव अर्थात् अविवेक ही समस्त दुःखों का मूल कारण माना गया है। सांख्य की प्रकृति, अविद्या, अविवेक माया के पर्याय हैं। शास्त्रीय ढंग से माया का विवेचन आचार्य शंकर ने किया। कालान्तर में मायावाद मध्यकालीन दार्शनिकों के लिए एक आवश्यक तत्त्व हो गया।

चेतन स्वयं प्रकाश सत्ता में नामरूपात्मक जड़ पदार्थों का अन्तर्भाव अधिष्ठान और अध्यस्त की दृष्टि से माना जाता है। अधिष्ठान की दृष्टि से किया गया अन्तर्भाव ब्रह्माद्वैत कहलाता है। अध्यस्त की दृष्टि से किया गया अन्तर्भाव मायावाद कहलाता है। आचार्य शंकर ने अज्ञान, भ्रम और नामरूपात्मक जगत् को माया कहा है। विद्यारण्य ने अविद्या तथा माया में भेद माना है। ये रजस् और तमस् गुणों की मलिनता से रहित अतएव विशुद्ध सत्व-प्रधान-प्रकृति को 'माया' कहते हैं और मलिन-सत्व-प्रधान प्रकृति को अविद्या कहते हैं।[1]

विशिष्टाद्वैत दर्शन में अभेद ज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान शब्दों का प्रयोग। अभेदज्ञान से जीवन का बन्धन दृढ़ होता है। माया के इस बन्धन को इस मत में अनाधि और पारमार्थिक कहा है।

माया का अर्थ है ईश्वर की विचित्रार्थ-सर्गकरी (अद्भुत विषयों की सृष्टि करने वाली) शक्ति, द्वैताद्वैत, द्वैत तथा शुद्धाद्वैत आदि सभी दर्शनों ने मायावाद को स्वीकार किया है। इसे ब्रह्म की शक्ति बताया है।

मुस्लिम दर्शन में माया के स्थान पर शैतान का वर्णन पाया जाता है। शैतान साधक को साधना-पथ से विचलित करके उसे दुःख में फँसा देता है।

नाथ-पंथ में भी माया की स्थिति की चर्चा है। इस पंथ के प्रमुख प्रवक्ता गोरखनाथ ने माया का उच्छेद करने की बात कही है, क्योंकि माया विषैली नागिन है, इसने ब्रह्मा, विष्णु तो क्या देवों के देव महादेव को भी छल लिया। माया के उच्छेद से ही चरम लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि मायावाद की परम्परा प्राचीनकाल में वेदों से प्रारम्भ हुई और सभी भारतीय दार्शनिकों पर उसका प्रभाव पड़ा। विचारकों ने अपने विचारों के अनुकूल उसका वर्णन किया। माया, अविद्या, भ्रम, अज्ञान, मिथ्याज्ञान और नामरूपात्मक जगत् आदि शब्दों का प्रयोग माया के अर्थ में होता रहता है।

---

१. पंचदशी—१-१६ (भारतीय दर्शन पृ० ३५६ पर उद्धृत)
२. गोरखबानी पृ० १३६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पानप ने भी अपनी बानियों में माया का वर्णन किया है। माया से सम्बद्ध पानप के सिद्धान्तों का प्रतिपादन अगले पृष्ठों में किया जाएगा।

पानप का माया-वर्णन

माया-तत्त्व

उपनिषदों में ब्रह्म की सर्जन-सृष्टि को तथा सृष्टि-प्रपंच को माया कहा गया है। माया को प्रकृति बताया है और जगत् को उसकी रचना।[१] उपनिषदों में अविद्या शब्द का भी प्रयोग है। यहाँ विनाश-शील जड़-वर्ग को अविद्या नाम से कहा गया है और अविनाशी वर्ग 'विद्या' नाम से कहा गया है। सृष्टि-प्रपंच को जिसमें फँस कर जीव को सत्य-ज्ञान का आभास कठिन हो जाता है, माया-तत्त्व कहा है, दूसरे शब्दों में अज्ञान को माया कहा गया है। सत्व, रस और तम इन तीन गुणात्मक भावों से अर्थात् पदार्थों से मोहित होकर यह सारा संसार इनके परे निर्गुण अव्यय से परिचित नहीं हो पाता।

पानप माया को भ्रम रूप स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि हमारी बुद्धि में भ्रम उत्पन्न होकर उसे विकार-युक्त कर देता है, जिससे सत्य वस्तु के स्थान पर मिथ्या पदार्थ की हमें प्रतीति होती है और हम उस भुलावे में पड़कर अपना ज्ञान भूल जाते हैं।[२] जैसे अन्धकारमय रात्रि में रज्जु को देखकर उसे भ्रम से सर्प समझ लिया जाता है और इस मिथ्या ज्ञान से मनुष्य सर्प के द्वारा डँसे जाने के भय से भयभीत हो जाता है जबकि यथार्थ में वहाँ साँप जैसी वस्तु होती ही नहीं।[3]

पानप ने माया-बुद्धि में भ्रम को माया कहा है—

"जग भूला माया के धोके, जाता जीव मुक्ति को रोके।"[४]

इस भ्रम ही के कारण मनुष्य को नामरूपात्मक जगत्, उसका अपना शरीर, इन्द्रियाँ आदि सत्य दिखाई पड़ते हैं और वह अपने अज्ञान के कारण इन्हें ही सत्य समझ कर इनके मोह में उलझ जाता है और मूल-तत्त्व को भूल जाता है। इसी तथ्य को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि शुद्ध चैतन्य सच्चिदानन्द ब्रह्म सर्वशक्तिमती माया के प्रभाव से अपने को उपाधियुक्त कर नाना जीव-विषयों से युक्त होकर जगत् के रूप से अभिव्यक्त होते हैं। इसे सामूहिक माया कहा जा सका है और कल्पना कर सकते हैं कि जीव अविद्या से ग्रस्त होकर एक ब्रह्म के स्थान में नाना विषय और जीव देखता है। यह व्यक्तिगत माया अथवा अविद्या है। दोनों बातें एक ही हैं, भ्रम मात्र हैं। पानप द्वारा प्रयुक्त भ्रम तो 'माया' है और कर्म 'अविद्या' है।

---

१. श्वेता०—४/६, १०
२. पानपबोध—२०·५
३. पानपबोध—१८·१६
४. पानपबानी—२०·३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया का स्वरूप और स्वभाव

माया को न सत् ही कहा जा सकता, न असत् और न उभय रूप ही। माया का क्षेत्र जगत् है। जगत् के विषय जो माया-युक्त हैं, परिवर्तनशील होने के कारण सत् नहीं है, किन्तु उन्हें बन्ध्या-पुत्र के समान सर्वथा असत् या तुच्छ भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उनमें भी सत्ता है, जो उनके रूप में आभासित हो रही है। इस कारण वे अनिर्वचनीय हैं। यह समस्त विषय संसार और उसकी जननी माया या अविद्या भी सत्-असत् से विलक्षण, अनिर्वचनीय है।

पानप ने माया को अनिर्वचनीय बताया है।[1] पानप ने माया को काल्पनिक और सारहीन भी कहा है। माया का असत् रूप शशक के सींग की भाँति कुछ भी नहीं होता।[2] आँगन में बेल है और फल उसका आकाश में है, तो उस फल को कौन तोड़ सकता है। वह बेकार ही है। इसी प्रकार माया तथा उसके द्वारा जगत् असत्य है। उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है।[3]

पानप ने माया को स्वभाव तथा धर्म के आधार पर सांख्य की प्रकृति से मिलती-जुलती कहा है। माया प्रसवधर्मिणी। यह सकल विश्व की रचयित्री है। स्वयं अव्यक्त है किन्तु व्यक्त की जननी है।[4]

पानप के अनुसार पाँच तत्त्वों के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति हो गई तथा इसके साथ-साथ पाप-पुण्य, अभिमान, अहंकार, मोह, सम्पत्ति, विपत्ति आदि के रूप में जीव के लिए बन्धन भी तैयार हो गये।

पानप ने माया को प्रसवधर्मिणी तो कहा ही है, उसे संहार अथवा विलय-धर्मिणी भी कहा है। उनके अनुसार सृष्टि का लय भी माया के द्वारा होता है। उत्पत्ति के उलटे क्रम से विलय होता है, अर्थात् गुणों के संयोग से सृष्टि होती है और उनके वियोग से विलय होता है। इन सब क्रियाओं की सम्पादिका माया ही है।[5]

माया का प्रमुख स्वभाव है चंचलता तथा परिवर्तनशीलता। यह क्षण-प्रतिक्षण स्वरूप बदलती ही रहती है। वायु के समान सदा-सर्वदा अविरल धारा प्रवाह में प्रवाहित रहती है। माया को पानप ने दुःख-रूपा, बन्धन-रूपा तथा अज्ञान-रूपा भी कहा है। माया के आकर्षण में उलझ कर जीव जन्म-मरण के इन्द्रजाल में

---

१. पानपबोध—२०·५
२. ,, —२०·१८
३. ,, —२०, २१, २२
४. ,, —२०, २७, २८
५. ,, —२०, ८, ९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फँसकर अनेक दुःख संताप उठाता है। माया के कारण मनुष्य अपने शुद्ध स्वभाव को भूल जाता है और अनेक बन्धनों में बँध जाता है। माया ही के कारण जीव भ्रम से शरीर एवं इन्द्रियों को ही अपना स्वरूप मान लेता है और इसी अज्ञान के कारण वह अपने को कर्ता-भोक्ता आदि समझकर दुःख उठाता है। पानप माया को त्रिविध ताप, दुःख और संताप का ऐसा वृक्ष कहते हैं जिसमें शीतल छाया का नाम नहीं और जिसके फल अत्यन्त खट्टे हैं और जिसका तन भयंकर ज्वाला है।[१]

पानप के अनुसार माया स्वभाव से व्यभिचारिणी है। यह अत्यन्त मोहक और आकर्षक है। प्रयत्न करने पर भी यह पीछा नहीं छोड़ती। कभी आदर और मान के रूप में उपस्थित होकर जीव को फँसाती है और कभी धन-सम्पदा के रूप में उपस्थित होकर अपने पाश में जकड़ लेती है। मनुष्य माया को आनन्द जानकर उसके लिए प्राणों तक का उत्सर्ग करता है। स्वर्ग एवं मोक्ष की सकाम-भावना से किया गया जप-तप भी माया के रूप हैं। माया ने सभी को जकड़ रखा है।[२]

माया के व्यभिचारी स्वभाव के सहायक हैं—कनक और कामिनी। इन दो में माया की मनमोहक जकड़ है। इन दो की पकड़ से बच निकलना महा कठिन है।[3]

माया दुराचारिणी है। मनुष्य के लिए इससे पीछा छुड़ाना दुस्साध्य है, क्योंकि यह संसार के छोटे से छोटे प्राणी चींटी तथा बड़े से बड़े जन्तु हाथी अर्थात् संसार के सभी नामरूप में व्याप्त है। विश्व का कोई नामरूपधारी इसकी चपेट से नहीं बच पाता। पानप ने इसे महती दुराचारिणी तो कहा ही है और कहा है कि इस माया के सम्मुख तो मनुष्य कुछ भी नहीं, इसने महान् से महान् योगी और साधुओं को भी नहीं छोड़ा। प्रभुभजन बिना इसका उच्छेद नहीं किया जा सकता।[४]

मायाकुटिल स्वभावा है। यह जीव-जन्तुओं एवं मनुष्यों में अपनी कुटिलता से भेद बुद्धि उत्पन्न कर देती है। पानप का कथन है कि यह एकत्व के स्थान पर अनेकत्व की स्थापना करती है। भेद बुद्धि के ही कारण संसार क्लेष, द्वेष, घृणा, मोह आदि की अग्नि में जलता रहता है।[५]

यह मेरा है, वह उसका है। वह मुझसे निम्न है। मुझे ही जीवित रहना

---

१. पानपवानी—१०·१२
२. ,, —१८·२०, २१
३. ,, —१७·५
४. पानपबोध—२०·६
५. ,, २०·८, ९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहिए, दूसरा क्यों मुझसे आगे चला जाए आदि कुटिल विचारों के कारण ही अनेकत्व की सृष्टि होती है ।[१]

माया पापिनी है । यह अनेक पापों को जन्म देती है । अपने पापी एवं मनमोहक स्वरूप से सभी को आकर्षित करती रहती है । सभी प्राणी इसके भुलावे में उलझे रहते हैं परन्तु इसका पूर्ण उपभोग कोई भी नहीं कर पाता है, वरन् इसकी चपेट में उलझने वाला अपना ही सर्वनाश कर लेता है । यह चंचला है । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती रहती है, कहीं भी स्थिर नहीं रहती । नित्य प्रति नए-नए जीवों को फँसाती है ।[२]

माया के स्वरूप तथा स्वभाव के कारण पानप ने माया को कई प्रकार के नाम दिए हैं । माया को डाइन कहा है । इसे डंकनी भी कहा है । माया सर्पणी है, यह सब कुछ करती है । यह तन की उजली और मन की मैली है, यह खांडे की धार है ।[३] इतना ही नहीं माया को नकटी और पिशाचिनी आदि नामों से भी सम्बोधित किया है ।

माया का स्थान और विस्तार

माया की कल्पना समष्टि रूप में भी की जाती है, और व्यष्टि रूप में भी । शुद्ध, अनन्त, सत्-चित्-आनन्द ब्रह्म सर्वशक्तिमती माया के प्रभाव से अपने को उपाधियुक्त कर नाना जीव विषयों से युक्त जगत् के रूप में अपने को प्रकट करते हैं। यह समष्टि रूप माया की कल्पना है । इस सामूहिक माया का स्थान जगत् के समस्त नामरूप हैं । सम्पूर्ण विश्व में, अखिल ब्रह्माण्ड में उसका विस्तार है । समस्त संसार में समष्टि रूप माया व्याप्त है ।

दूसरी कल्पना हम यह कर सकते हैं कि प्रत्येक जीव अविद्या से ग्रस्त होने के कारण एक ब्रह्म के स्थान में नाना विषय और जीव देखता है । यह व्यष्टि रूप माया या अविद्या है ।

पानप ने समष्टि रूप माया का वास एवं विस्तार सम्पूर्ण विश्व में माना है । व्यष्टिरूप माया भ्रम, अज्ञान, मिथ्याज्ञान, क्रोध, लोभ, वासना, मोह और आसक्ति आदि के रूप में व्यक्ति के मन-प्रदेश में निवास करती है और इसका विस्तार समस्त शरीर में होता है । पानप ने कहा कि माया मेरे मन में वास करती है और क्षण-क्षण मेरा ह्रास करती है ।[४]

---

१. पानपबोध—२०·२७
२. ,, २०·२५
३. ,, २०·११
४. पानपबानी—१७·५-८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन को यह माया सदैव विकारों में जकड़े रहती है। मन के साथ-साथ विद्यमान रहती है। इसके परिवार में विकार सम्मिलित हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ और तृष्णा आदि इसकी सन्तान हैं। इन पाँचों के द्वारा मन सदैव, विकारवान बना रहता है। एक विकार से दूसरे विकार की सर्जना होती रहती है और मन उन विकारों में उलझकर बन्धन में बँधता रहता है। आशा, तृष्णा, मान, सम्मान, अभिमान, कनक, कामिनी, धन-सम्पदा, और लिप्सा आदि एक से एक बढ़कर हैं। इन सभी विकारों से युक्त मन उलझ कर जीव को भाँति-भाँति के क्लेश और संताप से दग्ध करता है।[1]

माया और मायापति

माया अनिर्वचनीय तत्त्व होते हुए भी त्रिकाल-अबाधित नहीं है। तत्त्वज्ञान से इसका बाध हो जाता है और परमार्थ-तत्त्व अथवा अन्तिम अस्तित्त्व की ही सत्ता रह जाती है। ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है। माया और ब्रह्म का सम्बन्ध है।

उपनिषदों में ब्रह्म और माया का सम्बन्ध बताया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि मेरी यह गुणमयी और दिव्य माया दुस्तर है।[2] यहाँ भी ब्रह्माश्रित ही बताया है।

माया की दो शक्तियाँ हैं—आवरण और विक्षेप। आवरण शक्ति के कारण माया आत्मा के वास्तविक स्वरूप को ढक लेती है, और दूसरी शक्ति के आधार पर वह जगत् के पदार्थों की सृष्टि करती है। आवरण-शक्ति के कारण आत्म-तत्त्व के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। उस तत्त्व के स्थान पर उस वस्तु के सम्बन्ध में नाना प्रकार की उससे भिन्न वस्तुओं की विचित्र कल्पना की जाती है, जैसे अन्धकार में रज्जु को भ्रम से सर्प समझ लेते हैं। माया की इन दोनों शक्तियों से आच्छन्न चैतन्य में क्रिया का आरोप किया जाता है और सृष्टि की रचना समझी जाती है। मायावच्छिन्न चैतन्य जगत् का कारण है। माया का ब्रह्म पर कोई प्रभाव नहीं।

पानप ने माया को ब्रह्माश्रित माना है। उसे हर की माया कहा है। पानप ने माया को ब्रह्म की लीला की शक्ति माना है। वह उसे जादूगर का खेल कहते हैं।[3]

ब्रह्म एक, अद्वैत, निष्फल, आनन्दस्वरूप, उसके आदि अन्त नहीं अर्थात् ब्रह्म निर्गुण, निराकार, निर्विकार है। व्यावहारिकता के हेतु उसने जगत् की रचना की और स्वयं अपने आप ही उसकी भूल-भुलैया में छिप गया। पानप का आशय है कि

---

१. पानपवानी—१७·१८-२१
२. श्वेताश्वतरोपनिषद्—४/१०
३. पानपवानी—७·५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्गुण ब्रह्म से जगत् की रचना नहीं की जा सकती। जगत् की व्यावहारिक सत्ता है। माया की आवरण-शक्ति के कारण मनुष्य भ्रम से सत्य-तत्त्व ब्रह्म को नहीं समझ पाता और विक्षेप-शक्ति के कारण उसके स्थान पर अन्य वस्तु अर्थात् संसार के नाम रूप की कल्पना करता है और इस प्रकार मायावच्छिन्न चैतन्य जगत् के कर्तृत्व का आरोप करता है। यथार्थ में जगत् वस्तुतः पारमार्थिक सत्य नहीं है।

पानप ने कहा है कि संसार की व्यावहारिक सत्ता में ही सब आश्चर्य चकित हो गए और उसी को अन्ततम सत्य समझ उसी में उलझ गए और मूल-तत्त्व ब्रह्म को कोई भी नहीं देख पाया। तीन गुणों की माया-शक्ति से वह स्वयं ही छिप गया।[1]

जैसाकि पहले भी बताया है कि पानप ने माया को स्वतन्त्र नहीं बताया है। माया ब्रह्माश्रित है। वह ब्रह्म से ऐसे ही अभिन्न है, जैसे अग्नि से दाहकता और मन से संकल्प। ब्रह्म का माया से सीधा एवं स्पष्ट सम्बन्ध है। पानप हर की शरण में पहुँच गए, इसी से उन्होंने माया को त्याग दिया अर्थात् माया के स्वामी ने पानप पर कृपा की और माया का उन पर प्रभाव न हुआ। माया को कर्त्ता का खेल अर्थात् लीला भी कहा है।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों से यही स्पष्ट होता है कि माया ब्रह्माश्रित है। ब्रह्म-ज्ञान के सम्मुख माया ठहर भी नहीं सकती। वह जिस पर कृपा करते हैं, ऐसे साधक माया का त्याग कर सकने में समर्थ होते हैं। माया ब्रह्म की इच्छा-मात्र है, वे चाहें उसे छोड़ भी सकते हैं।

माया के भेद

माया एक है या अनेक? यह प्रश्न भी उठ सकता है। श्वेतश्वतरोपनिषद् में माया के लिए अजामेकां अर्थात् माया एक ही है जो अपने ही सदृश त्रिगुणमय बहुत-से भूत-सम्प्रदायों को रचने वाली है और स्वयं अजन्मा, अनादि है।[3] यहाँ माया को एक ही कहा गया है।

पानप ने तात्त्विक दृष्टि से माया को एक ही बताया है। व्यावहारिक दृष्टि से वे उसके तीन भेद बताते हैं—एक को वे मोटी माया कहते हैं और दूसरी को झीनी माया और तीसरी को विचारूपिणी माया अथवा सन्तों की दासी माया।[4]

पानप ने झीनी और मोटी माया को धरम और करम नाम भी दिया है। भ्रम और कर्म रूपी माया का लोग व्यवहार करते हैं। इन दोनों के कारण सबने अपना ज्ञान खो दिया है। ये दोनों संसार के लिए भुलावे के समान हैं।

---

१. पानपबानी—१७·११-१६
२. ,, १७·१९-२१
३. श्वेत०—४/५
४. पानपबानी—७·१३-१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(अ) झीनी माया भ्रम रूप माया

भ्रम से पानप का तात्पर्य मन के विकारों से है। मन के विकार : यथा— आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, आसक्ति, मद, मत्सर आदि व्यक्ति के मन में उत्पन्न होते हैं। ये मन में अनेक प्रकार से अज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान उत्पन्न कर मनुष्य को प्रबल बन्धनों में जकड़ देते हैं। मनुष्य इनके पाश में बँध जाता है और अपने शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव को भूल जाता है और नामरूपात्मक संसार में ही उलझ कर दुःख का भागीदार बनता है। जन्म-जन्मान्तर तक दुःख ज्वाला में जलता रहता है, परन्तु जो इन विकारों की असत्यता को समझ लेता है वह नामरूपात्मक संसार को मिथ्या एवं निस्सार जान कर इनसे विमुख हो जाता है तथा साधना के द्वारा ज्ञानार्जन करके इन पर विजय पाता है और अपने निज-स्वरूप की पहचान कर परमगति पाता है।[1]

मिथ्याज्ञान, अज्ञान अथवा भ्रम पर्यायवाची हैं। सत्यज्ञान के प्रकाश से ही भ्रम अर्थात् माया का उच्छेद होता है। अतः भ्रम से पानप का तात्पर्य मन के विकारों से ही है।

इस भ्रमरूपी माया को पानप ने झीनी माया कहा है। माया का यह स्वरूप झीना अर्थात् बारीक है परन्तु प्रबल शक्तिशाली है। पानप के अनुसार माया के इस स्वरूप से बच निकलना बिरले साधकों का ही काम है।

पानप का कथन है कि आशा और तृष्णा तो मनुष्य के संस्कारों का रूप धारण कर जीवात्मा का पीछा नहीं छोड़तीं।[2] मान तो बड़े-बड़े मुनियों से भी नहीं छूट पाया। अज्ञानरूपिणी माया इतनी निकृष्ट है कि इसने नारद जैसे मुनि को भी नहीं छोड़ा, अन्य का तो विश्वास ही क्या, वे तो इससे बच ही नहीं सकते।[3]

इस प्रकार पानप ने झीनी माया अथवा भ्रम रूप माया की अनेक स्थलों पर घोर भर्त्सना की है।

(आ) मोटी माया अथवा कर्मरूप माया

पानप ने माया का दूसरा भेद मोटी माया अथवा कर्मरूप माया बताया है। माया के इस स्वरूप में संसार के भौतिक पदार्थ हैं। मनुष्य जगत् के नामरूपों के द्वारा ही आकर्षित होकर भाँति-भाँति के कर्मों में प्रवृत्त होता है।

पूजा-पाठ, वेश-भूषा, जटा रखना, भाँति-भाँति की आडम्बरपूर्ण साधना में

---

१. पानपबानी—७·१६-२१
२. ,, —१७·८-१०
३. ,, —१७·२३-२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उलझना ऐसे कर्म हैं जो मनुष्य को अज्ञान के गर्त में ही फेंकते हैं। इस कर्मकाण्ड के इन्द्रजाल में फँसकर मनुष्य सत्य के प्रकाश से दूर ही होता जाता है।

अतः पानप ने इन कर्मादि को माया कहा है। जगत् के भौतिक पदार्थ अथवा कर्म मनुष्य के द्वारा उपभोग किए जाते हैं। ये प्रायः आकारवान् होते हैं। पानप ने इनको मोटी माया कहा है। मोटी का अर्थ साधारण भी होता है और स्थूल भी। कर्म तथा भौतिक जगत् स्थूल है और साधारणतया इन्द्रियगम्य भी है।

माया के इस भेद की पानप ने कड़ी आलोचना की है। इसके अन्तर्गत कनक और कामिनी प्रमुख हैं। पानप के अनुसार काम के वशीभूत होकर मनुष्य कनक और कामिनी के द्वारा दुःख के कूप में सदा-सर्वदा डूबता है, विनाश को प्राप्त होता है।[1]

पानप ने कनक-कामिनी की उपमा रुई में लिपटी हुई आग से दी है। रुई में लिपटी हुई आग रुई को जलाती ही रहती है और उसको भस्म ही करके छोड़ती है, इसी प्रकार कनक और कामिनी भी मनुष्य को निरन्तर अज्ञान में फँसाते ही रहते हैं। माया की सबसे प्रबल जकड़ कनक-कामिनी ही है।[2]

अविद्या-रूपिणी माया के उपर्युक्त दो भेद पानप ने बताए हैं। एक-आध स्थल पर पानप ने माया के एक तीसरे भेद की ओर भी संकेत किया है।

(इ) विद्यारूपिणी माया

पानप ने उत्पन्न होने वाले तथा विनाशशील अथवा परिवर्तनशील सभी पदार्थों को माया कहा है। उनके निकट केवल ब्रह्म ही माया रहित है।[3] श्वेताश्वतरोपनिषद् में विद्या तथा अविद्या शब्दों के अर्थ का प्रयोग है। विद्या और अविद्या के ऊपर दोनों से भिन्न तथा विलक्षण-तत्त्व को इन पर शासन करने वाला कहा है। अविद्या का अर्थ विनाशी जड़ वर्ग है और विद्या का अविनाशी वर्ग जीवात्मा आदि है।

पानप ने जीव को उस समय तक, जब तक वह भ्रम अथवा मिथ्याज्ञान से पीछा नहीं छुड़ा लेता, माया ही समझते हैं, क्योंकि जीव ही तो अज्ञान एवं भ्रम में फँसकर नाना प्रकार के कृत्यों में लिप्त रहता है और माया के चपेट में पड़ा हुआ यह जीव मायामय है अथवा माया ही है।[4]

माया का यह रूप साधकों के काम का है। इसी के आश्रय से साधक

---

१. पानपवानी—१६·५-७
२. ,, —१६·११-१३
३. ,, २०·२७-२८
४. ,, ११·१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अव्यक्त तक पहुँच पाते हैं। आत्मा नित्य, मुक्त, शुद्ध-बुद्ध, निराकार है परन्तु व्यावहारिकता के लिए मायोयाधिक आत्मा जीवात्मा कहलाता है। जीवात्मा की पारमार्थिक नहीं वरन् व्यावहारिक सत्ता है।

हम इसी व्यावहारिक सत्ता अर्थात् जीव द्वारा प्रयत्न करके साधना-पथ में अग्रसर होते हैं। इस प्रकार माया का यह स्वरूप निज स्वरूप के पहचानने में सहायक है। माध्यमिकों का कथन है—"व्यवहार की सहायता के बिना परमार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता और परमार्थ को जाने बिना निर्वाण को प्राप्त नहीं किया जा सकता।[1] पानप माया के विद्यारूपी स्वरूप को सन्तों के लिए उपयुक्त समझते हैं, इसके आश्रय से जगदीश का साक्षात्कार सम्भव है, परन्तु इसे भी क्लिष्ट साधना के उपरान्त ही पाया जा सकता है।"[2]

उपर्युक्त विवेचन से पानप के मायावाद का परिचय प्राप्त होता है। पानप का मायावाद उपनिषद, गीता एवं अद्वैत वेदान्त के अनुरूप है।

माया पारमार्थिक सत्य से भिन्न अनिर्वचनीय है। ब्रह्म पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। माया बँधनरूपा, प्रसवधर्मिणी तथा दुःखदायिनी है। पानप के अनुसार माया और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। माया व्यक्त तथा अव्यक्त रूप में सकल विश्व में व्याप्त है।

विद्यारूपिणी माया की सहायता से ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास सम्भव हो सकता है। ज्ञान से माया का उच्छेद करके निजस्वरूप पहचाना जा सकता है।

विश्व की रचना, स्थिति, लय आदि सब माया के ही द्वारा होता है। सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी विचार अगले पृष्ठों में किया जाएगा।

---

१. माध्यमिक कारिका २४-१८

२. पानपबानी—१७, २१, २२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकृति

सृष्टि-जिज्ञासा, जड़ जगत् का भौतिक स्वरूप, पानप द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति एवं विकास का वर्णन, कारण-कार्य-सम्बन्ध, विभिन्न वाद और पानप, पानप के जगत् वर्णन का रहस्य ।

सकल सृष्टि करमों बंधी, बिन हिरदय हरि नाऊं ।
नाम हिरदय में जो धरै, कहै पानप ता बलि जाऊं ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६ प्रकृति-दर्शन

दर्शन की यह शाखा जड़ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा विकास आदि के सम्बन्ध में विवेचन करती है। दार्शनिकों ने प्रकृति-दर्शन के तथ्यों का उद्घाटन कई प्रकार से किया है। प्रकृति-दर्शन को सृष्टि-तत्त्व के नाम से भी पुकारा जाता है।

ब्रह्माण्ड के भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विकास आदि का विवेचन प्रकृति-दर्शन के अन्तर्गत किया जाता है। प्रकृति-दर्शन के तथ्यों के विवेचन के क्षेत्र में प्रकृतिवाद, यन्त्रवाद, प्रयोजनवाद, विकासवाद, भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद आदि वादों का प्रचलन है।

अध्यात्मवाद के अन्तर्गत भी कई वर्ग हैं, जिन्हें चिद्-बिन्दुवाद, सर्वात्मवाद, प्रत्ययवाद, प्रपंचवाद, विश्व-चैतन्यवाद, द्वैतवाद तथा अध्यासवाद आदि नामों से बताया गया है।

पानप आध्यात्मिक विचार-प्रधान महापुरुष थे। यहाँ अध्यात्मवाद के अन्तर्गत सृष्टि सम्बन्धी उनके विचारों का प्रतिपादन किया जाएगा।

अध्यात्मवाद के अनुसार ब्रह्म ही एक मात्र पारिमार्थिक सत्ता है। नामरूपात्मक जगत् की पारमार्थिक सत्ता नहीं है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अर्थात् यह सकल विश्व ब्रह्म ही है, 'नास्तिद्वैतम्' अर्थात् दूसरा कुछ है ही नहीं। इस नामरूपात्मक जगत् मे मूलसत्ता ब्रह्म व्याप्त है। अतः सत्तारूपेण तो यह सत्य है परन्तु अपने विशेष रूप अर्थात् विनाशशील रूप के कारण असत् है, मिथ्या है। सकल विश्व आत्मा की अभिव्यक्ति है, ब्रह्म ही इस विश्व का अधिष्ठान है।

पानप ने जैसे उपर्युक्त सिद्धान्त का उल्था करके कहा हो, ऐसा प्रतीत होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। पानप भी कहते हैं कि विश्वात्मा ब्रह्म जगत् में व्याप्त है और जगत् ब्रह्म में व्याप्त है, सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म है।[1]

सृष्टि सम्बन्धी विचारों में पानप अध्यात्मवाद से ही पूर्णतः प्रभावित हैं। उनके सृष्टि सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन इस प्रकार है :

सृष्टि-जिज्ञासा

युग-युगान्तर से मनुष्य अपने सब ओर प्राकृतिक-सौंदर्य एवं दृश्यों को देखकर आश्चर्य चकित होता रहा है। अनेक योजना-विस्तार वाला नीलाकाश, प्रकाशपुंज सूर्य, चन्द्रमा, अगणित तारागण, प्राणप्रद वायु, सम्पूर्ण जगत का पेय जल तथा समुद्र आदि अनेक कुतूहलपूर्ण वस्तुओं की उत्पत्ति, स्थिति आदि के सम्बन्ध में मनुष्य ने विचारना प्रारम्भ किया।

उसके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई, सृष्टि के भेद को जानने की। मनुष्य के मन में प्रश्न उपस्थित हुए, यह विश्व किसने बनाया ? यह किस प्रकार बनाया गया ? इसका आधार कौन है ? इन प्रश्नों को सुलझाने के लिए उसने गवेषणा एवं अन्वेषण किया।

विश्व के अत्यन्त प्राचीन ज्ञान-स्रोत वेदों में सृष्टि-जिज्ञासा के दर्शन होते हैं। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि-जिज्ञासा की सुन्दर झाँकी है। उपनिषदों में भी सृष्टि-विषयक जिज्ञासा का उल्लेख पाया जाता है।

पानप सत्यान्वेषी एवं तत्त्वान्वेषी थे। उनके मन में सृष्टि-जिज्ञासा का प्रकटीकरण स्वाभाविक था। उनकी कृतियों में सृष्टि विषयक जिज्ञासा अनेक स्थलों पर देखने को मिलती है।[2]

पानप की आँखों के सम्मुख ब्रह्माण्ड का दृश्य उपस्थित था। वे भी भाँति-भाँति के रूपों में संयोजित प्राकृतिक उपादानों को आश्चर्य-चकित होकर देखते और अपने आप ही प्रश्न करते कि आकाश के आधार को जानने की जिज्ञासा हुई। ये तारे, ये अन्य उपकरण क्या हैं ? कैसे बने ? किसने बनाए ? तथा कौन हैं वह चित्रकार जिसने यह आश्चर्यजनक जगत् चित्र बना दिया।[3]

नामरूपात्मक जगत् के आगे भी उनकी दृष्टि गई। भौतिक उपकरणों से हटकर उन्होंने प्राणी-जगत् की ओर भी दृष्टिपात किया। प्रश्न उठे कि प्राणी का जन्म, शरीर-रचना, प्राणों की उत्पत्ति उनका विलय शरीरान्त के उपरान्त प्राण कहाँ समा जाते हैं।

जिज्ञासु पानप को उत्कण्ठा हुई कि यह विश्व किस क्रम से किसके द्वारा

---

१. पानपबानी—२७·५-६
२. ,, १८·५, ६
३. ,, २८·२४-२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्मित किया गया ? इसकी रचना हुई भी अथवा नहीं हुई ? जहाँ मूलतत्त्व है, वहाँ कुछ है भी या कुछ भी नहीं है ।[1]

पानप की सृष्टि-विषयक जिज्ञासा बड़ी उत्कण्ठा लिए हुए है । जगत्-सम्वन्धी सभी प्रश्न उनके मन में उत्पन्न हुए हैं । पानप की इस जिज्ञासा ने उन्हें सृष्टि का स्वरूप, विकास, और स्थिति आदि पर विचार करने के लिए प्रेरित किया ।[2]

जड़ जगत का भौतिक स्वरूप

सभी प्रकार की प्रतीतियों का नाम जगत् या संसार है । समस्त जगत् या इसके प्रत्येक विषय को एक-सा अन्ततम सत्य या पारमार्थिक सत्य नहीं कह सकते । जगत् जब नामरूपात्मक ही लिया है, तब वह केवल व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है या यों कहें कि प्रतिभासिक सत्ता की अपेक्षा अधिक सत्य है और पारमार्थिक सत्ता की अपेक्षा कम सत्य ।

भौतिक जगत् परिवर्तनशील तथा विनाशशील है । इसमें प्रत्येक क्षण परिवर्तन होते ही रहते हैं । जगत् का इन्द्रियगोचर रूप बड़ा ही आकर्षक और मनमोहक है । मनुष्य इसी में उलझ कर इसका आस्वादन करने में लिप्त रहता है । इसके अधिष्ठान पारमार्थिक सत्य की ओर उसका ध्यान जा भी नहीं पाता ।

पानप ने भौतिक जगत् को असत् कहा है, उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं । प्रगाढ़ निद्रा में मनुष्य भाँति-भाँति के स्वप्न देखता है । जागने पर वे स्वप्न उसके लिए व्यर्थ हो जाते हैं । स्वप्न क्षण-भर के लिए ही सत्य से थे, यों वे असत्य हैं । इसी प्रकार यह संसार भी स्वप्न के समान असत्य है ।[3]

भौतिक जगत् दुःखमय है । मनुष्य इसमें उलझ कर अनेक प्रकार के दुःख-सन्ताप, क्लेष, व्याधियों का ग्रास बनता है । कोई निर्धनता से कष्ट पाता है, तो कोई धन-लिप्सा से व्याकुल है । कोई काम-क्रोधाग्नि में झुलस रहा है तो कोई तृष्णा के पीछे भागा फिरता है । एक क्षण के लिए यहाँ शान्ति एवं सुख का नाम नहीं । पानप इस जगत् को दुःख का भण्डार कहते हैं । जिन लोगों पर भगवान् की क्रूर-दृष्टि होती है, वह इसके दुःख में व्याकुल ही रहते हैं ।[4]

पानप भौतिक जगत् को बाजार स्वरूप मानते हैं । बाजार में सौदा लेकर सब अपने-अपने घर को प्रस्थान कर जाते हैं । कुछ ही समय तक वहाँ रहते हैं । कुशल व्यापारी कुछ कमा लेता है और मूर्ख तो घर से भी दे बैठता है ।[5] सेमल

---

१. पानपबानी—२१·५-७
२. „ २०·६
३. „ १५·१३-१५
४. „ १५·१७-२१
५. „ १५·२५-२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का फूल तनिक-सा ठसका लगते ही टूट जाता है। संसार भी विनाशशील है। इसके असत्य स्वरूप में उलझना व्यर्थ है।

पानप ने अनेक उद्धरणों के द्वारा जगत् की निस्सारता बतायी है। जगत् का यह मिथ्यात्व पारमार्थिक सत्ता की दृष्टि से है। भौतिक जगत् स्वप्नवत् और सारहीन होते हुए भी वास्तविक रूप में दिखाई पड़ता है। साधक हो या गृहस्थ, ज्ञानी हो या ध्यानी, सभी को जगत्-व्यवहार करने ही पड़ते हैं। इसे मिथ्या और सारहीन कहना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता।[1]

व्यावहारिक ज्ञान के लिए जगत् वास्तविक है। मनुष्य जब इसी में उलझ जाता है और माया में फँसकर पारमार्थिक सत्य को भूल जाता है तथा अपने नित्य-मुक्त, शुद्ध-बद्ध स्वभाव को बिसार देता है, तब यह जगत् दुःखमय है, असत्य ही है।

अपरा विद्या की दृष्टि से जीव और जड़ पदार्थ अनेक दिखाई पड़ते हैं। इसके बिना संसार का चलना कठिन है। यही व्यावहारिक ज्ञान है। व्यावहारिक ज्ञान अथवा जगत्—व्यवहार के लिए जगत् वास्तविक है किन्तु इसे पारमार्थिक सत्ता नहीं मान सकते। पारमार्थिक सत्य तो ब्रह्म ही है। जगत् परिवर्तनशील तथा विनाशशील है, इसका बाध हो जाता है। अतः यह अबाधित तत्त्व नहीं और इस-लिए सत्य नहीं कहा जा सकता।

यह सत्य दिखाई पड़ता है क्योंकि अध्यारोप के सहारे इन्द्रियाँ उसमें अपने विषयों का आरोप कर लेती हैं और यह अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होने लगता है, यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से यह असत् है, मिथ्या है।

पानप ने जगत् के नामरूप-स्वरूप के लिए कहा है कि जो तुम जिस रूप में सत्य समझकर इस जगत् को समझ बैठे हो, यह सत्य नहीं है। यह तो सब पारमार्थिक सत्य, जिसका भेद गहन है, उसकी अभिव्यक्ति है, वह इन्द्रियातीत है, वही सत्य है।[2]

नामरूपात्मक जगत् का अधिष्ठान मूल-तत्त्व ब्रह्म है। उसकी पारमार्थिक सत्ता है। वह सर्वत्र व्याप्त है। नामरूपात्मक जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय सब अन्ततम सत्यमय है। वह स्वयं ही जगत् में अभिव्यक्त हो रहा है, उसके अति-रिक्त जगत् का कोई अस्तित्व नहीं। अतः पारमार्थिक दृष्टि से जगत् मिथ्या है। व्यावहारिक दृष्टि से जगत् की वास्तविक एवं व्यावहारिक सत्ता है।

पानप द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति एवं विकास का वर्णन

पानप की रचनाओं में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विकास-क्रम का

---

१. पानपबानी—२१.५-७
२. ,, —२०.६-८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण व्यवस्थित रूप में नहीं पाया जाता, फिर भी उनके विचार वेदों, उपनिषद् तथा अद्वैत वेदान्त के अनुकूल ही हैं।

पानप ने सृष्टि-उत्पत्ति के पूर्व की स्थिति के सम्बन्ध में लिखा है कि न वायु थी, न पानी था, न सृष्टि ही उत्पन्न हुई थी। न प्राण थे, न था शरीर। तब न पृथ्वी थी, न आकाश था। न बीज था, न फल-फूल। न विद्या थी, न वाद-विवाद था। न गुरु था, न शिष्य ही था। उस समय केवल वही एक इन्द्रियातीत अपने स्वरूप में स्थित था।

पानप का यह वर्णन वेद के नासदीय सूक्त के समान भाव वाला है।[१] जिस मूल-सत्ता से सब कुछ उत्पन्न हुआ है, जो प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है, उसे न सत् कहा जा सकता है, न असत्। वह सभी वस्तुओं का अन्तस्तत्व है, किन्तु स्वतः अवर्णनीय है।

१. ऊँकार से सृष्टि-रचना

पानप ने एक स्थल पर ऊँकार से सृष्टि की उत्पत्ति बतायी है। पानप के इस वर्णन से यही ध्वनि निकलती है कि नामरूपात्मक जगत् के मूल में वही चैतन्य तत्त्व है जो सदा-सर्वदा, सर्वत्र, सब रूपों में व्याप्त है और वही सब रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है।[२] जितने भी नामरूप हैं उन सब में अधिष्ठान-रूप वही ब्रह्म, पारमार्थिक सत्य, अखण्ड रूप में व्याप्त है। एक स्थल पर ऊँकार ने शब्द के द्वारा सृष्टि की रचना की, इसका उल्लेख है। ऊँकार से जगत् की उत्पत्ति एवं विकार से विलय होता है। उसने शाश्वत शब्द से सृष्टि रचना की और उसमें वह व्याप्त हो गया।

ऊँकार एवं शब्द से सृष्टि-उत्पत्ति का यह विचार वेदों के अनुकूल है। ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा गया है—'वागेव विश्वाः भुवनानिजज्ञे'[३] शब्द से समस्त लोकों की रचना की गई।

पानप का ओंकार से सृष्टि-उत्पत्ति का विचार वेद एवं उपनिषद् के अनुकूल है। यहाँ सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, विकास एवं विलय सब कुछ ओंकार अर्थात् ब्रह्म ही को बताया गया है। सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है, ब्रह्म ही की अभिव्यक्ति है।

२. प्रकाश अथवा नूर से सृष्टि-रचना

पानप ने एक स्थल पर नूर (प्रकाश) से सृष्टि की उत्पत्ति बतायी है। अग्नि की चिनगारियों से प्रकाश होता है। प्रकाश से जगत् की उत्पत्ति का वर्णन उपनिषदों में भी पाया जाता है। ब्रह्म से अग्नि की चिनगारी के समान जगत् के सभी पदार्थों

---

१. पानपबनानी—६. ७
२. ,, —६. ९-११
३. वेद-सूत्र—१/३/२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की उत्पत्ति का वर्णन द्वितीय मुण्डक में पाया जाता है। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से उसी समान रूप वाली, सहस्रों चिनगारियाँ प्रकाशित होती हुई प्रकट होती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से नाना प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन भी हो जाते हैं। इसी प्रकार जगत् भी उसी से उत्पन्न होकर उसी में लय हो जाता है।[१]

यहाँ भी ब्रह्म ही को जगत् का अधिष्ठान माना गया है। पानप ने ब्रह्म को ज्योतिस्वरूप एवं प्रकाशस्वरूप भी बताया है।[२] प्रकाश से जगत्-उत्पत्ति का तात्पर्य ब्रह्म ही से है। यहाँ पानप ने ब्रह्म ही को जगत् में प्रकाश-रूप में अभिव्यक्त कहा है।

३. माया से सृष्टि की उत्पत्ति

पानप ने माया से सृष्टि की रचना का उल्लेख कई स्थलों पर किया है। सिरजनहार ने सृष्टि की रचना की। पानप कहते हैं :—

माया सूँ सब जग बँधा और संतों माया बाँधी।
माया ने सब जग खाया संतों राखी सत की साँधी ॥[3]

सृष्टि-क्रम को पानप ने सूत्र-रूप में कहा है क्योंकि वे इसे विवर्त या अध्यास ही मानते हैं।[४]

पानप जगत्-सत्ता को प्रातिभासिकी सत्ता अथवा व्यावहारिक सत्ता ही कहते हैं। माया की आवरण और विक्षेप-शक्ति से हमें ब्रह्म का स्वरूप तो नहीं दीखता और उसके स्थान में हम नाना प्रकार की अन्य वस्तुओं की कल्पना कर लेते हैं, जैसे अन्धकार में रज्जु का सर्प समझना। यहाँ रस्सी का साँप के रूप में दिखाई पड़ना विवर्त है।[५] इसी प्रकार जगत् भी ब्रह्म का विवर्त ही है।

जहाँ जो वस्तु नहीं है उसे वहाँ कल्पित करना अध्यास कहलाता है। जहाँ-जहाँ भ्रान्त ज्ञान होता है, वहाँ अध्यास होता है। जिस प्रकार रज्जु में सर्प अध्यस्त हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म में जगत् अध्यस्त हो जाता है। हम विश्व के नामरूप जो विनाशशील हैं, असत् हैं, उनमें ही उलझ जाते हैं, उन्हें ही पारमार्थिक सत्ता समझ लेते हैं और इस नामरूप में जो मूल अस्तित्व है, उस इंद्रियातीत को नहीं देख पाते।[६]

यहाँ भी पानप ने ब्रह्म को ही मूल-तत्त्व बताया है और जगत् को व्यावहारिक सत्ता मात्र कहा है। ब्रह्म जगत् में कैसे व्याप्त है, और अभिव्यक्त हो रहा है इसके

---

१. द्वितीय मुण्डक—१/१
२. पानपबानी—७·५
३. ,, —२०·१७
४. पानपबोध—१८·६
५. पानपबानी—१६·१
६. पानपबोध—१७·५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिए पानप प्रतिबिम्बवाद का उदाहरण देते हैं। ब्रह्म की ईश्वरनामी व्यावहारिक सत्ता स्वयं कुम्हार बन गई। अनेक प्रकार से विविध भाँति की सृष्टि का सर्जन किया और जैसे दो घड़ों को अलग-अलग स्थान पर जल भर कर रख दीजिए और उसमें घटाकाश, मठाकाश एक ही आकाश को दो नाम से पुकारिए जबकि आकाश एक ही है, उसी प्रकार ब्रह्म एक ही है और उसका प्रतिबिम्ब अलग-अलग चित्तों में भ्रम और माया के कारण पृथक्-पृथक् दीखता है।[1]

यहाँ पानप की सृष्टि-उत्पत्ति अद्वैत वेदान्त के अनुकूल है।

४. गुणोत्कर्ष द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति

पानप का सृष्टि-उत्पत्ति-विकास उपदिषदों से मिलता-जुलता है तथा पूर्ण अद्वैतवादी है। प्रश्नोपनिषद् में लिखा है—"सबसे पहले उसने प्राण की रचना की। प्राण के बाद श्रद्धा को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी आदि की रचना की, फिर चित्त और इन्द्रियगण की रचना की। उसके बाद अन्न, वीर्य हुए तथा तप और कर्म, मंत्रादि तथा कर्मफलों के अनुसार लोकों का निर्माण किया।"[2]

पानप के अनुसार भी यही क्रम है—प्रथम पाँच तत्त्व, तदनन्तर प्राणी-वर्ग तथा कर्म और बन्धन हैं।[3]

वेदान्त में अष्टधा प्रकृति का वर्णन भी पाया जाता है। पानप ने भी कबीर की भाँति एक स्थल पर अष्टधा प्रकृति का उल्लेख किया है :

'साखा तीन पत्र जुग चारी, फल दोइ पाप पुँनि अधिकारी।।[4]

यहाँ तीन शाखाएँ तीन गुणों की बोधक हैं और चार युग-पत्र अर्थात् आठ पत्र, अष्टधा प्रकृति के बोधक हैं। अतः पानप का सृष्टि विकास-क्रम अद्वैत वेदान्ती है।

कारण-कार्य सम्बन्ध

कार्य कारण से भिन्न नहीं किन्तु अभिन्न है। एक ही वस्तु की अव्यक्त और व्यक्त अवस्थाओं को हम क्रमशः कारण-कार्य के नाम से पुकारते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर कपड़ा अपने धागों से पृथक् वस्तु नहीं है और न मेज ही अपनी लकड़ी से भिन्न है। मिट्टी का घड़ा वस्तुतः मिट्टी ही है और पत्थर से निर्मित पत्थर-मूर्ति वस्तुतः पत्थर ही है।

१. पानप में आरम्भवाद या परमाणुवाद

ब्रह्म और जड़-जगत् के सम्बन्ध को समझने के लिए, कार्य-कारण-सम्बन्धी

---

१. पानपबोध—१७·१६-१८
२. प्रश्नोपनिषद्—६/४
३. पानपबानी—११·६
४. ,, १०·५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ दार्शनिक वादों की जानकारी अनुपयुक्त न होगी। पानप के सृष्टि-सम्बन्धी सिद्धान्तों का स्पष्ट ज्ञान भी इनसे सम्भव होगा।

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार जगत् का मूल कारण परमाणु है। दो परमाणुओं का प्रथम संयोग द्वयणुक कहलाता है। तीन द्वयणुकों का संयोग त्रयणुक या त्रसरेणु कहलाता है। परमाणु या द्वयणुक सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के कारण प्रत्यक्ष नहीं हो सकते। उनका ज्ञान अनुमान से होता है। समस्त भौतिक जगत् और उसके कार्य द्रव्य चार प्रकार के (पृथ्वी, जल, तेज और वायु के) परमाणुओं के द्वयणुकों, त्रयणुओं तथा उनके बृहत्तर संयोगों के परिणाम हैं। परमाणुओं में संयोग होने की प्रेरणा ईश्वर के द्वारा होती है। इसे परमाणुवाद या आरम्भवाद कहते हैं। पानप परमाणुवाद से सहमत नहीं हैं, वे इस प्रकार से सृष्टि-उत्पत्ति को स्वीकार नहीं करते।

२. पानप में गुण-परिणामवाद

कार्य अपनी अभिव्यक्ति से पूर्व भी कारण में विद्यमान रहता है। परिणामवाद के अनुसार कार्य की उत्पत्ति का अर्थ है कारण का सचमुच रूपान्तरित होना, जैसे दूध का परिणाम दही है, मिट्टी का परिणाम घड़ा है। यहाँ दूध और मिट्टी के वास्तविक रूपान्तर या विकार होने से ही दही या घड़े का प्रादुर्भाव होता है। यह सांख्य का मत है।

मूला प्रकृति किसी का विकार नहीं है। महत्, अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ, मनस्, इन्द्रियाँ, पाँच भूत, ये सब विकार हैं। मूला प्रकृति से विकारों की अभिव्यक्ति होना अथवा अव्यक्त अवस्था से व्यक्त अवस्था में आ जाना, विसदृश परिणाम है। व्यक्त से पुनः भूत-अवस्था या अव्यक्त अवस्था में हो जाना सदृश परिणाम है।[1]

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति त्रिगुणात्मक प्रकृति से होती है। मूल-प्रकृति वस्तुतः बदल कर जगत् के रूप में हो जाती है। यह परिणामवाद पानप को पूर्णतः मान्य नहीं, उन्होंने इसे अंशतः स्वीकार किया है।[2]

३. विवर्तवाद और पानप

किसी द्रव्य के विकार का आभास (जैसे अन्धकार में रस्सी का साँप के रूप में दिखाई पड़ना) विवर्त कहलाता है। विवर्तवाद इस बात को स्वीकार करता है कि कार्य पहले ही से अपने उपादान कारण में विद्यमान रहता है।[3] विकार से कोई नई वस्तु नहीं बन जाती। यह भी कह सकते हैं कि कार्य-कारण से अभिन्न है। आकार या आकृति के परिवर्तन को देखकर उसे वास्तविक परिवर्तन समझना उचित

---

१. कारिका—८

२. पानपबानी—१७·१

३. संक्षेप शारीरक—२/६१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं। इसके विपरीत, यह भी देखने में आता है कि आकारिक परिवर्तन होने पर भी कोई वस्तु वही कही जाती है, जैसे देवदत्त सोते हुए, उठते या बैठते हुए, कार्य करते हुए भी देवदत्त ही कहा जाता है। आकार द्रव्य से भिन्न सत्ता नहीं है। अतएव यदि द्रव्य वही कायम रहे, तो केवल आकार-परिवर्तन को वास्तविक परिवर्तन नहीं कहा जा सकता।

जब कोई कार्य उत्पन्न होता है, तब द्रव्य में विकार नहीं आता। कारण कार्य का सम्बन्ध वास्तविक परिवर्तन सूचित नहीं करता और जो परिवर्तन होता है, वह कारण ही के द्वारा इससे स्पष्ट होता है कि द्रव्य में विकार नहीं होता। इसका अर्थ यही होता है कि यद्यपि हम विकारों को देखते हैं तथापि बुद्धि उन्हें सत्य नहीं मान सकती। अतएव उनका जो प्रत्यक्ष होता है, वह प्रत्यक्षाभास ही समझना चाहिए। हमें आकाश नीला दृष्टिगत होता है, सूर्य घूमता प्रतीत होता है, परन्तु हम इन्हें सत्य नहीं मानते क्योंकि प्रमाणों में से वे असत्य प्रमाणित हो जाते हैं। वे वास्तविक सत्ता नहीं वरन् आभास-मात्र हैं। यह केवल मानसिक आरोप या विक्षेप मात्र है। आचार्य शंकर ने कहा है—"किसी वस्तु के अवास्तविक विकार (जैसे रस्सी में साँप का आभास होना) विवर्त कहलाता है। अद्वैत वेदान्त के इस सिद्धान्त विवर्तवाद के अनुसार सृष्टि-सत्ता-रूप वास्तविक सत्य नहीं है। ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्य है और जगत् उसी का विवर्त है।

पानप विवर्तवाद का समर्थन करते हैं। वे जड़-जगत् को वास्तविक सत्ता रूप स्वीकार नहीं करते हैं :

'झूठन झूठ साँच कर जाना, झूठन मैं सब साँच छुपाना।'[1]

विवर्तवात के पक्ष में पानप के और अनेक उद्धरण दिए जा सकते हैं। पानप विवर्तवाद से पूर्णतः सहमत हैं।

४. अध्यासवाद और पानप

अद्वैत वेदान्त का दूसरा सिद्धान्त अध्यासवाद है। गीताभाष्य में शंकर ने कहा है कि अविद्या-कल्पित दोष पारमार्थिक वस्तु को दूषित नहीं कर सकते, न मिथ्या ज्ञान दूषित कर सकता है, परमार्थ वस्तु को। अतएव ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता और इसी से उसकी पारमार्थिक सत्ता है। यह जगत् उसका अध्यास है।

जहाँ जो वस्तु नहीं है उसे वहाँ कल्पित करना अध्यास कहलाता है। अवस्तु वस्तु मे आरोप होना अध्यास है।

पानप अध्यासवाद के समर्थक हैं। पानप पारमार्थिक सत्य ब्रह्म को ही मानते हैं। उनके अनुसार ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् तथा उसके बाहर भी व्याप्त है। वह सभी चराचर जीव-जन्तुओं की अन्तरात्मा में व्याप्त है और ज्ञान-दृष्टि से देखा जा

---

१. पानपबोध—२७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकता है। वह अमृत-तुल्य है और अपरंपार है। सर्वत्र वही अभिव्यक्त हो रहा है। जो अज्ञानी हैं, वे भ्रम के कारण जैसे अन्धकार में रस्सी को साँप समझ कर भयभीत होते हैं, उसी प्रकार वे ब्रह्म के स्थान पर जगत् को देखते हैं।[1]

५. प्रतिबिम्बवाद और पानप

अनन्त चैतन्य का अविद्या के दर्पण पर जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वही जीव है। जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा के नाना प्रतिबिम्ब भिन्न जलाशयों पर पड़ते हैं और जल की स्वच्छता और मलिनता के अनुरूप प्रतिबिम्ब भी स्वच्छ या मलिन दीख पड़ता है, जल की चंचलता अथवा स्थिरता के अनुसार प्रतिबिम्ब भी स्थिर या चंचल प्रतिभासित होता है, उसी तरह अविद्या की प्रकृति के अनुसार अनन्त के प्रतिबिम्ब-स्वरूप जीव भी भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के दीख पड़ते हैं।

स्थूल और सूक्ष्म शरीर अविद्या के कार्य हैं और अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर का अंग है। अन्तःकरण मलिन, क्षुब्ध तथा शान्त हो सकता है। इन्हीं विभेदों के कारण जीवगत अविद्याएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार एक ही ब्रह्म भिन्न-भिन्न जीवों में प्रतिभासित होता है और मूलतः एक ही रहता है। भिन्न-भिन्न अन्तः-करणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिबिम्बित होता है। प्रतिबिम्बवाद अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है।

पानप की कृतियों में प्रतिबिम्ब का वर्णन पाया जाता है। उनके अनुसार एक मात्र ब्रह्म ही अन्ततम सत्य है और दूसरा कोई है ही नहीं।[2] जिस प्रकार दर्पण में व्यक्ति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी जगत्-रूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित होता है। नाम-रूप का निरपेक्ष विनाश हो जाने पर केवल वही परम सत्य मूल-तत्त्व शेष रह जाएगा और तब इसका विश्वास हो सकता है।

६. अवच्छेदवाद और पानप

अद्वैतवादियों का एक सिद्धान्त अवच्छेदवाद है। आकाश वस्तुतः सर्वव्यापी और एक ही है फिर भी घटाकाश और मठाकाश अर्थात् घड़े के भीतर का आकाश और कमरे के भीतर का आकाश उपाधि-भेद से घटाकाश-मठाकाश आदि नाना रूपों में आभासित होता है और व्यावहारिक सुविधा की दृष्टि से हम आकाश के काल्पनिक विभाग कर लेते हैं, यद्यपि ब्रह्म सर्वव्यापी और अद्वैत है तथापि माया अथवा भ्रम के कारण उपाधि-भेद से नाना जीवों और विषयों अथवा नाम-रूपों में प्रतीत होता है। वस्तुतः विषय-विषय में, जीव-जीव में कोई भेद नहीं क्योंकि मूलतः वे एक ही शुद्ध सत्ता मात्रा हैं। यहाँ भ्रम है केवल सर्वव्यापी का सीमित रूप में, अनन्त का सान्त रूप में आभासित होना।

---

१. पानपबानी—१५.१७
२. ,, —२४.५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ने अवच्छेदवाद के समर्थन में जलाशय और घड़े की उपमा दी है। जलाशय में उसी के जल में भर कर कई घड़े रखे जाएँ। उन घड़ों में जल अलग-अलग दिखाई देगा और उसे हम घड़े का जल तथा जलाशय के जल के नाम से अलग-अलग कहते हैं। यद्यपि जल वस्तुतः एक ही है, केवल घड़ों की उपाधि मात्र से पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ता है। जब घड़े फूट जाते हैं, तो घड़े और जलाशय का पानी एक-दूसरे में मिल जाता है और भेद मिट जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म एक है, माया और भ्रम से नाम-रूप में भासित होता है। अज्ञान मिट जाने पर उसको हम समझ पाते हैं।[1]

७. सर्वात्मवाद और पानप

उपनिषदों में 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' अर्थात् सकल विश्व ब्रह्म ही है। 'नेह नानास्ति किंचन' अनेक कुछ है ही नहीं के द्वारा यही प्रतिपादित किया गया है कि विश्व के कण-कण में व्याप्त आत्म-तत्त्व है। ये नाना प्रकार के पदार्थ जो प्रतिभासित हैं, सब उसी की अभिव्यक्ति है।

पानप में सर्वत्र सर्वात्मवाद पाया जाता है। ब्रह्म पावक-रूपी होकर सभी के घट में व्याप्त है।[2] वह सब पदार्थों में एकाकी भाव से व्याप्त है।[3] भ्रम और माया का उच्छेद करने पर यही प्रतीत होता है कि सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म है, पूर्ण-रूपेण व्याप्त है।[4]

पारमार्थिक सत्ता मात्र जगत् में केवल ब्रह्म ही है। भ्रम के कारण जो भाँति-भाँति के नाम-रूप अथवा जगत् को हम देखते हैं, यह सब कृत्रिम है, मिथ्या है, असत्य है। इसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है। यह तो दर्पण के प्रतिबिम्ब की भाँति है। यह विश्व उसी की अभिव्यक्ति है। नाम-रूप माया माया का आवरण हट जाने पर ब्रह्म ही रह जाता है। जगत् की सत्ता है ही नहीं। स्वर्ण और आभूषण का जो सम्बन्ध है, वही ब्रह्म और जगत् का है। मूल-तत्त्व सोना ही है और ऐसे ही मूल-तत्त्व ब्रह्म ही है।

८. ब्रह्म-परिणामवाद और पानप

विशिष्टाद्वैत दर्शन का मत है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर अपनी इच्छा से स्वयं अपने से ये नाना नाम-रूपात्मक जगत् उत्पन्न करते हैं। सर्वव्यापी ब्रह्म में चित् और अचित् ये दोनों तत्त्व विद्यमान हैं। अचित् से सभी भौतिक विषय होते हैं।

इस दर्शन के अनुसार जगत् वास्तविक है और उतना ही सत्य है जितना

---

१. पानपबानी—१६.७
२. ,, —१७. ६
३. ,, —११. ८
४. ,, —१२. ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्म। यहाँ माया में ईश्वर की वास्तविक सृष्टि करने की शक्ति है। यह ब्रह्म में अवस्थित अचेतन-तत्त्व है। इस तत्त्व में (और इसलिए ब्रह्म में भी) वास्तविक परिवर्तन होता है। ब्रह्म का अचित् अंश अथवा ब्रह्म ही बदल कर जगत् के रूप में परिणत हो जाता है, इसी से इस सिद्धान्त को ब्रह्म-परिणामवाद कहते हैं। रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म और जीवात्मा में अन्तर है। इन दोनों का भेद सत्य माना गया है।

पानप ब्रह्म और जीवात्मा में तत्त्वतः कोई भेद नहीं मानते। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में वृक्ष के रूपक से ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध को प्रदर्शित किया गया है।

पानप ने भी एक ऐसे वृक्ष की उपमा दी है जिसका मूल ऊपर को है, शाखाएँ नीचे को हैं और उसमें भाँति-भाँति से फल-फूल लगे हैं। इससे स्पष्ट ही है कि ब्रह्म-अधिष्ठान है, उससे नामरूपात्मक जगत् का सम्बन्ध है। इस वृक्ष के विषय में एक स्थल पर पानप ने कहा है कि बिना शरीर के एक वृक्ष खड़ा है और उसमें बिना फूल के फल लगते हैं। उसके न शाखा है, न पत्ते, फिर भी वह विशाल शरीर वाला, हरा-भरा तथा अनेक रूप वाला दिखाई पड़ रहा है।[1]

यहाँ पानप का मन्तव्य निर्गुण-निराकार ब्रह्म से हैं। ब्रह्म अजन्मा है, उसका कोई आधार नहीं और वह सम्पूर्ण जगत् का आधार है। वह अनन्त है तथा अकर्ता है। फलरूप संसार है जो बिना फूल अर्थात् विकार के हो गया। पानप के अनुसार जगत् ब्रह्म का परिणाम नहीं है, वरन् विवर्त है। अतएव पानप ने ब्रह्म-परिणामवाद को नहीं अपनाया है।

उपर्युक्त सभी प्रमुख वादों का पर्यवेक्षण कर लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि पानप ब्रह्म-जगत्-सम्बन्ध में अद्वैतवादियों के ही अनुकरण पर है। अद्वैतवादियों ने विवर्तवाद, प्रतिबिम्बवाद, अध्यासवाद, सर्वात्मवाद, आभासवाद सभी को पानप ने अपनाया है और जगत् वर्णन किया है।

पानप के जगत्-वर्णन का रहस्य

जगत् में रहने वाला व्यक्ति जगत् को झूठ कहे तो एक अनोखी-सी बात लगती है। नामरूपात्मक इस जगत् में हमारा जीवन चलता है। और इसी से हमारी बुद्धि स्वतः इसके रहस्य को जानने के लिए उत्सुक हो जाती है। नाना प्रकार के पृथक्-पृथक् विषयों को देखकर सहसा ही हमें जगत् की वास्तविकता को स्वीकार करना पड़ता ही है। आरम्भ में प्रत्येक मनुष्य की सही दशा होती है। ज्यों-ज्यों मनुष्य अपने विचारों में प्रौढ़ता प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों जगत् की परिवर्तनशीलता और विनाशशीलता को देखकर उसका ध्यान किसी अगम्य और अदृश्य तत्त्व की ओर जाने लगता है। ऐसी स्थिति में जगत् उसके लिए एक पहेली बन जाता है।

---

१. पानपबानी-५. ६-८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतएव आरम्भ में पानप ने भी जगत् को कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा और उसकी उत्पत्ति स्थिति आदि पर गम्भीर चिन्तत एवं मनन किया।

जगत्-विषयों को तीन कोटियों में विभाजित किया जा सकता है :

(१) ऐसे विषय जो क्षण भर के लिए प्रकट होते हैं (जैसे स्वप्न में या भ्रम में) ये विषय स्वाभाविक जागृतावस्था तथा ज्ञान से बाधित होते हैं।

(२) वे विषय जो स्वाभाविक जाग्रतावस्था में प्रकट होते हैं। ये विषय परिवर्तनशील होते हैं और काल, अवस्था आदि से ये बाधित हो जाते हैं। इन्हें सम्पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता।

(३) शुद्ध मूल-तत्त्व अथवा मूलसत्ता जगत् की सभी प्रतीतियों में प्रकट होती है, यह कभी बाधित नहीं होती और न इसके बाधित होने की कल्पना ही की जा सकती है।

सभी प्रकार की प्रतीतियों का नाम-जगत् है। अतएव समस्त जगत् अथवा इसके प्रत्येक विषय को एक-सा सत्य नहीं कहा जा सकता, उपर्युक्त तीन कोटियों में पहली कोटि की सत्ता प्रतिभासिक सत्ता, दूसरी व्यावहारिक सत्ता और तीसरी कोटि की पारमार्थिक सत्ता है। इसलिए संसार को एक रूप नहीं कहा जा सकता। समष्टि रूप में जगत् तथा असत् दोनों से विलक्षण ही है। जगत् जब नामरूपात्मक ही लिया जाता है तब वह व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है अर्थात् प्रतिभासिक सत्ता से अधिक सत्य और पारमार्थिक सत्ता की अपेक्षा कम सत्य। पूर्णतः सत्य तो पारमार्थिक सत्ता ही है जिसका कभी भी बोध नहीं होता। पानप ने सदैव स्थिर रहने वाले को ही 'सत्य' कहा है।[1]

अतः पानप ने पारमार्थिक सत्य ब्रह्म ही को कहा है।[2] उनके अनुसार अबाधित तत्त्व ही सत्य है। जो विषय उत्पन्न होते हैं उनका बाध हो जाता है अतः वह सत्य नहीं कहे जा सकते।

अन्ततम सत्ता की दृष्टि से ही पानप ने जगत् को असत्य कहा है अर्थात् मूल अस्तित्व की दृष्टि से जगत् को सत्य नहीं कहा जा सकता, परन्तु यदि जगत् से इसके सब विषयों के मूल अव्यभिचारी अधिष्ठान या कारणत्त्व से तात्पर्य है तब पानप उसे वास्तविक कहते हैं क्योंकि कारण-कार्य अभिन्न हैं और जगत् का मूल-अधिष्ठान तथा सर्वत्र व्याप्त तत्त्व ब्रह्म है जो जगत् का मूल-अधिष्ठान तथा सर्वत्र व्याप्त तत्त्व ब्रह्म है जो जगत् में अभिव्यक्त है। जिसने इस जगत् को बनाया वह कौन है, किसका है, इसका रहस्य कोई नहीं जानता, रहस्य कुछ है ही नहीं, वह स्वयं ही सब कुछ है, सब में प्रकट हो रहा है,[3] पानप का यह संक्षिप्त उत्तर है।

---

१. पानपबानी—१८·१-३
२. ,, १०·१-३
३. ,, १२·८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप के जगत् सम्बन्धी विचार आचार्य शंकर के अनुकूल है। शंकर ने कहा है—'जैसे कारण रूपी ब्रह्म की सत्ता त्रिकाल में रहती है, वैसे ही (सत्तारूपेण जगत् भी) त्रिकाल में सत्व नहीं खोती है, क्योंकि कारण-कार्य अभिन्न हैं।'[१] छान्दोग्योपनिषद् में भी कहा गया है—'नाना रूपनामात्मक विषय सत्तारूपेण सत् हैं, किन्तु अपने विशेष रूप में अर्थात् परिवर्तनशील और विनाशशील होने के कारण, असत् हैं।'[२]

क्या जगत् के नामरूप सत्य हैं ? इसके उत्तर में पानप का स्पष्ट उत्तर है—'पारमार्थिक सत्ता की दृष्टि से वे असत् हैं क्योंकि वे परिवर्तनशील और विनाशशील हैं, उन्हें अन्ततम अस्तित्व नहीं कहा जा सकता।[3]

पानप जगत् (नामरूपात्मक) की व्यावहारिक सत्ता मानते हैं, उसके विभिन्न नामरूपादि का प्रत्यक्ष इन्द्रियों के द्वारा होता है। जगत् के अनेक विषयों के द्वारा हमारा जीवन चलता है।[४] फिर जगत् के नामरूप के सहारे ही हम पारमार्थिक सत्य तक पहुँच पाते हैं।

यह विश्व प्रवाह रूप में अनादि है। इसमें परिवर्तन, आविर्भाव तथा तिरोभाव आदि होते रहे हैं। जगत् की निरपेक्ष उत्पत्ति तथा निरपेक्ष विनाश एक परिकल्पना है और जगत् व्यवहार के लिए ही है।

सभी मनुष्य एक-सी बुद्धि और प्रतिभा के नहीं होते, अतएव साधारण लोगों को जगत् का रहस्य समझाने के लिए ही विचारकों ने अनेक प्रकार की उपमाओं तथा उक्तियों का प्रयोग करके साधारण भाषा में सृष्टि-विषयक विचार व्यक्त किए हैं। हमारी धर्म-पुस्तकों एवं महान् ग्रन्थों में सृष्टिकर्त्ता, सृष्टि की रचना आदि की बातों का समावेश जगत् पहेली को सुलझाने का प्रयास-मात्र ही है। जीवन के साधारण व्यवहार तथा बोलचाल में हम साधारण पुरुषों के समान भाषा बोलते हैं परन्तु विचार करते समय हमें बुद्धिमानों की भाँति ही ठीक विचार करना पड़ता है और विद्वानों की भाषा का भी प्रयोग करना पड़ता है।

पानप ने गम्भीर दार्शनिक समस्याओं को दो प्रकार से व्यक्त किया है। एक साधारण लोगों को समझाने के लिए साधारण उक्तियों और उपमाओं के द्वारा तथा दूसरे विद्वान् विचारकों के लिए उनके स्तर की भाषा तथा उपमाओं के द्वारा।

---

१. ब्रह्मसूत्र शां० भा०—२/१/१६
२. छान्दोग्य—६/३/२
३. पानपबानी—१२·११
४. ,, ११·१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीनकाल से प्रचलित कल्पना के आधार पर तथा जगत्-व्यवहार के लिए पानप ने जगत् का करना,[१] माया की रचना,[२] जगत्-उत्पन्न करना,[३] एक कारीगर ने संसार बनाया,[४] आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

अतएव सृष्टि-विकास-क्रम को पानप ने व्यवहार के लिए अभिव्यक्त किया है। पारमार्थिक तत्त्व जड़ जगत् रूपी शरीर में व्याप्त है। मूल तत्त्व के बिना मायोपाधिक जगत् का कोई अस्तित्व नहीं। बिना माया के अरूप-सरूप में अभिव्यक्त नहीं हो सकता। प्रकटीकरण, अभिव्यक्ति, उत्पत्ति, विकास, आविर्भाव, प्रादुर्भाव आदि शब्द पर्यायवाची हैं। पदार्थों की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया अथवा शक्तियों के आदान-प्रदान के कारण पदार्थ की अवस्था या स्थिति में परिवर्तन होता है, जिसे 'कार्य' कहा जाता हैं। कारण से नई वस्तु उत्पन्न नहीं होती। वस्तुएँ परस्पर आबद्ध हो जाती है, जिससे उनकी पहली अवस्था का दूसरी नई अवस्था में परिवर्तन हो जाता है। इसे ही उत्पत्ति या प्रादुर्भाव कह दिया जाता है। जल से हिम का बनना और हिम का पुनः जल हो जाना, परिवर्तन ही है जिसे जल से बर्फ बनाना कह दिया जाता है। मिट्टी से निर्मित घड़ा ही है और पत्थर से निर्मित मूर्ति पत्थर ही है। केवल स्थित्यन्तर से दो नामरूप हो जाते हैं।

पानप को सकल विश्व और तीनों लोक में एक ही सत्य-तत्त्व दीख पड़ा, जो अखण्ड रूप में सर्वत्र व्याप्त है। यह नामरूपात्मक जगत् जैसा दिखाई पड़ता है और सत्य समझ लिया जाता है, यह वैसा नहीं है। इसके अन्तर्गत अगम, अगोचर सत्य-तत्त्व ही व्याप्त है।[५] इसीलिए तो पानप गुण परिणामवाद, परमाणुवाद, ब्रह्म-परिणामवाद किसी को भी स्वीकार नहीं करते। वह सृष्टि की तुलना एक स्वप्न अथवा भ्रम से करते हैं।[६]

पानप ने विवर्तवाद, प्रतिविम्बवाद, अध्यासवाद सभी के द्वारा यही सिद्ध किया कि ब्रह्म ही मूल सत्य है और वह सर्वत्र व्याप्त है। उसके अतिरिक्त जगत् सत्ता जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। नामरूप ब्रह्म के स्थान में बहिरारोपण हैं, पारमार्थिक सत्य तो ब्रह्म ही है। ब्रह्म के ऊपर अज्ञान के कारण आरोप होने पर दृश्य जगत् असत् होते हुए भी सत् प्रतीत होता है।

पानप ने जीवात्मा तथा जड़ जगत् में केवल मूल-तत्त्व ब्रह्म ही को देखा। वह सर्वत्र व्याप्त है। सब कुछ वही है। पारमार्थिक तत्त्व की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व,

---

१. पानपबानी—२०·२२
२. ,, २०·२८
३. ,, २०·१४
४. ,, १५·६
५. ,, १७·८-१०
६. ,, १२·११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके विषय तथा जीवात्मा सबमें वही है. केवल वही है। अतः ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है।

पानप के अनुसार अज्ञान के आवरण से आच्छादित प्राणी के लिए जगत् वास्तविक है। जगत् के बन्धन में पड़ा हुआ व्यक्ति जगत् को झूठ कहे यह अव्यावहारिक है। इसी कारण साधक आरम्भ में जगत् के उपकरणों के सहारे ही उस मूल-तत्त्व को खोजता है। ब्रह्म की अभिव्यक्ति नामरूपात्मक जगत् में हुई तो अवश्य परन्तु जगत् का यह स्वरूप व्यवहार मात्र के लिए ही है। वस्तुतः ज्ञान-दृष्टि के अनुसार उसकी सत्ता है ही नहीं। पारमार्थिक दृष्टि से केवल ब्रह्म ही सत्य है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं।

पानप के अनुसार इच्छा अथवा मन के आधार पर ही मनुष्य के व्यक्तित्व की सर्जना होती है और मन के द्वारा मनुष्य अपना जीवन-दर्शन नियत करता है तथा उसे जगत् उसके दृष्टिकोण के अनुकूल ही दिखाई पड़ता है।[1] आँखों पर रंगीन चश्मा लगाने पर सामने के दृश्य भी रंगीन ही दिखाई पड़ते हैं और उनका वास्तविक चित्र अवास्तविक हो जाता है। इसी प्रकार माया-मोह के कारण भ्रम से मूलतत्त्व के वास्तविक स्वरूप के स्थान पर हम अवास्तविक स्वरूप को ही सत्य मान लिया करते हैं और उसी असत्य की भूल-भुलैया में फिरते रहते हैं।[2] ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच कर पानप ने भली प्रकार आँख फाड़-फाड़ कर देखा, परन्तु उन्हें केवल ब्रह्म के जगत् में दूसरा कुछ भी दिखाई नहीं दिया। उसकी परम झाँकी में वे आनन्दित हो गए।[3]

जगत् एवं मानव-शरीर मिथ्या है, असत् है। इनका मोह आदि मनुष्य के लिए मृत्यु के समान ही है। महान् पुरुष इसी विचार से परहित-साधन ही को जीवन तथा मोह-लिप्सा, स्वार्थमय जीवन को घृणित जीवन ही कहते आए हैं।

मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य ही अपने स्वरूप को पहचानना माना गया है। पानप ने तो अपने निज-स्वरूप को जानने को ही मुक्ति कहा है।[4] यदि इस मनुष्य शरीर से हम जीवन के चरम लक्ष्य को न पा सके तो फिर विनाश ही है। उपनिषद् की भाँति पानप ने भी चरम लक्ष्य की प्राप्ति न करने पर भी विनाश की बात कही है।[5]

मनुष्य-जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति को कहा गया है पानप ने भी मुक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार किया है। पानप के अनुसार मोक्ष का क्या स्वरूप है, इसका वर्णन अगले पृष्ठों में किया जाएगा।

---

१. पानपबानी—१६·५
२. ,, १२·८-६
३. ,, ६·११
४. ,, ५·१४
५. ,, १६·५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोक्ष

मोक्ष-परम्परा, पानप का मोक्ष-वर्णन, मुक्ति से सम्बद्ध पानप का विशिष्ट मन्तव्य, मुक्त-अवस्थाएँ।

मुक्ति नहीं हरि नाम बिन, आदि-अन्त की यो है साख।
कहै पानप चाहे मुक्ति को, तो नाम हिरदय में राख॥
जगत कहै हम मुक्त भए हैं, यो मनवा नाच नचावै।
कहै पानप मुक्ति नहीं, जब लग मनवा हाथ न आवै॥
हरि का नाम हिरदय नहीं, करे दान और पुन्न।
कहै पानप ए आवागमनी, भुगते आवागमन॥
हरि दरसन बिन मुक्ती नहीं, जो कोटि सयान करो।
सुरत बांध जो मन कूं धारै, पानप तुरत ही पार करो॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७ | मोक्ष

अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष ये चार मनुष्य-जीवन के लिए परम लक्ष्य बताए गए हैं। इन चारों में भी मोक्ष को सर्वोत्तम और चरम लक्ष्य कहा गया है। मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, परमपद, परमगति और परम सुख आदि शब्द पर्यायवाची हैं। ये सब जीव की उस स्थिति एवं दशा की ओर संकेत करते हैं, जहाँ उसे त्रिविध ताप से छुटकारा मिल जाता है और वह अपने शुद्ध-बुद्ध, नित्य-मुक्त-स्वभाव में तल्लीन होकर जीवन-मरण के रहस्य को जान पाता है।

मोक्ष-परम्परा

भारतीय धार्मिक एवं दार्शनिक जगत् में मुक्ति अथवा मोक्ष का प्रतिपादन प्राचीन काल ही से होता चला आ रहा है। आरम्भ में दुःख से छुटकारा पाने को ही मुक्ति समझा गया। उस समय मृत्यु-भय से छुटकारा, दीर्घ जीवन की प्राप्ति तथा लौकिक सुख ही सर्वप्रिय प्राप्तव्य थे।

उपनिषदों में यज्ञादि कर्मकाण्ड को मान्यता नहीं दी। यहाँ अज्ञान-बन्धन से छुटकारे एवं ज्ञान द्वारा जीवन-ब्रह्म के अभेद साक्षात्-अनुभूति को मुक्ति कहा गया। कठोपनिषद् में स्पष्ट लिखा है—'जब अहंता, ममता-रूप समस्त अज्ञान ग्रन्थियाँ, संशय नष्ट हो जाते हैं और अभेद-भाव से साधक परिपूर्ण हो जाता है, तब वह अमर हो जाता है।'[1] यहाँ नामरूप के मोह को त्यागकर ज्ञान-प्राप्ति को जिससे जीव और ब्रह्म की अभेद सिद्धि हो, मोक्ष कहा गया है।

गीता में पूर्ण आत्म-ज्ञान को मोक्ष कहा गया है। गीता का कथन है—'जिसने इन्द्रिय, मन और बुद्धि का संयम कर लिया है तथा जिसके भय, इच्छा और

१. कठोपनिषद्—२/३/१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्रोध छूट गए हैं, वह मोक्ष-परायण मुनि सदा-सर्वदा मुक्त ही है।'[१] यहाँ साधक का विकार रहित होना तथा पूर्ण ब्रह्म-ज्ञान को मुक्ति कहा गया है।

न्याय-वैशेषिक दर्शनों के अनुसार पदार्थों के तत्त्व-ज्ञान से मुक्ति मिलना कहा है। मोक्ष दुःख के पूर्ण विरोध की अवस्था है। इसे अपवर्ग कहा जाता है। इसका तात्पर्य है, शरीर और इन्द्रियों के बन्धनों से आत्मा का विमुक्त होना।

सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति का कल्पित एवं आरोपित सम्बन्ध बन्धन है। इस बन्धन को ज्ञान के द्वारा दूर करना, पुरुष का अपने आपको पहचानना, प्रकृति को भी अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाना विवेक-बुद्धि है, जो मुक्ति ही है।

दूसरे शब्दों में मोक्ष का अर्थ है पुरुष को निजस्वरूप का ज्ञान होना अथवा आत्मा देश-काल से परे, शरीर और मन से भिन्न और स्वभावतः नित्य, अमर, अविनाशी है—इसका पूर्ण ज्ञान हो जाना मोक्ष है। जीव को जब यह अनुभूति हो जाती है तब उसका शरीर या मन के विकारों से प्रभावित होना बन्द हो जाता है और वह केवल उनका साक्षी रूप होकर रहता है।

योगदर्शन के अनुसार चित में विकार होते रहते हैं, और इस विकारी चित्त पर आत्मा का प्रकाश पड़ता रहता है तथा विवेकज्ञान के अभाव में आत्मा उन्हीं में अपने को देखने लगती है। फलस्वरूप वह सांसारिक विषयों से सुख-दुःख का अनुभव करने लगता और उनमें राग-द्वेष के भाव रखने लगता है। यही आत्मा का बन्धन है। योग-साधना के अनुकूल समाहित चित्त होकर ईश्वर के सतत चिन्तन से साधक की सात्विकी बुद्धि निर्मल होती है। योग-दर्शन का कथन है कि विवेकज ज्ञान प्राप्त होने पर बुद्धि-सत्व तथा पुरुष की शुद्धि एवं सादृश्य ही कैवल्य है, मुक्ति है।[२]

बौद्ध-दर्शन में मोक्ष के लिए निर्वाण शब्द का प्रयोग है। नागार्जुन के निर्वाण को परमार्थ-सत्य के समान कहा है, 'निर्वाण न तो छोड़ा जा सकता है और न प्राप्त किया जा सकता है। यह न तो नष्ट होने वाला पदार्थ है और न शाश्वत ही है। यह दोनों विकल्पों से भिन्न है।'[३] यहाँ निर्वाण सभी भेदों से रहित मन की निश्चेष्ट और विकार-विहीनता की अवस्था है।

वेदान्त-दर्शन के अनुकूल जीवात्मा और ब्रह्म में तात्त्विक भेद नहीं है। भ्रम के कारण जीव और ब्रह्म की पृथक्-पृथक सत्ता समझ ली जाती है। तत्त्व-ज्ञान होने पर भ्रम का उच्छेद हो जाता है और जीव-ब्रह्म का ऐक्य सिद्ध हो जाता है और यही मुक्ति है। आचार्य शंकर के अनुसार जब नामरूप की दशा को त्यागकर और किसी भी प्रकार का विशिष्ट आत्मभाव न रहे, तब मुक्त-दशा होती है।[४]

---

१. गीता—५/२८
२. पातंजलयोगसूत्र-३/५५
३. मध्यमकारिका २०
४. मुण्डक पर शां० भा० ३/२/८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्यान्य दार्शनिकों ने भी मोक्ष का वर्णन किया है। मुक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य सभी दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। पानप में भी मुक्ति-धारणा पायी जाती है जिसका विवेचन यहाँ किया जाएगा।

पानप का मोक्ष-वर्णन

भारतीय दार्शनिक मोक्ष-परम्परा का प्रभाव पानप पर परिलक्षित है। साधना की प्रारम्भिक अवस्था में पानप ने भी दुःख-निवृत्ति को ही मुक्ति कहा है।[1] यहाँ जन्म-मरण का मूल-कारण जीव की अज्ञानावस्था है। भ्रमवश जीव अपने को कर्ता, भोक्ता आदि समझ लेता है और जगत् के नामरूप में उलझ कर दुःख उठाता है तथा आवागमन से नहीं छूट पाता। जगत् के माया-मोह बन्धन ही उसे मुक्ति प्राप्त नहीं करने देते। साधना द्वारा इन भव-बन्धनों से निर्बन्ध होना ही अमरत्व है, मुक्ति है। दुःख और सन्ताप उस समय तक नहीं छूटते जब तक मन और हृदय की अज्ञान ग्रन्थियाँ नहीं छूट जातीं। जब तक चित्त में विकार और परिणाम होते रहते हैं तब तक उन पर आत्मा का प्रकाश पड़ता रहता है और विवेक-ज्ञान के अभाव में आत्मा उसी में अपने को देखती है। फलस्वरूप वह सांसारिक विषयों से सुख-दुःख का अनुभव करने लगता है और उनमें राग-द्वेष के भाव रखने लगता है। यही भव-बन्धन है और यही है आत्मा के लिए भ्रमरूप अज्ञान।

इन भव-बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए मन के इन विकारों का परित्याग करना परमावश्यक कार्य है। जब कार्यचित्त का धारा-प्रवाह बन्द हो जाता है तब वह शान्तावस्था में हो जाता है और आत्मा को अपने यथार्थ-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, अतएव पानप मन का विकार-रहित होना मुक्ति को पाना ही समझते हैं।[2] शान्त चित अथवा विकार-रहित मन विवेक-ज्ञान से परिपूर्ण हो जाता है। साधक में समदर्शिता का आविर्भाव होता है। साधक को सभी प्राणियों में अपना ही स्वरूप दिखाई पड़ने लगता है। साधक का शुद्ध-सात्विक हृदय सद्व्यवहार में तल्लीन रहता है। इसी से चित्त की शान्त अवस्था को पानप ने निर्वाण-प्राप्ति की अवस्था कहा है।[3]

पानप का मोक्ष-वर्णन योग-दर्शन तथा बौद्ध-दर्शन के अनुसार है। यहाँ जीते-जी मुक्त-पुरुष की कल्पना है। सम्यक् ज्ञान प्राप्त होने पर भी यदि शरीर चलता रहता है तब उसके कर्मफल की लिप्सा साधक में नहीं होती। शरीरांत होने तक शरीर कुम्हार के चाक के समान पहले जोर के द्वारा स्वतः चलता ही रहता है। शरीर के उच्छेद हो जाने पर साधक को ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक कैवल्य की प्राप्ति होती

---

१. पानपबानी ५. ६
२. ,, १७. ११-१३
३. ,, १२. ११-१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। योग इसे स्वरूप-प्रतिष्ठा कहता है।[1] साधक का सभी पुरुषार्थ शून्य हो जाता है। अधिकारी चित शान्त होता है, आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है और यही कैवल्य है, मुक्ति है।

पानप ने निर्वाण पद को 'निरभैपद' भी कहा है।[2] सर्वहित में लगा हुआ साधक, जो समदर्शिता के भाव से परिपूर्ण है, उसे भय का तो कोई कारण ही नहीं रह जाता।

पानप ने परमपद को अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होने की बात कही है। पानप ब्रह्म तथा जीवात्मा में तात्त्विक विभेद नहीं मानते, ये दोनों मूलतः अद्वैत-तत्त्व हैं। भ्रम के द्वारा यह भेद उत्पन्न हो जाता है।[3] ज्ञान के द्वारा भ्रम अथवा अज्ञान का निराकरण हो जाता है और दोनों का तादात्म्य हो जाता है अथवा आत्मा अपने नित्य-मुक्त स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाती है।

पारमार्थिक दृष्टि से मुक्ति न तो उत्पन्न होती है, न पहले से अप्राप्त है। यह प्राप्त ही की अप्राप्ति है। जो सत्य सर्वदा से शाश्वत रूप में विद्यमान है, उसी की अनुभूति ही मुक्ति है। अपने ही अज्ञान से अपने बन्धन में बँधकर दुःखी जीव उन बन्धनों से मुक्त होने की चेष्टा करता है। जैसे किसी व्यक्ति के गले में हार पड़ा हुआ है और भूल से वह हार को इधर-उधर ढूँढ़ता फिरता है। किसी प्रकार उसे जब पता लगता है कि हार तो उसी के गले में है तब वह प्रसन्न होता है। मुक्ति भी गले का हार ही है। इसी से पानप ने बन्धन को अज्ञानकृत कहा है। अतः इस अज्ञान का आवरण दूर कर देना और निजस्वरूप का ज्ञान लेना ही मुक्ति है। मुक्ति का यह भाव अद्वैत वेदान्त के अनुकूल है। यहाँ मोक्ष का अर्थ है ब्रह्मानुभूति। द्वैत-भावना का लोप हो जाना ही 'मुक्ति' है। पानप के अनुसार साधक और साध्य का भेद उसी समय तक रहता है जिस समय तक तत्त्वज्ञान न हो जाए। तत्त्व-ज्ञान के उपरान्त सभी भेद विलुप्त हो जाते हैं और आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है।

पानप की स्पष्टोक्ति है कि मुक्ति कहीं बाहर रखी हुई वस्तु नहीं है और न वह कहीं से लायी ही जा सकती है। मुक्ति तो अपना मुक्त-स्वभाव ही है। मुक्ति पाकर कहाँ जाना होता है, अर्थात् कहीं भी नहीं। बैकुण्ठ आदि काल्पनिक ही है। ब्रह्म और जीवात्मा पारमार्थिक दृष्टि से दो नहीं हैं। जब दोनों का एक ही स्वरूप है, तब मुक्ति देना और पाना भ्रम-मात्र ही है। सर्वत्र एक अन्ततम अस्तित्त्व अथवा मूल-तत्त्व व्याप्त है, अज्ञान ही से विभेद प्रतीत होता है। जब तक तत्त्वज्ञान नहीं हो जाता तभी तक उपास्य और उपासक का भेद दिखाई पड़ता है। तत्त्वज्ञों

---

१. योगसूत्र ४/३४
२. पानपबानी १६·५
३. पानपबानी—२०·५-७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के निकट यह विभेद नहीं रहता और वे अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर निमग्न रहते हैं।[१]

ब्रह्मानुभूति के लिए पानप ने कई दृष्टान्त प्रस्तुत किए हैं। मिट्टी के घड़े में जल भरा है, उसमें बिम्ब का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। घड़े के फूट जाने पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब एक रूप हो जाते हैं और इसी प्रकार तत्त्व-ज्ञान से जीवात्मा एवं ब्रह्म का विभेद नष्ट हो जाता है और आत्मा अपने शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप में स्थित हो जाता है।[२]

दो पात्रों के जल को परस्पर-मिश्रित करके दोनों के जल को देखकर यह बताना नितान्त असम्भव है कि कौन से पात्र में किस पात्र का जल है। इसी प्रकार अद्वैत स्थिति में जीव और ब्रह्म का विभेद लुप्त हो जाता है, वहाँ केवल ब्रह्मानुभव ही शेष रहता है।[३]

साधक और साध्य का विभेद नष्ट हो जाता है। ब्राह्मीस्थिति में द्वैत का तनिक-सा भी भाव नहीं रहता। इस अवस्था में कोई भी नहीं पहचान सकता कि साध्य कौन और साधक कौन है। वहाँ परिपूर्ण रूप में अद्वैत ही अद्वैत होता है।[४]

पानप की मुक्ति-भावना उपनिषद् एवं अद्वैत वेदान्त के अनुकूल है। कहीं-कहीं उस पर योग-दर्शन तथा बौद्धमत की छाया भी है। पानप मोक्ष को पूर्ण मुक्तावस्था मानते हैं। उनका विश्वास है कि मोक्ष की अवस्था में सब प्रकार के बन्धन मुक्तात्मा को अभिभूत नहीं कर पाते। सब प्रकार के बन्धनों से निर्बन्ध होकर मुक्त आत्मा अविनाशी-स्वरूप अर्थात् शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है।

मुक्ति से सम्बद्ध पानप का विशिष्ट मन्तव्य

पानप ने अपनी रचनाओं में मुक्ति, परमपद, निरभैपद, निर्वाण आदि शब्दों का प्रयोग किया है। पानप मुक्ति अथवा मोक्ष को अपूर्ण अवस्था से पूर्ण अवस्था पर पहुँचना नहीं मानते। वे अमरत्व या नित्यत्व को सामयिक घटना भी नहीं समझते। पानप के अनुसार मुक्ति का अर्थ है अपने नित्य, अविनाशी, शाश्वत, शुद्ध, बुद्ध शरीर एवं मन से भिन्न मुक्त स्वभाव का ज्ञान होना। तत्त्वज्ञान से जब ऐसी अनुभूति होती है तब आत्मा का शरीर अथवा मन के विकारों से प्रभावित होना बन्द हो जाता है और वह उनका साक्षी-रूप होकर रहता है।

पानप ने अनेक स्थलों पर अपने स्वरूप को पहचानने का उपदेश दिया है। अपने स्वरूप को जान लेने पर शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।[५] अपने स्वरूप को

---

१. पानपबानी—१५·१७-२०
२. ,, १५·१८-२०
३. ,, १६·१३-१५
४. ,, ५·७-६
५. ,, १६.६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जान लेने पर आवागमन से छुटकारा मिल जाता है ।[१] अपने आपको जान लेने पर त्रिविध ताप से छुटकारा मिल जाता है ।[२] आत्मा के स्वरूप को न जानने से मुक्त होना कठिन ही है ।[३] इससे पानप का तात्पर्य अपने शुद्ध स्वरूप को पहचानना ही है ।

पानप मुक्ति को बाहर की वस्तु नही मानते । उसके लिए वनखण्ड जाना, क्लिष्ट साधना, पूजा-पाठ, बाह्योपचार की कोई अपेक्षा नहीं । बैकुण्ठ-गमन स्वर्ग प्राप्ति आदि को वे मुक्ति नहीं मानते । उनका मोक्ष से तात्पर्य है अपने शुद्ध, बुद्ध, शाश्वत स्वरूप का ज्ञान होना तथा सभी भूतों में मूल तत्त्व को ही जानना ।[४]

पारमार्थिक सत्य के रूप में आत्मा ही सर्वत्र व्याप्त है । उसे ही पानप अपना ही स्वरूप कहते हैं, अथवा ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्य है, तथा ब्रह्म और जीवात्मा में तात्त्विक भेद कुछ भी नहीं है । जीवात्मा भी ब्रह्म की भाँति सर्वत्र व्याप्त, अद्वैत, अनन्त, अनश्वर, अतीत, निराकार, निर्विकार है ।[५]

माया के कारण हमें भ्रम हो जाता है और हम अपने शुद्ध स्वरूप को भूलकर शरीर इन्द्रियों के मोह-लोभ में फँस जाते हैं और सुख-दुःख के भोक्ता बन जाते हैं । जब तक यह अज्ञान-ग्रन्थि बनी है, तब तक यह नामरूपात्मक संसार हमारे लिए पाश है, बन्धन है । पानप ने इस अज्ञान-ग्रन्थि का ही उच्छेद करने की बात अनेक बार कही है । हृदय की अज्ञान-ग्रन्थि का उच्छेद होते ही जीवात्मा अपने शुद्ध, बुद्ध स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाता है ।[६]

मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं जो किसी स्थान में रखी हो, अथवा यह भी नहीं कि उसकी प्राप्ति के लिए किसी गाँव या प्रान्त में जाना पड़े । वास्तव में हृदय की अज्ञान-ग्रन्थि के नाश हो जाने को ही मोक्ष कहते हैं । यह अज्ञान-ग्रन्थि है माया, मोह, लोभ, क्रोध, बैर, द्वेष, मद और मत्सर आदि । इनके कारण हम 'मैं और तू' के विभेद में बँट जाते हैं । एकत्त्व को भूलकर नानात्व में परिणत हो जाते हैं ।[७]

इस अज्ञान-ग्रन्थि का उच्छेद होना अत्यावश्यक है । हृदय की पवित्र दशा के बिना भ्रम अथवा मिथ्या ज्ञान का उच्छेद हो ही नहीं सकता । पानप का विश्वास है

---

१. पानपबानी—१६ १२
२. ,, १६·५
३. ,, ११·८
४. ,, १२·५
५. ,, १६·२४
६. ,, २२·१-३
७. ,, २०·५-७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि मुँह से ज्ञान बखानने से कुछ नहीं होता, यदि हृदय पवित्र नहीं है तो शरीर की पवित्रता से काम नहीं चलेगा ।[१]

नामरूपात्मक जगत्, इसके सभी विषय, धन, सम्पदा, कनक, कामिनी और यह शरीर कुछ भी अपना नहीं है । ये सब नश्वर हैं, परिवर्तनशील हैं । इनकी मोह-माया में फसना व्यर्थ है । यहाँ अपना कुछ नहीं । पानप इन नश्वर पदार्थों के प्रति आसक्ति को अज्ञान-ग्रंथि ही कहते हैं ।[२]

नामरूप से विमुक्त हो जाना ही अज्ञान ग्रंथि से छुटकारा पाना है । नामरूप के प्रति आसक्ति ही बन्धन है, अज्ञान है । जिस वस्तु को हम अपना व्यक्तित्व कह कर पुकारते हैं, अथवा 'अहं' की ध्वनि से जिसे नित्य-प्रति पोषित करते हैं, वही तो बन्धन है । इस अहं भाव को जब हम ब्रह्म-भाव में परिणत कर देते हैं, तभी अज्ञान का उच्छेद हो जाता है और सत्य-स्वरूप की प्रतिष्ठा हो जाती है ।

नामरूप चाहे भूत का हो, चाहे भविष्यत् का और चाहे वर्तमान का, वह नश्वर है और आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानने के लिए इनके प्रति विमोह छोड़ना ही होगा । इसी नाम-रूप के विमोह के परित्याग की बात पानप ने निरन्तर कही है । जो इनसे नहीं बच पाता, वह भुजंग के समान विषैला हो जाता है, उसमें सर्वत्र विषय ही समाए रहते हैं, वह अज्ञानी है, विष-स्वरूप हो जाता है ।[३]

साधना, इन्द्रिय निग्रह एवं मनोयोग आदि के द्वारा हम इन नाम तथा रूप और विषयों के विमोह का परित्याग कर सकते हैं । निर्मल हृदय साधक निष्काम, निर्वैर, निर्लेप, निरासक्त और निस्संग हो जाता है । उसमें समरसता और समदर्शिता का आविर्भाव हो जाता है ।

गीता में निष्काम कर्मयोगी के लक्षण दिए गए हैं, जो पानप के सन्त-लक्षणों से मिलते-जुलते हैं । नाम-रूप के विमोह-परित्यागी को पानप ने सन्त की संज्ञा दी है । यह निर्वैर, निष्काम, निर्विषय और निस्संग होता है ।[४] सन्त स्तुति, निन्दा, आशा आदि का त्याग कर देता है, वह मान और अभिमान से निर्लेप हो जाता है । उसके निकट सभी विभेद लुप्त हो जाते हैं ।[५] जितने भी स्त्री-पुरुष हैं, उन सबकी अन्तरात्मा में सन्त अपना ही सत्य-स्वरूप देखता है । वह विनयशील होता है और सभी धर्मों के प्रति सद्भावना रखता है ।[६]

पानप का सन्त-मन सभी विकारों का परित्याग कर देता है । उसे किसी

---

१. पानपबानी—२४·२-५
२. ,, ६·१७
३. ,, १०·१२-१४
४. ,, २०·६
५. ,, ११·७
६. ,, १२·३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का भय नहीं रहता। उसके अज्ञान-आवरण का उच्छेद हो जाता है और वह अपने मुक्त-स्वभाव, शुद्ध, बुद्ध, नित्य अविनाशी स्वभाव को प्राप्त होता है।

पानप का पद-निर्वाण जीते जी ही प्राप्त होता है। स्थितप्रज्ञ सन्त समदर्शिता के साथ सभी जीव-जन्तु एवं प्राणियों के अन्तरात्मा में अपना मुक्त-स्वरूप देखता है। सभी के साथ यथोचित व्यवहार करता है, वह निर्लेप साधक मुक्त हो जाता है। बन्धकारक विकारों का उसमें एकदम अभाव रहता है और इसी कारण वह निर्भय हो जाता है।

आत्म-प्रतीति अर्थात् सबके प्रति सहानुभूति और सद्भावना का व्यवहार ही जीवन है। भ्रम तथा भय ही मृत्यु है। विश्व का यह प्रपंच, नामरूप और विषय आदि ही बन्धन हैं। आत्मा का निर्भीक और शुद्ध, बुद्ध स्वभाव ही मुक्ति है।

शुद्ध चित्त, निष्काम, मुक्त स्वभाव वाले पुरुष का जीवन और आचरण समाज के लिए आदर्श होते हैं। पानप ने निष्काम-भाव से जीते जी मुक्त स्वभाव की प्रतिष्ठा का ही प्रतिपादन किया है। पानप की मुक्ति शरीरांत होने पर मिलने वाली मुक्ति नहीं। वह तो जब और जिस समय साधक का हृदय निर्मल होगा, साधक निर्वैर, निरासक्त, निस्पृह और निष्काम भाव वाला हो जाएगा। तभी उसका शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव उसे प्राप्त हो जाएगा।

मुक्त-स्वभाव वाला सन्त लोक-सेवा के कार्यों में लिप्त रहकर निरन्तर निष्काम-भाव से लोक-सेवा करता रहे, यह पानप का मन्तव्य है। केवल मुक्ति पाने की भावना से नाना प्रकार के पूजा-पाठ, विधि-विधान तथा कर्मकाण्ड में उलझे हुए साधकों को वे भ्रम में फँसा हुआ ही कहते हैं।[1]

मुक्ति की यह मौलिक धारणा पानप ने विश्व को दी, इसके द्वारा विश्व बन्धुत्व, लोकसेवा तथा निष्काम-भाव से जगत्-व्यवहार करते हुए जीवन-यापन को मुक्ति कहा, अमरत्व कहा।[2]

मुक्त अवस्थाएँ

मुक्त पुरुष जगत् में रहते हुए लोक-कल्याण के कार्यों में व्यस्त रहता है। यह मुक्तात्मा पुनः अपने को शरीर इन्द्रिय आदि नहीं समझता। जगत् का सम्पूर्ण असत् प्रपंच उसके सन्मुख विद्यमान अवश्य रहता है परन्तु अपने संयम के बल से फिर वह इन नामरूपात्मक विषयों से ठगा नहीं जाता। सांसारिक विषयों के प्रति उसे कोई आसक्ति नहीं रहती और न वह कभी उन्हें पाने की इच्छा रखता है, वह निस्पृह भाव से रहता है। उसे जीवितावस्था में ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, ऐसा शंकराचार्य का विचार है।[4]

---

१. पानपबानी—१४·६
२. ,, २१·६
४. शांकरभाष्य—१/१/४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१. जीवन्मुक्त

मुक्तात्मा की इस अवस्था को जीवन्मुक्ति-अवस्था कहते हैं। पानप जीवन्मुक्त साधकों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हैं। जीवन्मुक्त समदर्शी होता है, भ्रम और संशय से रहित होता है। पानप ने कहा है कि वह विकारहीन होता है, उसके हृदय की अज्ञानग्रंथि का उच्छेद हो जाता है। वह निर्वैर, निष्काम, निर्विषय तथा निस्संग हो जाता है।[1]

पानप ने जीवन्मुक्त का वर्णन किया है कि वह जगत् प्रपंच में निर्लेप रहता है। वह अपने मनोविकारों को जीत लेता है। गृहस्थ-धर्म निरासक्त एवं निष्काम-भाव से करता है। सबके प्रति सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार करके निर्भीक हो जाता है। उसे अपने मुक्त-शुद्ध-बुद्ध स्वरूप में विश्वास रहता है और वह उसी में लिप्त रहता है। एक प्रकार से वह भगवान्-स्वरूप ही होता है।[2]

२. विदेह मुक्त

पानप में 'विदेह मुक्त' मुक्तात्माओं का वर्णन भी पाया जाता है। तत्त्वज्ञान से संचित कर्म का क्षय तथा क्रियमाण कर्म का निवारण होता है और इस प्रकार पुनर्जन्म से छुटकारा मिल जाता है। प्रारब्ध-कर्म के निवारण का किया जाना सम्भव नहीं होता। प्रारब्ध-कर्मफल का भोग करने के लिए यह शरीर रह जाता है और जब प्रारब्ध की शक्ति समाप्त हो जाती है, तो उसका भी अन्त हो जाता है। जिस प्रकार कुम्भकार का चक्र डण्डा उठा लेने पर भी कुछ देर तक पहले के जोर के बल पर घूमता रहता है और वेग समाप्त होने पर आप-से-आप रुक जाता है। वैसे ही जब स्थूल और सूक्ष्म शरीर का अन्त हो जाता है, तब जीवन्मुक्त को जो अवस्था मिलती है उसे 'विदेह मुक्ति' कहा जाता है।

पानप के अनुसार पूर्ण शरीरान्त होने के कुछ समय पूर्व ही विदेह-मुक्ति की अवस्था का प्रारम्भ हो जाता है। इस अवस्था का आरम्भ होते ही साधक की शारीरिक क्रियाओं में निष्क्रियता आ जाती है।[3] वह हँसना-बोलना, चलना-फिरना आदि शारीरिक क्रियाओं के प्रति उदासीन हो जाता है।[4] अपनी अन्तरात्मा में ही ध्यानावस्थित रहता है। अपनी आत्मा में तल्लीन रहता है। अपने नित्य-मुक्त स्वभाव का परमरस उसे बाहरी संसार में उलझने नहीं देता है।[5] उसे अपने शरीर की सुध भी नहीं रह जाती :

> हर रस पीया जाँणिए, जो कबहु न जाय खुमार।
> मैंमंता घूमत रहे, नाँही तन की सार ॥[6]

---

१. पानपबोध—१६·१२-१४
२. पानपबानी—१३·७
३. ,, १०·१
४. ,, १२·३-५
५. ,, ११·५, ६
६. ,, २·६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह परमहंस साधक अपने ही स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर आनन्द में लीन रहता है। उसका ध्यान धारा-प्रवाह अखण्डित रूप में निज-स्वरूप में ही लिप्त हो जाता है। पानप उसे 'हर' में तल्लीन होना या समा जाना कहते हैं।[1] ऐसे हर जन के सभी कर्मफल क्षय हो जाते हैं और स्थूल शरीर का पतन हो जाता है।[2] पानप के अनुसार वह अमर हो जाता है। आवागमन से छूट जाता है।[3]

पानप का यह मुक्तावस्थाओं का वर्णन अद्वैत वेदान्तानुकूल है। पानप का मोक्ष-वर्णन तथा मुक्तावस्थाओं का वर्णन भारतीय-दर्शन-शृखला के अनुरूप है। मुख्य रूप में वह उपनिषद्, गीता तथा अद्वैत वेदान्त के अनुकूल है।

पारमार्थिक सत्य की दृष्टि से जगत् के नामरूपों को पानप ने विनाशशील तथा असत् कहा है, परन्तु व्यावहारिक सत्ता के रूप में पानप जगत् तथा मानव-शरीर की उपयोगिता बताते हैं।[4] पानप ने जगत् से भाग खड़े होने की निन्दा की है तथा जगत् में रहते हुए सत्य-ज्ञान की प्राप्ति और निज-स्वरूप की प्राप्ति को चरम लक्ष्य कहा है।[5]

नामरूपात्मक जगत्-प्रपंच महान् बन्धन है। इस बन्धन में जो निर्बन्ध होकर रहे और मुक्तावस्था का आनन्द ले सके, वही धन्य पुरुष है। पानप ने इस प्रपंचात्मक जगत् में रहते हुए ही परमानन्द की प्राप्ति के लिए जोर दिया है।[6]

पानप के अनुसार अपने शुद्ध, बुद्ध, नित्य और मुक्त स्वभाव को पहचानना ही मुक्ति है। मुक्ति जीते जी प्राप्त हो सकती है।[7] मन के विकारों से जूझते हुए शूर की भाँति निष्काम, निर्लेप, निरासक्त रह कर लोक-कल्याण के कार्यों में व्यस्त रहना 'जीवन्मुक्ति' है।

जीवन-मुक्त वन्धनों से निर्बन्ध हो गया, उसे किसी प्रकार की न अभिलाषा ही रही, न आकांक्षा और न भय ही रहा। अतः मृत्यु-जैसा भय भी उसके लिए कुछ नहीं। शरीर रहे या न रहे उसे इसका मोह नहीं। वह उसके प्रभाव से परे है और अपने मुक्त-स्वभाव में प्रतिष्ठित है।

उक्त अवस्था साधक को सरलता से नहीं प्राप्त होती। बाह्याश्च वृत्तियों को अन्तर्मुखी करना विरले साधकों का ही काम है। निस्पृह, निरासक्त, निर्वैर एवं मुक्तावस्था की प्राप्ति के हेतु साधक को ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, मुक्तियोग तथा निष्काम कर्मयोग की साधना करनी अनिवार्य है। तत्त्वज्ञान एवं तत्त्वदर्शन की उपलब्धि के लिए साधना-पक्ष की जानकारी तथा उसके विधि-विधानों का पालन करना सत्कर्तव्य है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पृथक् प्रकरण में पानप के साधना-पक्ष का प्रतिपादन किया जाएगा।

---

१. पानपवानी—१७.६
२. ,, १३.५
३. ,, १७.३
४. ,, १२.४
५. ,, २.७-९
६. ,, ४.३-७
७. ,, ४.१२-१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञान-साधना (ज्ञान-योग)

ज्ञान-मीमांसा, पानप का ज्ञान-विचार, ज्ञान का स्वरूप, ज्ञान की कोटियाँ, ज्ञान का अबाधित्व, ज्ञान की स्वत: प्रामाण्यता, ज्ञान का परत: अप्रमाण्य सिद्धान्त, ज्ञान की श्रेणियाँ, सत्यज्ञान की उपलब्धि, प्रमाणिक लाभ के स्रोत, ज्ञान प्रकाशक गुरु, ज्ञान-विचार की विशिष्टता।

ज्ञान सोई तामे पावै चरण, सहज मिटत है जनम-मरन ।
ध्यान सोई जासूं प्रभु को देखे, कहै पानप सूखे पुरुष अलेषे ।।
ज्ञान ध्यान तो एक है, हरि मिलने की राह ।
दूजा ज्ञान कहाँ से आया, यो जग धक्के खाय ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८ | ज्ञान-साधना (ज्ञान-योग)

केवल इतना जान लेने से कि ब्रह्म निर्गुण और अव्यक्त है, आत्मा अजर-अविनाशी है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मूल-तत्त्व व्याप्त है तथा आत्मा के नित्य, मुक्त, शुद्ध, बुद्ध-स्वरूप का ज्ञान मुक्ति है, पर्याप्त नहीं है। इन सिद्धान्तों की अनुभूति एवं तत्त्व का साक्षात्कार पाना जीव के लिए परम साध्य है। बिना अभ्यास और अनुभव के केवल कोरा ज्ञान व्यर्थ है। मूल-तत्त्व का साक्षात्कार अथवा आत्मा के शुद्ध स्वरूपावस्थान के निमित्त साधक को कई प्रकार के प्रयास, प्रयत्न तथा अध्यवसाय करने पड़ते हैं, जिन्हें साधना की संज्ञा दी जाती है।

इन्द्रिय, मन तथा वासनाओं पर विजय पाने के लिए 'श्रवण' अर्थात् गुरु के उपदेश सुनना, 'मनन' अर्थात् उन उपदेशों पर युक्तिपूर्वक विचार करना तथा 'निदिध्यासन' अर्थात् उन सत्यों का बारम्बार ध्यान करना साधक के लिए परमावश्यक होता है। साधना के द्वारा चित्त को निर्मल किए बिना निजस्वरूपा-वस्थान असम्भव ही है।

चित्त-शुद्धि के निर्मित ही भारतीय साधना-पक्ष विभिन्न धाराओं के रूप में प्राचीन काल से प्रवाहित होता चला आ रहा है। भारतीय साधकों ने कभी यज्ञ-याग को प्रमुख समझा और कभी ज्ञान ही को सर्वोत्तम बताया। कभी साधना-पक्ष में भक्ति की धाक जम गई तो कभी कर्म-योग ही का बोलबाला रहा। साधना की ज्ञान, योग, भक्ति तथा कर्म की धाराओं में समय-समय पर परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होते रहे हैं। कभी-कभी इन धाराओं में परस्पर टक्कर भी हो गयी और कभी-कभी पारस्पर सामंजस्य भी।

पानप महान् साधक थे उनका सम्पूर्ण जीवन सत्य की साधना में ही व्यतीत हुआ था। वे भारतीय साधना-पक्ष की ज्ञान, योग, भक्ति एवं कर्म योग की धाराओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से पूर्णतया परिचित थे। इन सभी मार्गों का अनुसरण करके उन्होंने अनेक तथ्यों का उद्घाटन किया और साधना-पक्ष को बहुमूल्य देन दी।

ज्ञान-मीमांसा

साधना-पक्ष में ज्ञान का बड़ा ही महत्त्व है। प्रतीति, बोध, पहचान, जानकारी, अनुभव आदि शब्द ज्ञान के पर्याय हैं। वस्तुओं की अभिव्यक्ति को ज्ञान या बुद्धि कहा जाता है। जिस प्रकार किसी दीपक का प्रकाश वस्तुओं को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ज्ञान भी अपने विषयों को प्रकाशित करता है।

ज्ञान की उत्पत्ति, ज्ञान की सीमा तथा ज्ञान का विस्तार आदि पर विचार करने वाली दर्शन की शाखा को ज्ञान-मीमांसा अथवा ज्ञान-विज्ञान अथवा ज्ञान-योग की संज्ञा दी गई है। साधना का यह प्रथम-चरण है।

ज्ञान-मीमांसा दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत कई वाद प्रचलित हैं, जो ज्ञान के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। बुद्धिवाद सब प्रकार के सत्य-ज्ञान को जन्मगत तथा प्रागनुभव मानता है। इसके अनुसार मनुष्य के मस्तिष्क में आधारभूत प्रत्यय होते हैं, जो जन्म-समय में ईश्वर हमारे मनस् पर अंकित कर देता है। ये प्रत्यय सत्य और स्पष्ट होते हैं। इन स्वयं स्पष्ट जन्म-गत प्रत्ययों से हम अन्य सत्यों को निष्कर्ष-रूप में प्राप्त करते हैं। सत्य ज्ञान बुद्धि के द्वारा ही प्राप्त होता है।

प्रतीतिवाद सब प्रकार के ज्ञान को पश्चादानुभव मानता है। प्रतीतिवाद के अनुसार ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है। सभी प्रकार का ज्ञान अनुभव तथा अनुभव के आगमन द्वारा निर्मित होता है। बुद्धि की कुछ भी देन नहीं है। समालोचनावाद ज्ञान को बुद्धि तथा अनुभव दोनों के संयोग से उत्पन्न करता है। इसके अनुसार किसी भी ज्ञान को केवल बुद्धि द्वारा अथवा दूसरे को केवल अनुभव द्वारा कहना उचित नहीं। अकेले बुद्धि तथा अकेले अनुभव, दोनों अलग-अलग किसी भी सत्यज्ञान के प्रदर्शन में असमर्थ हैं। इस प्रकार ज्ञान के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

आत्मा और अनात्म-विषय में भेद के ज्ञान का अभाव अर्थात् अज्ञान अथवा अविवेक ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। अतः दुःखों से परित्राण पाने के लिए तत्त्वज्ञान परमावश्यक है। तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में ज्ञाता और ज्ञेय, द्रष्टा और दृश्य की एकात्मकता चिरकाल से सापेक्षिक रही है। ब्रह्म जिसका विषय है, वह ज्ञान अजन्मा तथा नित्य है, उस अजन्मा ज्ञान से अजन्मा आत्म-तत्त्व स्वयं ही जाना जा सकता है।

चिरकालीन ज्ञान-स्रोत वेदों में आत्मज्ञान को संकेत देता है—

'तमेव विद्वान न विभाय मृत्योः 'अर्थात् आत्मज्ञानी पुरुष मृत्यु से नहीं डरता।'[1]

---

१. अथर्ववेद—१०·८, ४४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपनिषदों में भी ज्ञान की पूर्ण प्रतिष्ठा है। यहाँ आत्मज्ञान को चरम लक्ष्य माना गया है। गीता में ज्ञान की सर्वोत्कृष्टता का प्रतिपादन है। गीता कहती है—ज्ञान समस्त गुह्यों में राजा अर्थात् श्रेष्ठ है। यह राज-विद्या श्रेष्ठ, पवित्र, उत्तम और प्रत्यक्ष बोध देने वाली है। यह आचरण करने में सुखकारक है।[1] ज्ञान के विषय में कहा गया है—'जिस ज्ञान से यह ज्ञात हो कि विभक्त अर्थात् भिन्न-भिन्न प्राणियों में एक ही अविभक्त और अव्यय-भाव आत्मा है वही सही और सात्विक ज्ञान है।[2] यहाँ भी ज्ञाता और ज्ञेय की एकात्मकता को ही सत्य-ज्ञान कहा गया है तथा आत्म-ज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

षड्दर्शनों में भी ज्ञान-गौरव को सराहा है। भारतीय अन्यान्य दार्शनिकों ने भी ज्ञान-विज्ञान पर विचार किया है। द्वैत एवं विशिष्टाद्वैत आदि दर्शनों ने ज्ञान-विचार के साथ-साथ भक्ति पर अधिक बल दिया है। नाथ-सम्प्रदाय में भी ज्ञान का महत्त्व है। गोरखनाथ ब्रह्म ही को ज्ञान कहते हैं। भारतीय दार्शनिक चाहे वे अस्तिक हों या नास्तिक सभी ने ज्ञान-मीमांसा पर विचार किया है तथा सभी ने ज्ञान-प्राप्ति को मुक्ति का प्रमुख साधन माना है।

भारतीय साधक पानप के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे ज्ञान-विचार की ओर उन्मुख हुए। पानप के अनुसार ज्ञान-विचार जीवन को सफल बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

पानप का ज्ञान विचार

ज्ञान-उत्पत्ति की प्रारम्भिक अवस्था के सम्बन्ध में पानप बुद्धि का प्रयोग स्वीकार करते हैं। बिना बुद्धि के ज्ञान होना असम्भव है। जिस मनुष्य में बुद्धि नहीं अर्थात् भले-बुरे का विचार नहीं करता, जो दूसरों का अन्धानुकरण तो करता है। परन्तु किसी तथ्य को बुद्धि की कसौटी पर नहीं कसता वह भू-भार है, अज्ञानी है।[3]

तर्क-वितर्क से एक तथ्य दूसरे तथ्य से कट जाता है और इस प्रकार सत्य उससे ओझल हो जाता है। तर्क-वितर्क अनेकत्व का सर्जन करते हैं और फिर इन्द्रियातीत तथा परमार्थ सत्य के विषय में तर्क-वितर्क करना तो मोटी बुद्धि का काम है।[4] अतएव पानप के अनुसार केवल बुद्धि-ज्ञान ही सत्य-ज्ञान नहीं है। सत्य-ज्ञान के लिए अनुभव की अपेक्षा है। बिना स्वानुभूति की कसौटी पर कसे हुए पानन किसी भी ज्ञान को प्रामाणिक ज्ञान नहीं मानते। सद्गुरु के प्रति पानप को अनन्य श्रद्धा है। गुरु-उपदेश को वे महत्त्व देते हैं। उपदेशामृत पर विचार एवं मनन

---

१. गीता—९·२
२. ,, १८·२०
३. पानपबानी-ज्ञानसुषमनी—८
४. पानपबोध—१·८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना और उसके स्वानुभूति की कसौटी पर खरा उतरने के उपरान्त ही पानप अपनी बात कहते हैं—

अगम सुरत धर आपनी, जांहो ब्रह्मा की ठाँव ।
दरसन प्रकटे पानपा, मैं दरसन पे बलि जाऊँ ।।
कहन सुनन की बातड़ी, योह तो नाहीं ज्ञान ।
ज्ञान सुरत परबोधना, पानप धरे अगम कूँ ध्यान ।।[1]

अतएव पानप के अनुसार ज्ञान की सामग्री अनुभव से और उसका रूप बुद्धि से प्राप्त होता है । ज्ञान के क्षेत्र में बुद्धि और अनुभव दोनों की ही आवश्यकता है । व्यावहारिक दृष्टि से बिना ज्ञान कोई सामग्री प्राप्त नहीं की जा सकती और बिना बुद्धि के उसे कोई निश्चित रूप नहीं दिया जा सकता । बुद्धि और अनुभव की संयुक्त उपज ज्ञान है । कोई बुद्धिवाद अथवा कोरे अनुभववाद से अलग-अलग सत्य-ज्ञान नहीं पाया जा सकता है तभी तो पानप कह उठे—

सत्गुरु मिले तो सोहरत पावै, देखत लेह पिछान ।
अकल कला धरै तव पावै, पानप अचल धीर स्थान ।।
सतगुरू की योह बात है, मारग देय बताय ।
जो चेला चलता नाहीं, किस बिध पहुँचा जाय ।।[2]

ज्ञान का स्वरूप

नाम रूपात्मक जगत् को ही सत्य समझने वाले इसके भौतिक पदार्थों की जानकारी प्राप्त करने में ही उलझ जाते हैं । जड़-जगत् के भौतिक पदार्थों को लेकर उनकी परीक्षा तथा विश्लेषण करते हैं, यह भौतिक ज्ञान है । कुछ लोग इन भौतिक पदार्थों के अन्तर्गत तथा इनके परे अधिदैविक भावना रखकर पूजा-पाठ में लगते हैं, यह अधिदैविक ज्ञान है । कुछ साधक इस नाम रूपात्मक जगत् के मूल में एक विश्व-चैतन्य-सत्ता की खोज करते हैं और अपने अनुभूत तथ्यों का उद्घाटन करते हैं । यह आध्यात्मिक ज्ञान अथवा सत्यज्ञान कहलाता है ।

आध्यात्मवादी पानप ब्रह्म को ही पारमार्थिक सत्ता मानते हैं । ब्रह्म स्वयं ज्ञान रूप है, जो सर्वत्र व्याप्त है, प्रकाशित है ।[3] ब्रह्म ही सत्यज्ञान है । पानप का यह दृष्टिकोण ज्ञानियों के लिए है । सामान्य जन तथा लोक-व्यवहार के लिए पानप नामरूपात्मक जगत् की व्यावहारिक सत्ता मानते हैं ।[4] सत्य-ज्ञान की प्राप्ति के लिए नामरूपात्मक जगत् के ज्ञान के सहारे प्रयास करना ही होता है ।

---

१. पानपबोध—१४·५, ६
२. ,, १३·१७, १६
३. पानपबानी—३·७
४. ,, १६·१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया, अविद्या अथवा अज्ञान हमारे शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप को ओझल कर देता है और भ्रम के द्वारा हम उसके स्थान पर भाँति-भाँति की अनात्म-वस्तुओं की कल्पना कर बैठते हैं जिसके कारण दुःख भोगते हैं। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सूर्य को भी प्रकाशित करता है और अन्य पदार्थों को भी, उसी प्रकार चैतन्यपूर्ण आत्मा अपने को तो करता ही है, वह अन्य पदार्थों को भी प्रकाशित करता है। कभी-कभी मेघों के आवरण के कारण सूर्य का प्रकाश हम तक नहीं पहुँच पाता है और हमें अँधेरा दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार बन्धन में पड़ा जीव सम्पूर्ण एवं सत्य-ज्ञान को नहीं समझ पाता। बन्धन में पड़े हुए जीव का ज्ञान सीमित तथा न्यून होता है और इस प्रकार जीव अपने निज स्वरूप को भूल जाता है अथवा उसकी सर्वज्ञता नष्ट हो जाती है।

संसार अथवा जीव की दृष्टि से इस भ्रम अर्थात् मिथ्या-ज्ञान के निराकरण के लिए साधन की अपेक्षा होती है। पानप के अनुसार ज्ञान का प्रथम वार माया, अविद्या अथवा भ्रम पर होता है। ज्ञान से अज्ञान का निराकरण होता है।[1]

भ्रम, अविद्या अथवा अज्ञान का उच्छेद हो जाने पर आत्मा के शुद्ध, बुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाव की जानकारी हमें हो जाती है। जो ज्ञान हमें हमारे निज-स्वरूप को बताए अथवा जिस ज्ञान के द्वारा जीव निज-स्वरूपावस्थान की स्थिति को प्राप्त हो, वही सत्य-ज्ञान है, चरम साध्य है। पानप के अनुसार जो माया, मोह, अज्ञान की स्थिति से ऊँचा उठ जाता है और अपनी साधना के फलस्वरूप अपने शुद्ध, स्वरूप को जान लेता है, वही सच्चा व्यक्ति है, विद्वान् है, साधक है और सच्चा ज्ञानी है।[2]

ज्ञाता और ज्ञेय की अभिन्न स्थिति ही सत्य-ज्ञान है। इसे ही आत्म-ज्ञान अथवा ब्रह्म-ज्ञान कहा जाता है। पानप के अनुसार ज्ञान, ज्ञान की सीमा, ज्ञान की स्थिति एवं ज्ञान का चरम लक्ष्य, ज्ञाता और ज्ञेय की अभिन्न स्थिति ही है।[3] जिस स्थिति में ज्ञाता और ज्ञेय एवं ज्ञान अभिन्न होकर एक रूप हो जाते हैं, वही सच्चे ज्ञान की अथवा निज-स्वरूपावस्थान की अवस्था है, वह अद्वैतावस्था है।

निज-स्वरूपावस्था की अवस्था मृत्यु पर विजय है और इसी से कहा जाता है कि आत्मज्ञानी को मृत्यु का भय नहीं रहता। पानप ने आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान को ही चरम साध्य कहा है।[4]

---

१. सुषमवेद—१८·२७
२. ,, ९·१६
३. ,, ६·११
४. ,, २·१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्म-ज्ञान कहो या आत्म-ज्ञान कहो अथवा सत्य-ज्ञान कहो, ये सब उस स्थिति को बताते हैं, जहाँ दुःख और मृत्यु का भय नही होता। निर्मल और पवित्र हृदय सत्य के प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है। भ्रम और अज्ञान का लेशमात्र भी अंकुर नहीं रह जाता है और ज्ञाता तथा ज्ञेय की अभिन्न स्थिति हो जाती है। वहाँ परम सत्य का प्रकाश ही प्रकाशित रहता है। यह परम मुक्तावस्था होती है। पानप के शब्दों में ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। पानप ने अभेद-स्थिति के लिए कहा—

जाके मन माँहि कुछ भेद न भेदा।
मन ही सूँ मनही माँहि, मन ही को बेधा॥
तत्त को विचार कर, पानप जन गावै।
सन्त-चरण रज, रहस मस्तग सूँ लावै॥[1]

पानप का निर्वाण-पद अथवा मुक्ति यही आत्म-प्रतीति ही है। आत्म-ज्ञान अथवा आत्म प्रतीति से तात्पर्य है सर्व भूतान्तरात्माओं में मूल-तत्त्व को देखना और सबके प्रति समान एवं समदर्शिता के भाव से व्यवहार करना। अपने और पराए के भेद-भाव को भुलाकर सबको अपने समान देखना। यहाँ अभेद-स्थिति है, यही है भिन्न-भिन्न प्राणियों में एक ही अविभक्त, अभिन्न आत्मा के दर्शन। यह ब्रह्मात्मैक्य स्थिति है जिसे पाकर कुछ भी शेष नहीं रह जाता। यही ब्रह्म-ज्ञान, सत्य-ज्ञान और यही है पद-निर्वाण, पानप के अनुसार सत्यज्ञान वही है जो साधक के भ्रम और माया का उच्छेद कर देता है और निज-स्वरूपावस्थान की स्थिति को उपलब्ध करा देता है।[2] आत्म-ज्ञान अथवा ब्रह्म-ज्ञान या सत्य-ज्ञान ही हमारे जीवन का चरम लक्ष्य है।

आत्म-ज्ञान के लिए रूप से इन्द्रियों का सन्निकर्ष सर्वत्र आवश्यक नहीं। चैतन्य आत्मा और बाहरी विषय सर्वथा भिन्न होते हैं। चैतन्य की सिद्धि प्रमाणों से नहीं की जा सकती है। आत्मा अपने चैतन्य से वृत्तियों को प्रकाशित कर देता है तब ज्ञान उत्पन्न होता है। वृत्तियों को प्रकाशित करने वाला चेतन-तत्त्व ही ज्ञान-स्वरूप है। ज्ञान आत्मा का गुण नहीं, वरन् स्वरूप है। वृत्ति-ज्ञान द्रष्टा और दृश्य अथवा ज्ञाता और ज्ञेय के संयोग का फल है। ज्ञाता स्वयं ही अपने ज्ञेय-स्वरूप पहचानता है। पानप के अनुसार सत्य-ज्ञान नित्य, अखण्ड, निर्विकार है। ज्ञान ब्रह्म स्वरूप है अथवा आत्म स्वरूप है।[3] ज्ञान स्वयं ही अपने स्वरूप को पहचानकर ज्ञान-रूप हो जाता है और इस अभिन्न स्थिति को प्राप्त कर सभी दुःख, क्लेश तथा

---

१. पानपबोध—८·२७, २८
२. ,, १७·५
३. ,, ११·१३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रिविध ताप से छुटकारा पा लेता है। पानप कहते हैं कि सत्य-ज्ञान अपनी अभिन्न अवस्था में स्थित होकर निर्भय, निर्विकार और निर्लेप हो जाता है।[१]

ज्ञान की कसौटियाँ

हमारी आँखों के सम्मुख उनके नामरूपात्मक विषय होते हैं। उन्हें हम देखकर उनसे सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय तथा अन्य इन्द्रियों और मन के संयोग के द्वारा भाँति-भाँति की जानकारी हमें होती है। जैसी वस्तु है उसका वैसा ही ज्ञान होना यथार्थ ज्ञान कहलाता है।

यथार्थ—न्याय तथा अन्य विषयवादी दार्शनिक यथार्थ को ज्ञान की प्रथम कसौटी मानते हैं। इनके अनुसार ज्ञान यथार्थ होना चाहिए। आकाश को देखकर उसके नीले रंग का ज्ञान होता है और आकाश नीला है, यह वास्तविक तथ्य है। आकाश नीला है, इस मत के निर्धारण का इस वास्तविक तथ्य के साथ सादृश्य है कि आकाश का रंग नीला होता है। इस प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान को ही यथार्थ कहा जाता है। विषयवादी दार्शनिक प्रत्यक्षकर्त्ता मनस् से निरपेक्ष बाहरी पदार्थों की वास्तविकता को तथा मनस् में विद्यमान विचारों को तथा मतों की वास्तविकता को मानते हैं।

नामरूपात्मक जगत् की जानकारी के हेतु यथार्थ का यह सिद्धान्त है, परन्तु अध्यात्मवादी पानप आत्म-ज्ञान के लिए इसे आवश्यक नहीं समझते। पानप ने जगत् की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार की है। नामरूपात्मक जगत् स्वप्नवत्[२], असत्य[३], विनाशशील[४] है। पानप उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं मानते। उनके अनुसार नामरूपात्मक जगत् जैसा दिखाई पड़ रहा है, वैसा है नहीं। उसके मूल में जो इसका अधिष्ठान है, वही सत्य है, वह अगम है, अगोचर है।[५] अतएव अगम, अगोचर, आत्म-तत्त्व की प्रतीति के लिए यथार्थ की कसौटी उपयुक्त नहीं है। अतीन्द्रिय क्षेत्र में इन्द्रियों का सन्निकर्ष होना असम्भव है। निराकार का यथार्थ ज्ञान अथवा आकार स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता।

आत्मा अपने चैतन्य से वृत्तियों को प्रकाशित कर देता है, तब ज्ञान उत्पन्न होता है। बिना चैतन्य के प्रकाश के ज्ञान हो ही नहीं सकता। वृत्तियों को प्रकाशित करने वाला चेतन-तत्त्व ही ज्ञान-स्वरूप है। ज्ञान आत्मा का गुण नहीं, वरन् स्वरूप है अथवा आत्मा ही सत्य-ज्ञान है जो सब में व्याप्त होकर प्रकाशित हो रहा है।

---

१. पानपबोध—३·६
२. ,, १९·२
३. ,, १·४
४. ,, १२·२३
५. ,, १२·१२

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

पानप ने आत्म-तत्त्व को ज्ञान रूप, अविगत ब्रह्म, अपरम्पार कहा है ।[१] यहाँ पानप का मन्तव्य यही है कि आत्म-तत्त्व अथवा ब्रह्म स्वयं-ज्ञान है, जो निराकार निर्विकार रूप में सर्वत्र व्याप्त है ।

जीव का अपना स्वयं प्रत्यक्ष होता है और इसी कारण अहं प्रत्यय को इन्द्रियों का विषय नहीं कहा जा सकता है । ज्ञान-स्वरूप आत्म-तत्त्व परमप्रकाश है, जिसके प्रकाश से सकल जगत् प्रकाशित होता है, वही सत्य-ज्ञान है । उससे सभी भ्रम दूर होते हैं । माया का उच्छेद हो जाता है ।[२] उस परम-प्रकाश, परम-ज्योति, सत्य-ज्ञान के लिए इन्द्रिय-सन्निकर्ष द्वारा प्रत्यक्ष अथवा यथार्थ विषयवादी सिद्धान्त लागू नहीं हो सकता । यथार्थ का सिद्धान्त व्यावहारिक सत्ता के लिए ही है ।

आत्म-तत्त्व का प्रत्यक्ष इन स्थूल चक्षु आदि इन्द्रियों के संयोग से असम्भव है क्योंकि वही ज्ञाता है और वही है ज्ञेय तथा ज्ञान । सब रूप में वही व्याप्त है । वही है ज्ञान और वही है ज्ञातव्य । जहाँ सब एकमएक[3] हो जाता है वहाँ स्थिति की प्राप्ति पर द्वैत का नाश हो जाता है, वहाँ यथार्थ की कसौटी ठहर ही नहीं सकती । ब्रह्मात्मैक्य की स्थिति ही सत्य-ज्ञान को स्थिति है और वहाँ परीक्षक तथा परीक्षित दो भिन्न-भिन्न स्वरूप नहीं रह जाते ।

ज्ञान का अबाधित्व

अध्यात्मवादी अबाधित्व को सत्य की कसौटी मानते हैं । एक कथन की दूसरे अन्य कथनों के साथ, जो पहले ही सत्य-ज्ञात हैं, तार्किक संगति है । एक तथ्य दूसरे तथ्य से जब बाधित हो जाता है, तब वह असत्य हो जाता है । जब वह अन्य कथनों द्वारा अबाधित रहता है, तब सत्य है । अबाधितत्त्व कथनों का पारस्परिक सामंजस्य है ।

वेदान्त-परिभाषा ने सत्य की तीन कसौटियाँ बतलायी हैं—अनाधितत्त्व (नावल्टी), अबाधितत्व (नान कन्ट्राडिक्शन) तथा संवादि-प्रवृत्ति (एफिशिएन्सी) ।[४] अनधित्व से किसी नवीन वस्तु का ज्ञान होना चाहिए जो पहले ज्ञात नहीं थी । प्रत्यभिज्ञा किसी पदार्थ की स्मृति है जो पहले प्रत्यक्ष की जा चुकी है । यह हमारे ज्ञान की वृद्धि नहीं करती । इसे 'प्रभा' नहीं कहा जा सकता ।

पारमार्थिक सत्ता कभी भी बाधित नहीं होती । वह त्रिकाल अबाधित है । अतः सत्य की ये कसौटियाँ पारमार्थिक सत्ता के लिए लागू नहीं होतीं । ये कसौटियाँ प्रातीतिक सत्ता एवं प्रातीतिक ज्ञान के तथ्यों में लागू होती हैं ।

---

१. पानपबोध—२१·८
२. „ १४·१९
३. सुषमवेद—१५·३
४. डॉ० जे० एन० सिन्हा—'दर्शन की रूप-रेखा' पृ० ३१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदान्त की भाँति पानप भी जगत् की प्रातीतिक वास्तविकता को मानते हैं। अनेकत्व का प्रातितिक ज्ञान ब्रह्म के साथ अभेद के अनुभव का विरोधी है। अतः अनेकत्व को उत्पन्न करने वाला ज्ञान कभी भी सत्य-ज्ञान नहीं हो सकता। पानप के अनुसार सत्य-ज्ञान के लिए कोई कसौटी नहीं हो सकती क्योंकि वह अनन्त है, अमर है, सभी भेदों से, सभी कोटियों से परे है।[1]

ब्रह्म अथवा आत्मा की ही पारमार्थिक सत्ता है। वही सत्य-ज्ञान है, अमर ज्ञान है। उसके ज्ञान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है। पानप के अनुसार जैसे किसी कोठरी में स्थित दीपक के प्रकाश से दीपक स्वयं भी प्रकाशित होता है तथा सम्पूर्ण कोठरी को भी प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार सत्य-ज्ञान स्वरूप आत्मा के प्रकाश से समस्त जगत् प्रकाशित होता है।[2]

ज्ञान की स्वत: प्रामाण्यता

स्वतः प्रमाण्यवाद के अनुसार ज्ञान की प्रामाणिकता ज्ञान की उत्पादक सामग्री में ही विद्यमान रहती है, वह कहीं बाहर से नहीं आती।[3] ज्ञान उत्पन्न होते ही उसकी प्रामाणिकता का भी ज्ञान हो जाता है।[4] पानप ज्ञान की स्वतः प्रामाणिकता को मानते हैं। उनके अनुसार ज्ञान का प्रमाण ज्ञान ही में निहित है। अपने से अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु से ज्ञान प्रामाणिक नहीं बनता। ज्ञान का प्रामाण्य स्वयं ही उत्पन्न होता है तथा ज्ञात होता है। पानप ज्ञान को स्वतः प्रकाशक कहते हैं।[5] उसे किसी अन्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं होती। सत्य-ज्ञान स्वतः ही अपने को जानता है। वह स्वतः सामर्थ्यवान है। उसे बाहरी ज्ञान की अपेक्षा नहीं। उसकी प्रामाणिकता उसी में निहित है। पानप के अनुसार सत्य-ज्ञान स्वतः प्रामाण्यता रखता है।[6] वेदान्त भी कहता है कि ज्ञान का प्रामाण्य स्वतः ही उत्पन्न होता है और स्वतः ही ज्ञात होता है। किसी बाहरी वस्तु की उसे अपेक्षा नहीं होती। वह स्वयं सिद्ध है।

ज्ञान का परत: अप्रामाण्य सिद्धान्त

अद्वैत वेदान्त तथा मीमांसा ज्ञान के परतः अप्रामाण्यवाद को मानते हैं। इसके अनुसार ज्ञान अन्य बाहरी वस्तुओं द्वारा बाधित हो जाता है। बाहरी वस्तुओं द्वारा ज्ञान की अप्रामाणिकता सिद्ध की जा सकती है। जब ज्ञान किसी अन्य ज्ञान

---

१. पानपबोध—१८·२१
२. ,, १२·२७
३. सतीश चन्द चट्टोपाध्याय—'भारतीय दर्शन' पृ० २१२ पर उद्धृत।
४. वही।
५. पानपबोध—११·२९
६. सुषमवेद—११·१९, २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा बाधित होता है, तो वह अप्रामाणिक होता है। यदि ज्ञान को उत्पन्न करने वाले कारण दूषित हैं तो ज्ञान भी दूषित अथवा अप्रामाणिक होगा।

पानप ज्ञान के परतः अप्रामाण्य सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। इसके लिए उन्होंने रस्सी की उपमा दी है। अन्धकार में भ्रम से रज्जु को साँप समझ लिया जाता है। सूर्य का प्रकाश हो जाने पर रस्सी दिखाई पड़ती है और पहले का साँप वाला भ्रम दूर हो जाता है। थोड़ी देर के लिए यह भ्रम अथवा मिथ्या-ज्ञान प्रामाणिक-सा था परन्तु बाहरी वस्तु अथवा प्रकाश के द्वारा वह बाधित हो गया अर्थात् परतः अप्रामाणिक सिद्ध हुआ।

ब्रह्म के स्थान पर नाम रूपात्मक जगत् की कल्पना भी मिथ्या-ज्ञान है। इसी प्रातीतिक ज्ञान के द्वारा जीव इसके माया-मोह में फँस जाता है और अनेक असफल कर्मों में प्रवृत्त होता है। साधना द्वारा उसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब नाम-रूप का प्रपंच ध्वंस हो जाता है और सत्य-ज्ञान-स्वरूप ब्रह्म ही अवस्थित होता है, दूसरा कुछ होता ही नहीं।[१] ज्ञान-क्षेत्र में पानप ने अद्वैत वेदान्त का ही अनुसरण किया है।

ज्ञान की श्रेणियाँ

सामान्यतया ज्ञान तीन प्रकार का कहा जाता है। प्रत्येक मनुष्य में जन्म से ही सामान्य ज्ञान होता है जिसे साधारण जानकारी कहा जाता है। यह सामान्य ज्ञान सभी में पाया जाता है और इसी से इसे 'जन्म-जात' ज्ञान अथवा 'सहज' ज्ञान कहा जा सकता है। यह सामान्य कोटि का ज्ञान है।

जगत्-क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर मनुष्य को अनेक वस्तुओं, क्रियाओं, हलचलों के सम्पर्क में रहना पड़ता है। अपनी बुद्धि के विशिष्ट प्रयोग के द्वारा मनुष्य ज्ञानार्जन करता है। ऐसे ज्ञान को 'बुद्धि ग्राह्य' ज्ञान कहा जाता है। यह मध्यम कोटि का ज्ञान है।

कुछ महान् पुरुष अपने पूर्व-जन्म के संस्कारों के फलस्वरूप विशेष प्रतिभाशाली होते हैं। उनकी बुद्धि, उनकी पैनी दृष्टि तथा उनके चर्म-चक्षु कुछ विशिष्टता लिए होते हैं। स्वाभाविक रूप में उनका ज्ञान विशिष्ट होता है। इसे प्रातिभ-ज्ञान कहते हैं। मर्म-चक्षुओं द्वारा उपलब्ध चरम-तत्त्व का अखण्ड परिज्ञान 'प्रातिभ-ज्ञान' कहलाता है। यह ज्ञान सर्वोत्कृष्ट श्रेणी का होता है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा इन्द्रियातीत तत्त्व को चर्मचक्षुओं के द्वारा नहीं, वरन् मर्मचक्षुओं के द्वारा ही जाना जा सकता है। प्रातिभ-ज्ञान के लिए सहज-समाधि की अपेक्षा होती है। साधना के उच्चतम शिखर पर पहुँच कर जिस साधक ने अपने को

---

१. पानपबोध—६·१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हर प्रकार से ठीक कर लिया है, वैसे ही साधक के प्रातिभज्ञान में बुद्धि का लवलेश नहीं रहता। साधना में जितनी भी त्रुटि रहेगी, प्रातिभज्ञान उतना ही बुद्धि से प्रभावित रहेगा। जिसे सहज ज्ञान कहा जाता है वह उच्चकोटि का है, वही प्रातिभज्ञान हैं। प्रातिभज्ञान के लिए तर्क-वितर्क की कोई अपेक्षा नहीं होती। अतीन्द्रिय तथा इन्द्रियातीत मूल-तत्त्व तर्क-वितर्क से नहीं जाना जा सकता है, वरन् उसके लिए प्रातिभज्ञान ही अपेक्षित है।

पानप ने जन्मजात, बुद्धिग्राह्य तथा प्रातिभज्ञान, इन तीन ज्ञानों के लिए तीन शब्दों का प्रयोग किया है—ज्ञान-दृष्टि[1], अन्तर्दृष्टि[2] और आत्मदृष्टि[3]। पानप के अनुसार ज्ञानदृष्टि के द्वारा मनुष्य सत्य-असत्य का निर्णय करता है। उलटी चाल से तात्पर्य है बहिर्वृत्तियों को बाहरी विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करना। वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने पर अन्तर्दृष्टि की उपलब्धि होती है और साधक चरम सत्य का रहस्य समझने के निकट पहुँच जाता है जिस साधक को आत्म-दृष्टि की उपलब्धि हो गई है, वही सच्चा साधक है, उसी के द्वारा अनुभूत तथ्यों के उद्घाटन सत्य हो सकते हैं।

साधना के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच कर ही आत्मदृष्टि उपलब्ध हो पाती है। आत्मदृष्टि अथवा प्रातिभज्ञान के उपरान्त साधक परिपूर्ण हो जाता है। उसे ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति हो जाती है। पानप के शब्दों में वह अद्वैतावस्था होती है। पानप के द्वारा प्रयुक्त सहज भाई (सहज भाव), सहज-ज्ञान तथा सहजावस्था प्रातिभ-ज्ञान प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं।

सहज ज्ञान हमारी वृत्तियों का ज्ञान है। नैसर्गिक रूप में यह हम में निर्मलता का प्रादुर्भाव करता है। सहजवृत्तियाँ मूलतः शुद्ध होती हैं। ये प्राणी मात्र के जीवन की अभिव्यक्ति के मूल साधन हैं। ये सहज वृत्तियाँ ही हमें विरुद्ध दिशा में इधर-उधर भटकाने लगती हैं।

प्रारम्भ के फलस्वरूप किसी महानात्मा में सहजज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाता है और वह सहजज्ञान से सत्य-तत्त्व का अन्वेषण करता है। पानप ने सहजज्ञान के द्वारा शुद्ध-बुद्धि की प्राप्ति, सहज वृत्तियों का अपने सत्य कार्य में लगना तथा अन्तर्मुखी साधना में प्रवृत्त होना लिखा है।[4]

सहजज्ञान एवं सहजभाव की प्राप्ति के उपरान्त सहजावस्था की प्राप्ति होती है। यह सहजावस्था आत्मदृष्टि अथवा प्रातिभज्ञान की अवस्था है। यहाँ आध्यात्मिक

---

१. पानपबोध—११·१६
२. ,, —१२·१५
३. ,, —६·२१
४. सुषमवेद—११·१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तर्दृष्टि स्वरूपावस्था में समर्थ होती है। अनासक्त सभी वृत्तियाँ आत्म-चिन्तन, मनन में तल्लीन हो जाती हैं। पानप ने इस अवस्था का वर्णन किया है। इस अवस्था में साधक अपना सर्वस्व भूल जाता है। अपने ही सत्यज्ञान, प्रकाश के उजाले में अपने में तल्लीन हो जाता है। इस तल्लीनता के उपरान्त अद्वैतावस्था की स्थिति मिल जाती है। पानप के शब्दों में परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है।[1]

सत्यज्ञान की उपलब्धि

सत्यज्ञान अथवा प्रातिभज्ञान की उपलब्धि कठिन अभ्यास एवं साधना के उपरान्त ही सम्भव है। ज्ञान अथवा अज्ञान दोनों की सात-सात भूमिकाएँ होती हैं। अज्ञान की सातों भूमिकाओं के स्थान पर साधक को ज्ञान की सात भूमिकाओं को प्रतिष्ठापित करना होता है, तब प्रातिभज्ञान की उपलब्धि हो जाती है।

अज्ञान की सात भूमिकाएँ

(१) **अशुचि-जाग्रत**—जीव नामरूपात्मक जगत् को ही सत्य जानकर, उसके विषयों में ही लिप्त रहता है। वह मोह, माया, मद, मत्सर, काम, क्रोधादि के द्वारा दुःख भोगता रहता है। जीव की इस अवस्था को अशुचि-जाग्रत कहते हैं।

(२) **जाग्रत भूमिका**—देहाभिमान, जन्माभिमान, विद्याभिमान, स्वरूपाभिमान तथा धनाभिमान में ही जीव लिप्त रहता है। अहंकारी बनकर नाना प्रकार के दुःख उठाता है। यह अज्ञान की जाग्रत भूमिका है।

(३) **महाजाग्रत भूमिका**—अज्ञान की महाजाग्रत भूमिका में अहंकार का अतिक्रमण रहता है।

(४) **जाग्रत-स्वप्न भूमिका**—इस अवस्था में जीव अपनी ही जानकारी को सत्य और उत्तम समझता है। दूसरे की जानकारी को असत्य समझता है और दूसरों के शुद्ध विचारों को भी नहीं सुनता।

(५) **स्वप्न-जाग्रत भूमिका**—अज्ञान की इस भूमिका में मनुष्य स्वप्न को ज्यों का त्यों याद रखता है।

(६) **स्वप्न-भूमिका**—अज्ञान की इस भूमिका में मनुष्य स्वप्न को ज्यों का त्यों याद नहीं रखता है।

(७) **सुषुप्ति भूमिका**—अज्ञान की इस भूमिका में प्राणी प्रगाढ़ निद्रा की अवस्था में रहता है। यह महान् अज्ञान की अवस्था है।

अज्ञान की उपर्युक्त सप्त भूमिकाएँ मनुष्य के लिए अत्यन्त दुःखदायी होती हैं। ज्ञान के साधक को इन सत्य भूमिकाओं से अपने को बचाना पड़ता है और ज्ञान की सप्त-भूमिकाओं को इनके स्थान पर प्रतिष्ठित करना पड़ता है।

---

१. पानपबोध—७·२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञान की सात भूमिकाएँ

(१) **शुभ-इच्छा**—यह ज्ञान की पहली भूमिका है। साधक के मन में अज्ञान को दूर करने की उत्कट इच्छा, करने की प्रवृत्ति, ज्ञानार्जन की प्रबल कामना, कुकर्मों के ऊपर पश्चाताप करने का भाव, कुसंग का त्याग, साधु-संगति तथा शुभ-कर्म करने की प्रबल इच्छा का उदय होता है।

(२) **स्व-विचार**—इस भूमिका में सद्संगति, शुभ कर्मों की खोज, शुभ-कर्म करने में उद्यत होना होता है।

(३) **समानता**—वासना से निवृत्ति, विरक्ति की उपलब्धि तथा वैराग्य-भावना का उदय होना, इस भूमिका में होता है।

(४) **शिशिरान्ति**—लोक-परलोक के प्रति वैराग्य-भाव का उदय होना, सब प्रकार के सुखों को तुच्छ समझना, ईश्वर के ज्ञान में लीन होना, इस भूमिका में होता है।

(५) **असंशक्ति**—ज्ञान की इस भूमिका में साधक ईश्वर के प्रति अनन्य-भाव से निमग्न हो जाता है।

(६) **अपदार्था भाविनी**—ज्ञान की इस भूमिका में साधक ईश्वर-भजन, चिन्तन तथा मनन में निरन्तर निमग्न रहता है।

(७) **तुरीया**—ज्ञान की इस भूमिका में साधक अन्तर्मुखी हो जाता है। उसे उन्मनी दशा की सिद्धि हो जाती है। सत्य-ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है।

पानप ने ज्ञान-अज्ञान की इन सात भूमिकाओं के लिए सात सुरति का नाम दिया है।[1] उनके अनुसार ज्ञान की सात भूमिकाएँ साधक के लिए कल्याणकारी हैं। यदि इनकी उपलब्धि साधक नहीं कर पाता, तो उसका अहित होता है। इन सप्त-भूमिकाओं के द्वारा साधक मूल-तत्त्व-दर्शन कर सकता है और इन्हीं के विलोम अज्ञान की भूमिकाओं के द्वारा प्रलय को प्राप्त हो सकता है।

पानप का स्पष्ट मत है कि साधक के लिए अज्ञान की सप्त भूमिकाओं का निराकरण करना तथा ज्ञान की सप्त भूमिकाओं का अनुकरण करके ज्ञान-साधना में संलग्न होना अनिवार्य है। ज्ञानी साधक के लिए सत्य-ज्ञान की उपलब्धि अमृतत्त्व है, कल्याणकारी है।[2]

पातंजल योग-दर्शन में विवेक प्राप्त पुरुष की सात प्रकार की भूमिका अथवा बुद्धि का उल्लेख है—

'तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा।'[3] अर्थात् उस विवेक ज्ञान-प्राप्त पुरुष की सात प्रकार की अन्तिम स्थिति वाली बुद्धि होती है।

---

१. सुषमवेद—१७·२३
२. ,, १६·१५
३. पातंजल योगदर्शन—२·२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(क) **हेयशून्यावस्था**—द्रष्टा और दृश्य का संयोग होना, अब कुछ भी अभाव योग्य शेष न रहा।

(ख) **ज्ञेयशून्यावस्था**—जो कुछ जानता था वह जान लिया, अब कुछ भी अवशिष्ट नहीं।

(ग) **प्राप्य प्राप्त अवस्था**—जो प्राप्त करना था प्राप्त कर लिया।

(घ) **चिकीर्षाशून्य अवस्था**—निर्मल और अचल विवेक-ज्ञान प्राप्त कर लिया; अब कुछ भी करना अवशिष्ट नहीं रहा।

(ङ) **चित्त की कृतार्थता**—चित्त का कार्य समाप्त हो गया।

(च) **गुणलीनता**—चित्त अपने कारण रूप गुणों में लीन हो गया।

(छ) **आत्मा स्थिति**—पुरुष सर्वथा गुणातीत होकर अपने स्वरूप में स्थित हो गया है।[1]

इस प्रकार की प्रान्त-भूमि प्रज्ञा को अनुभव करने वाला योगी कुशल अथवा जीवन्मुक्त कहलाता है।

पानप की 'उन्मन' दशा, सहजावस्था अथवा प्रतिभाज्ञान-प्राप्ति की स्थिति जीवन्मुक्त दशा ही है। इस दशा में अज्ञान नष्ट हो जाता है, द्वैत भाव लुप्त हो जाता है तथा ब्रह्मात्मैक्य की उपलब्धि हो जाती है। पानप का सप्त-भूमिका वाला विचार योग-दर्शन के अनुरूप है।

प्रामाणिक ज्ञान के स्रोत

मन तथा चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों के जिस व्यापार के द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो, उसे प्रमाण कहते हैं। वस्तुओं के यथार्थ ज्ञान के लिए प्रमाण होते हैं। विषयों का यथार्थ ज्ञान जितने प्रमाण से हो सके, उतने ही प्रमाणों की संख्या होती है। यदि सभी वस्तुओं का ज्ञान एक ही प्रमाण से हो जाए तो दूसरे प्रमाण मानने की आवश्यकता नहीं होती। मीमांसा-दर्शन का कहना है कि जिस ज्ञान में अज्ञात वस्तु का ज्ञान हो, अन्य ज्ञान से बाधित न हो, दोष रहित हो, वही प्रमाण है।

भारतीय दर्शन में तर्क-वितर्क को कम महत्त्व दिया गया है। यहाँ स्वानुभूति पर अधिक बल दिया गया है। यहाँ अनुभव से बुद्धि को स्वतन्त्र करके तर्क करने की परम्परा नहीं रही। भारतीय दार्शनिक के लिए मोक्ष-प्राप्ति साध्य है और ज्ञान मोक्ष-प्राप्ति का एक साधन है। प्रतिभाज्ञानवाद का मत है कि सत्य-ज्ञान अपरोक्षानुभूति के द्वारा उत्पन्न होता है, वह चरमसत्य को अपने भीतर ही खोजता है।

भौतिकवादी प्रत्यक्ष को ही एक मात्र प्रमाण मानते हैं, परन्तु अध्यात्मवादी प्रत्यक्ष प्रमाण की ओर कम ध्यान देते हैं।

---

१. श्री हरिकृष्णदास गोयन्दका—'योगदर्शन' (हिन्दी व्याख्या) पृ० ८२, ८३.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१. प्रत्यक्ष प्रमाण—प्रत्यक्ष ब्रह्मज्ञान है जो इन्द्रिय और पदार्थ से सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है। व्यावहारिक सत्ता के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता होती है। जगत् के ज्ञान के सहारे हम चरमसत्ता का ज्ञान भी कर पाते हैं। प्रत्यक्ष दो प्रकार का माना गया है—लौकिक प्रत्यक्ष तथा अलौकिक प्रत्यक्ष। अलौकिक प्रत्यक्ष भी तीन प्रकार का होता है—सामान्य लक्षण, ज्ञान-लक्षण तथा योगज प्रत्यक्ष।

योगज प्रत्यक्ष के द्वारा भूत एवं भविष्य, गूढ़ तथा सूक्ष्म, निकटस्थ तथा दूरस्थ सभी प्रकार की वस्तुओं की साक्षात् अनुभूति होती है। यह अनुभूति केवल उन साधकों को हो सकती है जिन्होंने योगाभ्यास के द्वारा अलौकिक शक्ति प्राप्त की हो। श्रुति तथा अन्याय प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर अनेक भारतीय दार्शनिक योगज प्रत्यक्ष की वास्तविकता को स्वीकार करते हैं।[1] पानप प्रत्यक्ष प्रमाण को व्यावहारिक सत्ता के ज्ञान के लिए स्वीकार करते हैं। नामरूपात्मक विषयों का ज्ञान उन्हें इन्द्रिय-संयोग से हुआ। इन्द्रियातीत एवं निराकार सत्य की साक्षात् अनुभूति के लिए वे इन्द्रियों का सन्निकर्ष स्वीकार नहीं करते। पानप यहाँ अलौकिक प्रत्यक्ष की ओर संकेत करते हैं। सहज वृत्तियों के माध्यम से निर्मल हृदय में भावों द्वारा उसका स्फुरण पाया जा सकता है। पानप में योगज प्रत्यक्ष अधिक पाया जाता है। पानप एक महान् साधक और योगी थे। अपने योगाभ्यास एवं प्रतिभाज्ञान से उन्हें अलौकिक शक्ति की प्राप्ति हो गई थी।

चरम सत्य का पानप को प्रत्यक्ष हुआ, पर लौकिक भाषा में उसे कैसे बताते। उसकी झलक-मात्र से ही वे गद्‌गद् हो गए—

हद तजी बेहद में खेला, अलख पुरुष दरसाया।
कहै पानप नैन नासिका अग्रह, रहै पहुप से फूल ॥[2]

२. अनुमान-प्रमाण—जिस वस्तु के साथ इन्द्रियों का संयोग न हो, वह परोक्ष कहलाती है। जिस क्रिया के द्वारा परोक्ष का ज्ञान हो, वह 'अनुमान' कहलाती है। 'अनुमान' वह ज्ञान है जो किसी अन्य के ज्ञान द्वारा प्राप्त किया जाता है। अनुमान साध्य का ज्ञान है जो हेतु द्वारा प्रतिपादित किया जाता है। धुँआ जो हेतु है वह सदा ही अग्नि (साध्य) के साथ पाया जाता है। जहाँ कहीं भी धुँआ है, वहाँ अग्नि है।

पानप अनुमान-प्रमाण को मानते हैं। पानप के अनुसार जड़ जगत् के विषय जड़ हैं। वे स्वतः किसी कार्य के करने में असमर्थ हैं। उनके भीतर चेतन-तत्त्व है, जो उन्हें प्रकाशित करके कार्य-सम्पादन के योग्य बनाता है। जब चेतन-तत्त्व मनुष्य से निकल जाता है तो शरीर व्यर्थ हो जाता है। अतः मानव-शरीर में चेतन-तत्त्व

---

१. दत्त तथा चट्टोपाध्याय—'भारतीय दर्शन' पृ० ११६.

२. पानपबानी—१६·७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की व्याप्ति अवश्य है। यह ज्ञान का अनुमान-प्रमाण है। पानप का मत है कि मनुष्य का शरीर कागज की पुड़िया के समान है। बिना चेतन-तत्त्व के यह जड़वत् है। उस चेतन-तत्त्व के प्रकाश से ही यह प्रकाशित होकर काम करता दीखता है। चेतन-तत्त्व के अलग होते ही यह निर्जीव हो जाता है और तब साथी सम्बन्धी रोते ही दिखाई पड़ते हैं।

पानप का कथन है कि जो उत्पन्न होता है, वह मरेगा भी अवश्य ही।[1] जो मृत्यु को प्राप्त होगा, वह जन्म भी अवश्य लेगा क्योंकि मनुष्य मरणशील है तथा जन्म-धारण करने वाला है। जन्म के साथ मृत्यु का सम्बन्ध है और मृत्यु के साथ जन्म का। अतः किसी एक को देखकर दूसरे का ज्ञान होता है, जो 'अनुमान' है।

३. **उपमान प्रमाण**—ज्ञात पदार्थ के सादृश से अज्ञात पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करना ही 'उपमान' है। यह ज्ञान उपमान है कि गवय गौ के समान है जो अतीत में कहीं देखी गई थी। यहाँ गाय और गवय इन दोनों में जो सादृश्य है उसी के आधार पर यह 'उपमान' निर्भर है। सादृश्य का ज्ञान उपमान द्वारा ज्ञान का साधन है। पानप में उपमान-प्रमाण भी पाया जाता है। यह प्रमाण व्यावहारिक सत्ता के क्षेत्र में ही प्रयुक्त हुआ है। अतीन्द्रिय क्षेत्र में इसका प्रयोग कठिन ही है। किन्तु पानप महान् ज्ञानी थे। उन्होंने चरमसत्ता के ज्ञान के लिए अनेक नाम सुन रखे थे। 'राम' शब्द का अर्थ है—सर्वत्र रमने वाला अर्थात् व्याप्त तत्त्व। जो सब में व्याप्त है उसका ज्ञान उसके लिए प्रयुक्त किए गए शब्दों के द्वारा हो ही जाता है। पानप का कथन है कि यद्यपि वह अज्ञात है, फिर भी उसके नाम के सहारे उसका ज्ञान पाया जा सकता है उसका स्मरण किया जा सकता है।

अजपा जपै बिना मुख माला, यों सुमरै हर पावै।
पानप कहै भरम में सुमरै, राम हाथ नहीं आवै॥[2]

यहाँ 'राम' शब्द ज्ञात है जिसका अर्थ सर्वव्याप्त तत्त्व है। इसके अर्थ के सादृश्य से अज्ञात परम सत्य का ज्ञान प्राप्त होता है, अतः यह 'उपमान' प्रमाण है। पानप ने यहाँ 'उपमान' शब्द का प्रयोग किया है।

४. **अनुपलब्धि-प्रमाण**—प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के द्वारा जब किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होता, तब 'वह नहीं है' इस प्रकार उस वस्तु के 'अभाव' का ज्ञान हमें होता है। अनुपलब्धि से हम उस पदार्थ का अभाव समझते हैं जो पदार्थ विद्यमान नहीं है। जिस वस्तु की जिस परिस्थिति में उपलब्धि होनी चाहिए, उस परिस्थिति में उसकी उपलब्धि नहीं होने से ही उसका अभाव जाना जाता है।

पानप में अनुपलब्धि-प्रमाण नाम रूपात्मक जगत् के लिए प्रयुक्त हुआ है। जगत् मिथ्या है, विनाशशील है, परिवर्तनशील है। यह चरमसत्ता नहीं हो सकता।

---

१. पानपबानी—२०·१२
२. पानपबोध—१६·१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्ता के विचार से इसकी उपलब्धि नहीं हो पाती। यह बाधित हो जाता है अतः इसका अभाव हो जाता है। यह स्वप्न के समान है[1] जिसकी उपलब्धि नहीं होती।

चरमतत्त्व के ज्ञान के लिए पानप अनुपलब्धि नहीं मानते। सत्य-तत्त्व का अभाव नहीं माना जा सकता। सर्वव्याप्त तत्त्व जो अपना अधिष्ठान है, उसका अभाव नहीं हो सकता। पानप के अनुसार उस परम सत्य को अपने भीतर देखा जा सकता है, हाँ, द्रष्टा में उसे परखने की साधना और ज्ञान होना चाहिए।[2]

५. **शब्द-प्रमाण**—जिस ध्वनि से वस्तुओं का ज्ञान होता है उसे 'शब्द' कहते हैं। 'शब्द' को तभी प्रमाण समझा जाता है जब इसके द्वारा यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। आप्त अथवा यथार्थवादी ऋषियों के अनुभूत वचन 'शब्द-प्रमाण' समझे जाते हैं। 'शब्द' एक ऐसे विश्वसनीय महानात्मा तथा सफलीभूत व्यक्ति की साधिकार उक्ति है जिसे किसी तत्त्व के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है—आप्तोपदेशः शब्दः।

पानप में शब्द प्रमाण पाया जाता है। यद्यपि पानप धार्मिक ग्रन्थों के प्रति अधिक श्रद्धालु नहीं हैं तथापि धार्मिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है—गीता[3] और भागवत्[4]।

यह विशेष बात है कि इनका सैद्धान्तिक प्रातिपादन अथवा पुष्टि पानप ने नहीं की है और न इन ग्रन्थों का अक्षरशः पालन करना ही उद्देश्य है। आप्त पुरुषों में पानप गुरु के उपदेश सत्य मानते हैं—

गुरू का सबद मल्लाह है, जो कोई संग गह लेह।
सुरत वली गहई पानप, तुरत पार कर देह॥[5]

गुरू के उपदेश को सत्य मानते हुए कहते हैं—

गुरू की बानी नित परमान, गुरु की बानी पावै जान।
गुरु की बानी मुडामन पावै, गुरु की बानी जो कोई धावै॥
गुरु की बानी अगम अपार, गुरु की बानी जनम निवार।
जो कोई गुरु की बानी पावै, पानप तापे बलबल जावै॥[6]

इस प्रकार 'शब्द प्रमाण' के सम्बन्ध में पानप का अपना अनोखा दृष्टिकोण है। वह अन्धानुसरण के पक्ष में नहीं हैं।

---

१. पानपबोध—११·७
२. ,, —१६·९
३. सुषमवेद—२·१
४. पानपबोध—४·१
५. ,, ५·१२
६. ,, ५·१, २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६. **अर्थापत्ति-प्रमाण**—दो असंगत तथ्यों को मिलाने के लिए उपपत्ति का सहारा लेने से अर्थापत्ति होती है। दो असंगत बातों को एक नवीन उपपत्ति द्वारा संगत बनाया जाता है, यथा—यह ज्ञात है कि देवदत्त जीवित है। वह अपने घर से अनुपस्थित भी पाया जाता है। ये दोनों बातें एक-दूसरे से असंगत हैं। इन दोनों असंगत बातों में यह अप्रत्यक्ष बात लेने से कि देवदत्त अपने घर से बाहर है, संगति उत्पन्न हो जाती है। इस उपपत्ति के बिना दोनों असंगत बातों में एक-दूसरे के साथ संगति नहीं बैठ सकती। पानप अर्थापत्ति-प्रमाण को भी मानते हैं। मनुष्य के भीतर से ध्वनि होती है। वह बोलता है, रोता है, गाता है चिल्लाता है, पर इस ध्वनि को करने वाला दिखाई नहीं पड़ता, इसे बजाने वाला है अवश्य, जो देह के समान नहीं है।[1] वह दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि हम बाजीगर की करामात के आश्चर्य में ही उलझ जाते हैं, हमें बाजीगर का खेल ही अच्छा लगने लगता है और हम उसकी चतुराई की ओर ध्यान न देकर आश्चर्य चकित ही होते रहते है। बिना बाजीगर के खेल कैसे हो सकता है।[2] इसलिये इस जगत् के कार्य को चलाने वाला भी अवश्य है। इस प्रकार जगत् और चरम सत्य दो विलोम तथ्य हैं। एक नामरूपात्मक, दूसरा अरूप। दोनों की तीसरी उपपत्ति अर्थात् बिना अरूप जादूगर के यह संसार नहीं चल सकता क्योंकि वही सत्य है जो स्थिर रहता है। मरणशील, विनाशशील परिवर्तनशील कभी सत्य नहीं हो सकता। अतः इसके मूल में अरूप सत्ता अवश्य है, जो अज्ञान के कारण हाथ नहीं आती—

मेरा साहब ऐसो रे भाई, आपा जग कूँ रहो दिखाई।
मेरे साहब कूँ कोई न देखे, यह सब जग पेखने पेखे।।
× × ×
रूप अरूप कह्यो नहीं जाई, सकल निरन्तर रह्यो समाई।
उलटी दृष्टि देखे जो कोई, पल-पल में ताहि दरशन होई।।
अचरज देख पानप जन कहै, ताकी बोली कोई न लहै।
जो कोई लहै सोई सुरजाना, साधे साधना लहे थिर थाना।।[3]

इस प्रकार पानप में छः प्रमाण पाए जाते हैं। प्रमाण-विचार में पानप ने मीमांसकों एवं अद्वैत वेदान्त का अनुकरण किया है। पानप ने प्रमाण-विचार व्यावहारिक जगत्-सत्ता तथा पारमार्थिक सत्ता के विचार से किया। पारमार्थिक सत्य की ओर उनका अधिक ध्यान रहा है क्योंकि पानप परमसत्य के ज्ञान को ही सत्य-ज्ञान कहते हैं।

---

१. पानपबोध—१०·८
२. ,, १२·१
३. ,, १०·१, २, ४ और ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञान-प्रकाशक सद्‌गुरु

भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं में गुरु का स्थान सर्वोच्च है। गूढ़, समस्या को सुलझा देने वाला, अनुभवी महानात्मा को 'गुरु' कहा जाता है। वेद, वेदांग, उपनिषद्, गीता, रामायण आदि सभी अधार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य में गुरु का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

घेरंड संहिता में गुरु को माता-पिता के समान, देवता-स्वरूप कहा गया है। गुरु की मन, वचन तथा कर्म के द्वारा अनन्य श्रद्धा के साथ सेवा करने का भी उपदेश है।[1] गुरु की कृपा के बिना सत्य-ज्ञान नहीं हो सकता। गुरु के बिना साधक साधना में सफल नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, जिसका कोई गुरु नहीं, जो निगुरा है, उसको जीवनोद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

गोरखनाथ के अनुसार गहन का रहस्य बिना गुरु-ज्ञान के प्राप्त नहीं किया जा सकता। गुरु के उपदेश ही के द्वारा अमृतरूप तत्त्व की उपलब्धि हो सकती है। सद्‌गुरु के प्रताप से सब साधना सफल हो सकती है और जो निगुरा है वह असफल ही रहता है; तभी तो गोरख बोल उठे—

"गुरू कीजै गहिला, निगुरा न रहिला"

पानप गुरु के प्रति श्रद्धा, अटूट आस्था एवं अनन्य भाव रखते हैं। पानप ने गुरु का स्थान गोविन्द अथवा भगवान् के समान बताया है। पानप ने गुरु की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ठीक भी तो है, संसार के सब कार्यों में अनुभवी गुरु की आवश्यकता होती है फिर आध्यात्मिक साधनों की सफलता तो गुरु पर ही निर्भर है। जगत् के पूर्ण भेद सत्‌गुरु के हाथ हैं, हरि हृदय में स्थित हैं, पर गुरु बिना साक्षात्कार नहीं हो पाता, बिना गुरु मिले भ्रम नष्ट नहीं होता, यथार्थ रहस्य समझ में नहीं आता। जीव भवसागर के अथाह जल में पड़ा गोते खाता रहता है, जब तक गुरु का शब्द मल्लाह बनकर नौका को पार न लगावे। सद्‌गुरु पग-पग पर सावधान करते हैं, कुपथ से बचाते हैं, त्याग और सदाचार सिखाते हैं, अपने आचरणों की पवित्रता के प्रभाव से शिष्य का हृदय शुद्ध और निर्मल करते हैं जिससे सब संशय दूर हो जाते हैं और आत्म-विभोर हो जाता है—

औघट घाटी मनसा चढ़ी, यों मन बँधा बिन रसरी।
गुरू लखाया आतम राम, पानप परस लहयो बिसराम॥[2]

गुरू साधु-स्वभाव वाला तथा सर्वगुण सम्पन्न बताया गया है। ज्ञानी एवं आध्यात्मिक साधना में पारंगत तथा उसका अनुभवी होना चाहिए। ज्ञानी एवं महान् साधक ही तो नए शिष्य को साधना में सफल बना सकेगा।[3]

---

१. घेरंड संहिता—३·१२
२. पानपबोध—५·२
३. " ५·१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधना की अवधि में शिष्य के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित होकर उसे साधना-पथ से विचलित करने लगती हैं। यह वह समय होता है जब सद्गुरु के उपदेशामृत से ही शिष्य उन बाधाओं से बच पाता है और साधना-मार्ग में अग्रसर होता है।

मोह, माया, मद, मत्सर, क्रोध एवं कामादि साधना-पथ की बाधाएँ हैं। इनसे भी बड़ी बाधाएँ हैं—संशय अथवा भ्रम। भ्रम ही के कारण सम्पूर्ण जगत् दुःख भोगता है। भ्रम की पकड़-जकड़ बड़ी ही प्रबल है, इससे बचना कठिन ही है। सद्गुरु के उपदेश के प्रताप से संशय का भी निराकरण किया जा सकता है।[1]

योग्य और अनुभवी पथ-प्रदर्शक साधना के मार्ग में आने वाली बाधाओं का ज्ञान पहले ही से साधक को करा देता है जिससे साधक बाधाओं के आने पर साधना-पथ से विचलित न हो सके।[2] गुरू के चुनाव करने में शिष्य को सावधानी बरतनी चाहिए। यदि स्वार्थपूर्ण गुरु मिल गया, तो काम चलने वाला नहीं। योग्य और अनुभवी गुरु के सम्पर्क-मात्र से ही मन की मलीनता दूर होने लगती है। सद्गुरु के प्रताप से सद्गुण अनायास ही शिष्य में प्रविष्ट होने लगते हैं।[3]

गुरु के साथ-साथ शिष्य को भी कर्त्तव्य परायण होना चाहिए। गुरु के उपदेशों का प्रभाव शिष्य पर पड़ता है और शिष्य उन उपदेशों का पात्र नहीं है तो उपदेश भी व्यर्थ हो जाएँगे, अतः पानप ने शिष्य को भी जागरूक और सद्पात्र होने की बात कही।[4] शिष्य को सद्गुरु के प्रति निश्चल भाव से अनन्य श्रद्धा और भक्ति बरतनी चाहिए। गुरु के मुख से निकले उपदेशामृत को महामन्त्रवत् ग्रहण करके अनन्य भाव और श्रद्धा के साथ उन पर विचार और मनन करना चाहिए। शिष्य को जागरूक होना चाहिए। पानप अन्धानुकरण न करने की सीख देते हैं।[5]

शिष्य को मन, वचन, कर्म से गुरु की सेवा में लगना चाहिए। श्रद्धा और अनन्य भाव से सर्वस्व गुरु के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए।[6]

गुरु के अनुग्रह एवं कृपा से शिष्य का जीवन सफल हो जाता है, सद्गुरु शिष्य को मर्म की बात बताता है—

---

१. पानपबोध—५·२७
२. ,, ५·२६
३. ,, ५·२८
४. ,, १५·७
५. ,, ५.१८
६. ,, ५·१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भेद-भेद सबही कहै, भेदी बिना न भेद ।
पानप दरसन बुद्धि सूँ, तू उलट कंवल को छेद ॥
अन्तर राचा सो सही, बाहर सब पाखण्ड ।
कहै पानप गुरू सबद बिन, ए मरै काल के दण्ड ॥[१]

सद्गुरु धैर्यवान्, दयावान, शीलवान, ज्ञानवान एवं सभी गुणों से विभूषित, गुणों का भण्डार होता है। अपने सद्गुणों के प्रताप से शिष्य के अवगुणो का नाश कर देता है—

सद्गुरु है तो तुझको क्या, तैं सतगुरु गम नहीं पाई ।
त्रितवन उलट बसी चितवन में, जब सद्गुरु जुगत बताई ॥
सुरत गुरू मन चेला, दोऊ मिले हरि मेला ।
यह दोऊ जो मिलते नांहि, पानप हर बिन अहला जाहि ॥[२]

सत्य-ज्ञान की उपलब्धि के लिए अद्वैतावस्था की प्राप्ति के लिए तथा साधना की सफलता के लिए सद्गुरु की पारमावश्यक होती है। बिना सद्गुरु के चरम लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है। इसीलिए पानप ने सद्गुरु की महिमा का वर्णन किया और साधना के लिए गुरु की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया तथा बिना सद्गुरु के साधना का परिपूर्ण होना कठिन बताया—

गुरु मुख, कूँ हर सूझन लागै, गुरु मुख सकल भ्रम कूँ त्यागै ।
बाँध सुरत मन जीवता मरै, पानप गुरु मुख भव जल तिरै ॥[३]

ज्ञान-प्राप्ति तथा साधना की पूर्ति के लिए गुरु परमावश्यक और अनिवार्य है।

ज्ञान-विचार की विशिष्टता

पानप के अनुसार साधना-पक्ष मे ज्ञान की उपयोगिता है। ज्ञान-विचार बुद्धि-कौशल अथवा बुद्धि-विलास के लिए नहीं होना चाहिए वरन् माया अथवा अविद्यापरक मिथ्या ज्ञान के उच्छेद के लिए होना चाहिए। पानप का मत है कि ज्ञान का प्रयोजन ही माया-उच्छेद है।[४]

माया के उच्छेद तथा परम सत्य की उपलब्धि के लिए ज्ञान-विचार होना चाहिए। जिसमें बुद्धि का प्रयोग है, वहाँ अन्धानुकरण नहीं है। परन्तु जिसमें स्वानुभूति का पूर्ण संयोग है, वही ज्ञान है। बुद्धि और अनुभव के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उससे सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अतीन्द्रिय चरम तत्त्व की उपलब्धि की जा सकती है। चरम तत्त्व के ज्ञान से सब कुछ जान लिया जाता है और यही सत्य-ज्ञान है।

---

१. पानपबोध—५·१६
२. ,, ५·२२, २३
३. ,, ५.२५
४. ,, १७·२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप के अनुसार सत्य-ज्ञान का प्रादुर्भाव होते ही साधक में अलौकिक दृष्टि का अथवा मर्म चक्षुओं का प्रादुर्भाव होता है। सत्य-ज्ञान का कार्य-क्षेत्र नामरूपात्मक जगत् अथवा व्यावहारिक सत्ता से आरम्भ होता है तथा परम सत्य की अनुभूति तक है। सत्य-ज्ञान निस्सीम, अनन्त, अखण्ड, निराकार-रूप है। वही ज्ञान सात्विक एवं सत्य-ज्ञान है जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न प्राणियों में एक ही अभिन्न चरमतत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। सत्य-ज्ञान से द्वैत-भाव का लोप हो जाता है और पूर्णानन्द एवं परमानन्द की प्राप्ति होती है।[1]

तर्क-वितर्क सत्य-ज्ञान नहीं हो सकता। चरमतत्त्व की उपलब्धि के लिए स्वानुभूति परक ज्ञान ही आवश्यक होता है। पानप अनुभव-साँच-पंथी ज्ञानी पुरुष थे। अनुभव के द्वारा ही अनूप तत्त्व का ज्ञान पाया जा सकता है। पानप ने एक समन्वित भाव उद्घोषित किया है—

ग्यांन ध्यांन तो एक है, हर मिलने की चाह।
दूजा ग्यांन कहाँ से आया, यो जग धक्के खाय॥
ग्यांन सोई तासे पावै चरन, सहज मिटत है जनम मरन।
ध्यांन सोई जासूँ प्रभु कूँ देखे, कहै पानप सूझे पुरुष अलेखे॥[2]

प्रातिभज्ञान-सम्पन्न पानप ने ज्ञान-विचार के छः प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अनुपलब्धि, शब्द तथा अर्थापत्ति प्रमाण माने हैं। ज्ञान-विचार के क्षेत्र में पानप मीमांसा एवं अद्वैत वेदान्त से प्रभावित है।

पानप का ज्ञान-विचार नामरूपात्मक जगत् अथवा व्यावहारिक सत्ता के लिए ही नहीं है, वरन् पारमार्थिक तत्त्व एवं आध्यात्मिक परिपूर्णता के हेतु है।

---

१. पानपबोध—१४·२
२. ,, —१४·७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योग-साधना (योग-मार्ग)

पानप की योग-युक्ति, यम-नियम, पापप के योग का वैशिष्ट्य ।

योग कमाया चाहे, सुरत, निरत लौ-लाव ।
कहै पानप वहाँ परम पुरुष है, निज हर दरसन पाव ।।
भटकै सुरत-निरत नहीं स्थिर, मूरख काह सिहाय ।
पानप कहै बहें दोऊ तन मन, योह कैसा योग कमाय ।।
योग जुगत का आधार सिंघासन, अलख पुरुष की पूजा ।
भरम बिलाया घट में पाया, एक और नहीं दूजा ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९ | योग-साधना (योग-मार्ग)

योग भारतीय दर्शन एवं हिन्दू-धर्म की साधना का प्रमुख अंग रहा है। यह हिन्दू-जाति की सर्वाधिक एवं सुविख्यात थाती है। आध्यात्मिक साधना का यही एक अंग है जिस पर वाद-विवाद नाम मात्र के लिए है। योग को मोक्ष-प्राप्ति का अचूक साधन कहा गया है।

योग शब्द 'युज्' धातु के पश्चात् कारण एवं भाववाच्य में घञ् प्रत्यय लगाने से बना है। युज् का अर्थ है—"जुड़ जाना, मुक्त हो जाना।"

उपनिषदों में स्थिर इन्द्रिय-धारण को योग कहा गया है। पातंजल योग-दर्शन में चित्त की वृत्तियों के निरोध को अथवा वृत्तियों के सर्वथा स्थगित हो जाने को 'योग' कहा गया है।

गीता में संयत मन का आत्मा में स्थिर हो जाना योग कहा गया है।

कोशकारों ने 'योग' शब्द के अनेक अर्थ दिए हैं। दर्शनशास्त्र में योग शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट प्रणाली जिसके द्वारा आत्मा एवं परब्रह्म में एकात्मकता स्थापित की जा सके, होता है।

जीवात्मा विविध प्रकार की साधना के द्वारा परमात्मा में सम्बद्ध हो सकता है। विवेक और वैराग्य से जीव जब अपने अस्तित्व को भुला देता है और सम्पूर्ण जगत् में अविनाशी रूप चरम तत्त्व को देखता है और ज्ञान द्वारा ब्रह्मात्मैक्य की सिद्धि कर पाता है, तब इसे ज्ञान-योग कहा जाता है।

जीवात्मा जब फलाशा को त्याग कर निष्काम भाव से लोक-कल्याणार्थ कर्म करते हुए निज स्वरूपावस्थान की स्थिति को प्राप्त करता है तब इसे कर्मयोग की संज्ञा दी जाती है। जीवात्मा जब परमात्मा के नाम का जाप करता हुआ ध्यान निमग्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होकर परमात्मा में लीन हो जाता है तब इसे मन्त्र योग कहा जाता है। विशिष्ट प्रकार की क्रिया द्वारा साधक जब पर-ब्रह्म से तादात्म्य प्राप्त करता है और अपने अंग-प्रत्यंग को साधता है, तो इसे हठयोग कहते हैं। साधक जब अपने मन को विशिष्ट रूप में संयुजित करके परमात्मा के दिव्य स्वरूप का मनन करते हुए समाधिस्थ होकर ईश्वर में लीन हो जाता है तब इसे राजयोग कहते हैं। इस प्रकार के योग-मार्गों का वर्णन योग-साहित्य में मिलता है।

भारतीय साधकों का ध्यान प्राचीन काल ही से योगाभ्यास की ओर गया। योगाभ्यास से सम्बद्ध उल्लेख वेदों में पाया जाता है। ऋग्वेद में उल्लेख है—'अनेक तपस्वी वायु के आधार पर जीवनयापन करके मननशील रहकर योगाभ्यास करते थे।[1]

उपनिषदों में योगाभ्यास की पूर्ण प्रतिष्ठा है। श्वेताश्वतरोपनिषद् का कथन है कि बुद्धिमान साधक सिर, गला और छाती को ऊँचा उठावे, शरीर को सीधा और स्थिर करके समस्त इन्द्रियों को मन के द्वारा हृदय में निरुद्ध करके ऊँकार रूप नौका द्वारा सम्पूर्ण भयंकरों को पारकर सकता है।[2]

गीता में योग को अनेक रूपों में वर्णित किया गया है। गीता में 'योग कर्मसु कौशलम्' को भी योग कहा गया है।

बौद्ध दर्शन में भी योगाभ्यास पर बल दिया गया है। बौद्ध धर्म-साधना में 'अठ्ठगिकम् मग्गम्' अर्थात् अष्टांग मार्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

योग-दर्शन का प्रतिपाद्य योग है। पातंजल योग के अनुसार क्लेशों से मुक्ति पाने तथा चित्त-शुद्धि के लिए योग के अंगों का अनुष्ठान करके अशुद्धि का नाश करना तथा ज्ञान का प्रकाश पाना आवश्यक है। योगांगों का विवरण इस प्रकार है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, इसी से इसे अष्टांग योग भी कहा जाता है।

सांख्य दर्शन, अद्वैत वेदान्त, द्वैताद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत आदि दर्शनों में योग-साधना को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।

नाथ-पंथ के प्रवर्तक गोरखनाथ ने हठयोग की पुनः स्थापना करके योग-मार्ग के महत्त्व को बढ़ावा दिया। गोरखनाथ के पश्चात् तो योगमार्गों की बाढ़-सी आ गई।

योगाभ्यास के सम्बन्ध में गोरखनाथ ने संक्षेप में कहा है—

अवधू नव पाटी रोकिलै बाट, बाई बाणेजे चौसठि हाट।
काया पलटै अविचल विध, छाया विवरजित निपजै सिध॥[3]

---

१. ऋग्वेद १०·१३६·२
२. श्वेता० २/८
३. गोरखबानी—पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(क) पानप की योग-युक्ति

योग-साधना में पानप को जो अनुभव प्राप्त हुए उनसे उनकी सन्तुष्टि न हो सकी। हठयोग और लय योग आदि से उनको अरुचि हो गई। यौगिक क्रियाओं का आडम्बर उनको जँच नहीं रहा था। ये क्लिष्ट साधनाएँ जन-साधारण के लाभ की न थीं। इतना ही नहीं, इन सब क्रियाओं ने बड़े-बड़े महान् सिद्धों को भी भ्रम में और संशय में उलझा रखा था।

संशय अथवा भ्रम या अज्ञान मन के विकार हैं। इनके वशीभूत होकर जीवात्मा अपने सत्य स्वरूप को भूल जाता है और दुःख-सुख का भोगने वाला बनता है। यदि मन विकार शून्य बन जाए और वह केन्द्रीभूत हो जाए तो साधना परिपूर्ण कही जा सकती है और चरम लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है।

योग की ऐसी विधि जिसके द्वारा मन केन्द्रीभूत हो जाए और वह विकार रहित होकर स्थिर हो जाए, 'योग-युक्ति' कहलाती है।

मन के विकारों का परित्याग करने को पानप ने अनेक स्थानों पर कहा है। अपने मन से पानप ने योग-युक्ति की जानकारी का आग्रह किया है क्योंकि बिना योग-युक्ति के सद्गुरु की सीख पूर्ण नहीं की जा सकती और मन को विषय-रहित नहीं किया जा सकता।[1]

मन का केन्द्रीभूत हो जाना परमगति होता है। इस स्थिति में जीवात्मा अपने निज स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। परमगति अथवा योग-युक्त अवस्था एकार्थक ही है।

गीता में योग-युक्त योगी को सर्वश्रेष्ठ कहा है—

'हे कौन्तेय ! सुख-दुःख जो हमें होता है वह दूसरों को भी होता है, ऐसी दृष्टि से जो सर्वत्र देखे और सर्वदा सद्व्यवहार करे वह योगी श्रेष्ठतम है।[2]

योग-युक्ति के सम्बन्ध में गीता और पानप के विचार समानता रखते हैं। योग-युक्ति साधना के क्षेत्र में श्रेष्ठ है।

मन की स्थिर धारणा योग द्वारा प्राप्त होती है परन्तु यहाँ मन को केन्द्रीभूत करने के लिए किसी बाह्योपचार तथा मिथ्याडम्बर की अपेक्षा नहीं है। विकार-रहित मन के लिए मन-साधना ही परम कर्त्तव्य होता है। आसक्ति रहित मन स्थिर हो जाता है और मन के स्थिर हो जाने पर इन्द्रियों की वृत्तियाँ भी साधक के वश में हो जाती हैं। वृत्तियों के लय होने से साधक विषम तथा वासना-रहित हो जाता है और उसे योग-युक्त की संज्ञा दी जाती है।

योग-युक्त योगी के विषय में पानप का मत है कि योगी को किसी आडम्बर की आवश्यकता नही होती। उसकी साधना मन ही पर अवलम्बित होती है। वह

---

१. पानपबानी—१०·१८
२. गीता—६·३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिन-रात, प्रतिपल, क्षण सजग रहता है। उसका आसन मन होता है, उसकी समाधि मन ही होती है। उसका वेश, खपरा, सींगी आदि मन ही होता है। वह इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है और वासना को अपनी साधना द्वारा भस्म कर देता है। उसका उपदेश सुनना अथवा देना, या जाप करना सब कुछ मनोयोग ही होता है। इसी को पानप ने 'सुरत बाँधना' कहा है। सहस्रों जाप करने से जो फल नहीं मिल सकता उसे वह मन को केन्द्रीभूत करके पा लेता है।[1]

पानप के अनुसार योग-युक्त योगी का मन-मारण ही परम कर्त्तव्य है; उसकी सम्पूर्ण साधना का केन्द्र मन ही होना चाहिए। योग-युक्ति की सिद्धि कोई सुगम कार्य नहीं है। भले ही इसमें आडम्बर नहीं है, मुद्रा घट कर्म, समाधि आदि का ठाट-बाट नहीं है, कठिन और कष्ट साध्य यौगिक क्रियाएँ भी नहीं हैं, फिर भी योग-युक्ति दुर्लभ साध्य है। यह बिरले योगियों का खेल है। इसे निर्भीक और बिरला योगी ही साध सकता है। चंचल चित्त को निश्चल करने पर ही राम-रसायन का पान किया जा सकता है।[2]

पानप बार-बार कहते हैं इसमें मन से मन की साधना की जाती है। मन द्वारा मन के समझाने पर चरम सत्य की उपलब्धि हो जाती है।[3]

योग-युक्ति के साधक के लिए पानप ने एक रूपरेखा प्रस्तुत की है। प्रथम कर्त्तव्य है मन का निश्चल करना। सहज आसन की सिद्धि, मधुर वचन बोलना, चित्त को केन्द्रित करना, त्वचा को भस्म अर्थात् तप द्वारा स्वच्छ करना, सभी बाह्योपचार और आडम्बर का परित्याग, इन्द्रिय-निग्रह, चरम सत्य में ध्यानावस्थित होना, हृदय को निर्मल करना तथा ब्रह्म में तल्लीन होना। परमगति पाने के लिए इस युक्ति का पालन अनिवार्य है।

पानप की इस रूप-रेखा में मन, हृदय, चित्त तथा काया की पवित्रता पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इनकी निश्चलता के लिए साधक को इन्द्रिय-निग्रह करना चाहिए क्योंकि इन्द्रिय-निग्रह से मन केन्द्रित हो जाता है। साधक के मन से पाप-पुण्य रूपी वासना का लोप हो जाता है।

गीता में इस बात को स्वीकार किया गया है। गीता का कथन है—"साधक को सभी इन्द्रियों का संयमन कर योग-युक्त और मत्परायण होकर रहना चाहिए। जिसकी इन्द्रियाँ अपने अधीन हो जाती हैं उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।"

इन्द्रियों की वृत्तियाँ सदैव ही नामरूपात्मक जगत् के विषयों की ओर रहती हैं। वे उन विषयों से आसक्त रहती हैं और उन्हीं में लिप्त रहती हैं। इन्द्रियों का

---

१. पानपवानी—१७·८
२. ,, —११·५
३. ,, १०·१०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वामी मन इन विषयों का रस-पान करने में युक्त रहता है। एक-एक विषय के पीछे दौड़ता रहता है। चरम सत्य की ओर एक क्षण के लिए भी नहीं होता। इसी से सभी ने इन्द्रिय-निग्रह पर जोर दिया है।

मन को विकार-शून्य करने के लिए यम-नियमादि का पालन करने का उपदेश दिया गया है।

(ख) यम

पातंजल योग-दर्शन में यमों की संख्या पांच दी गई है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।

अहिंसा—यमों में अहिंसा को प्रमुखता दी गई है। अहिंसा हमारे भाव और हृदय का सात्विक विकार है। सब प्रकार से सर्वकालिक रूप में सभी प्राणियों के साथ बैर-भाव त्याग कर प्रेम-प्रीति से व्यवहार करना अहिंसा कहा गया है। अहिंसा को महाभारत में परम धर्म कहा गया है।[1]

पानप ने जीव-हिंसा तथा कष्ट देने वालों की घोर भर्त्सना की है।[2] तामसिक साधकों के प्रति व्यंग से उन्होंने कहा है कि जब जीव-हिंसा धर्म है और जीव-हिंसा करने वाले धार्मिक हैं, मुनि हैं तो फिर अधर्मी और कसाई कौन है? अर्थात् जीव-हिंसा सबसे बड़ा अधर्म है।[3]

सत्य—यम का दूसरा अंग सत्य है। यह भी मन का सात्विक विकार है। मन, वचन एवं कर्म के द्वारा सत्याचरण में रत रहना सत्य का पालन कहलाता है। जब मनुष्य सत्य ही विचारता है, सत्य ही बोलता है तथा सत्य कर्म ही करता है तब वह सत्यशील पुरुष कहा जाता है। 'सत्य' शब्द का धात्वर्थ है—'स्थिर' सदैव विद्यमान अर्थात् जिसका कभी अभाव न हो, जो त्रिकाल-अबाधित हो। इसीलिए मूल-तत्त्व को चरम सत्य अथवा ब्रह्म कहा गया है। पानप के शब्दों में सत्य वही है जो स्थिर है, परिवर्तनशील पदार्थ तो असत्य ही होते हैं।[4] पानप उसी को सत्यव्रत-धारी कहते हैं जो सत्य ही बोलता, सत्य ही ग्रहण करता है तथा असत्य का परित्याग कर सत्य का पालन करता है। ऐसा सत्यशील मनुष्य निर्भय हो जाता है, वह अमर पद पा जाता है।[5] पानप ने सत्याचरण पर अधिक बल दिया है; उन्होंने केवल ब्रह्म ही को चरम सत्य कहा है, अन्य वस्तु तो मिथ्या है। जो साधक सर्वत्र सत्य ही को जानता है उसे असत्यमार्ग पर चलना नहीं चाहिए। सत्याचरणशील मनुष्य कभी भी

---

१. "अहिंसा परमोधर्मः" महाभारत ११/१३
२. पानपबोध—१७·३
३. ,, १७·६
४. सुषमवेद-ज्ञान सुषमनी—८.
५. ,, ,, —११.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्य को नहीं छोड़ता ।[१] जीवन सत्यमय हो जाए तभी सत्याचरण की सिद्धि होती इसी से पानप ने 'सांच नाम', 'सत्य लोक', 'सतपुरुष' आदि का प्रयोग किया है ।[२]

अस्तेय—तृतीय यम को अस्तेय की संज्ञा दी जाती है। जो वस्तु अपनी नहीं है, जिस पर दूसरे का अधिकार है और बिना उसकी अनुमति के उसका लेना चोरी कहलाता है। अस्तेय अंग का पालन करने से साधक में विरक्ति का भाव उत्पन्न हो जाता है। पानप का मत है कि सभी पदार्थ विश्व-नियन्ता के द्वारा सभी प्राणियों की आवश्यकतानुसार उनके अलग-अलग भाग के अनुपात से निर्धारित किए गए हैं। सबको अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार उनका उपभोग करना चाहिए। जिसके लिए जितना निर्धारित है, उसे उसी के अनुपात से मिलता है। पानप केवल चोरी न करने के भाव को ही अस्तेय नहीं कहते बल्कि उनके अनुसार मन में चोरी का भाव आना, छल, कपट से धनार्जन करना, अपनी आवश्यकता से अधिक समान का उपभोग करना आदि अनुचित है ।[३] पानप अस्तेय भाव को समर्पण का भाव भी मानते हैं ।[४] त्याग जो परस्पर किया जाता है उससे हम एक-दूसरे के निकट आते हैं; अतएव त्याग बुद्धि से अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुओं का संयम के साथ उपभोग करना चाहिए, तभी अस्तेय अंग का पालन हो जाता है।

ब्रह्मचर्य—भारतीय धर्म-साधना में ब्रह्मचर्य-व्रत का महत्त्व है। यम का चतुर्थ अंग ब्रह्मचर्य है। 'मनवाणी' और शरीर से होने वाले सब प्रकार के मैथुनों का सभी अवस्थाओं में सदा-सर्वदा त्याग करके सब प्रकार से वीर्य की रक्षा करना 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है। साधक के लिए वीर्य-रक्षा का बड़ा महत्त्व है। वीर्य-रक्षा के आधार पर शरीर हृष्ट-पुष्ट होने से साधना के मार्ग की अनेक बाधाओं को साधक सहन कर पाता है और साधना में सफलता पाता है। पानप ने वीर्य-रक्षा के सम्बन्ध में भाँति-भाँति के उपदेश दिए हैं; उन्होंने दिन-रात विषय-भोग में लिप्त रहने वालों को नरकगामी बताया है ।[५] ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन के लिए अस्वाद की साधना की जाती है। पानप ने भाँति-भाँति के तामसिक भोजन को हानिकारक तथा स्वादसुख को कामवासना की श्रेणी में ही रखा है। जिह्वा-आस्वादन एवं नारी-संग का साधक को परित्याग करना चाहिए, विषय-कामना ब्रह्मचर्य-व्रत में बाधक है, अतएव पानप ने इन सभी का परित्याग करने का परामर्श दिया है ।[६]

---

१. सुषमवेद-ज्ञान सुषमनी—१४
२. पानपबोध—८·११
३. पानपबानी—१८·१
४. ,, —११·४,
५. ,, —१२·६
३. ,, —१६·११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपरिग्रह—अपरिग्रह पाँचवाँ यम है। अपने उपभोग एवं स्वार्थ के लिए धन, सम्पदा एवं भोग-सामग्री का संचय करना परिग्रह है। इसके प्रतिकूल इनका संचय न करके भगवान् के आश्रय रहकर साधना करना उपरिग्रह है। अपरिग्रह की सिद्धि के लिए साधक को धैर्य, विश्वास, अनन्य श्रद्धा एवं सन्तोष आदि सद्गुणों को ग्रहण करना होता है। पानप ने पेट समाते की चर्चा करते हुए बताया कि ईश्वर में अटूट विश्वास, सन्तोष तथा आवश्यकतानुसार वस्तुओं को अंगीकार करना साधक के लिए कर्त्तव्य है।[1]

धर्म-ग्रन्थों में यमों की संख्या पाँच ही दी गई है। कहीं-कहीं इनकी संख्या पाँच से अधिक दी गई है। हठयोग प्रदीपिका में 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जवं, मिताहार तथा शौच ये दस यम बताए गये हैं।[2]

मन एवं हृदय की निर्मलता के साथ-साथ साधक को शरीर, उसके अंग प्रत्यंग की बाहरी एवं भीतरी स्वच्छता अनिवार्य है एदतर्थ नियमादि का विचार विवेच्य है—

(ग) **नियम**—शरीर की आभ्यन्तरिक स्वच्छता के लिए साधक को नियमों की साधना आवश्यक रूप में करनी पड़ती है। पातंजल योग-दर्शन में नियमों की संख्या पाँच दी गई है—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्राणिधान।[3] हठयोग-प्रदीपिका में तप, सन्तोष, दान, ईश्वरी पूजा, सिद्धान्त, श्रवण, धैर्य, शम, दम एवं आस्तिकता आदि दस नियम बताए गए हैं।[4] कालान्तर में यम-नियम की संख्या में वृद्धि होती गई। कहीं-कहीं कुछ यमों को नियमों में प्रविष्ट कर लिया गया और कहीं कुछ नियमों को यमों में। योग-दर्शन द्वारा पाँच-पाँच यम एवं नियम योग मार्गों द्वारा अंगीकार किए जाते रहे हैं।

शौच—जल, मिट्टी आदि के द्वारा शरीर, वस्त्र, गृह आदि को स्वच्छ करना बाहरी स्वच्छता कहलाती है। साधक को बाहरी स्वच्छता तो करनी होती है परन्तु उसके लिए आन्तरिक स्वच्छता करना परम आवश्यक कर्त्तव्य होता है। जप, तप एवं शुद्ध विचारों के द्वारा आन्तरिक स्वच्छता को ही शौच की संज्ञा दी जाती है। योगी को शौच अंग की साधना करनी होती है। योग-दर्शन में कहा गया है कि शौच नियम के पालन से योगी को निज अंगों में वैराग्य और दूसरों से संसर्ग न करने की इच्छा उत्पन्न होती है। इतना ही नहीं, इसके पालन से अन्तःकरण की शुद्धि, मन

---

१. पानपबानी—१४·७
२. हठयोग प्रदीपिका—१·१७
३. पातंजल याग दर्शन—२·३२
४. हठयोग प्रदीपिका—१·१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों का वश में होना और आत्म-साक्षात्कार की योग्यता भी आती है।[1]

पानप ने योगी के लिए अन्तःकरण की शुद्धि परमावश्यक कार्य माना है। उन्होंने कलुषित हृदय के रहते हुए बड़ी से बड़ी योग-सिद्धि को भी तुच्छ बताया है।[2] मुँह से ज्ञान की बात कहना और हृदय को छल-कपट से परिपूर्ण रखना, पानप पानी से घी निकालने जैसा व्यर्थ प्रयास बताते हैं। यदि हृदय अपवित्र है तो ऊपरी शारीरिक स्वच्छता, वेश-भूषा आडम्बर ही है।[3]

स्पष्ट है, पानप ने योगी के लिए शौच-नियम का पालन करना अनिवार्य बताया है। योगी का मन पवित्र एवं परिशुद्ध होना ही सच्चा योग है।

सन्तोष—परिणाम अथवा फलाशा के विचार से रहित होकर स्वकर्त्तव्य को करते रहना, किसी वस्तु के अभाव पर खिन्न न होना, जिस स्थिति एवं अवस्था में रहने का संयोग हो जाए, उसी में सहर्ष रहना तथा किसी प्रकार भी अपनी इच्छा के वशीभूत न होना 'सन्तोष' कहलाता है।

सन्तोष की साधना से मन का लालच, मोह, माया एवं काम आदि का नाश हो जाता है। योगियों ने सन्तोष नियम की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। महर्षि पंतजलि उसे परम सुखदाता कहते हैं। पातंजल योग-दर्शन में वर्णित है—'सन्तोष से उत्तम दूसरा सुख नहीं है। इसके ग्रहण करने से सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है।[४] इच्छाएँ अपरिमित होती है। समुद्र की तरंगों की भाँति वे मनुष्य के मन में सदैव विद्यमान रहती हैं, आती-जाती रहती हैं। इच्छाओं के वशीभूत होकर ही मनुष्य अनेक व्याधियां, दुख और कष्टों में फँसता है।

योगी को इन आशा, तृष्णा, कामना, इच्छा आदि को ही जीतना होता है। इन पर सन्तोष नियम की साधना के द्वारा ही विजय पायी जाती है। पानप ने सन्तोष-नियम का पालन करना योगी के लिए परम हितकारी लिखा है। योगी को भगवान् पर विश्वास रखना चाहिए, वही सामर्थ्यवान है, सब कुछ कर सकता है। योगी को मन में आशा, तृष्णा, मनोरथ को स्थान नहीं देना चाहिए।[५] सन्तोष के साथ अपनी रूखी-सूखी रोटी खाना पानप उत्तम बताते हैं परन्तु किसी के विस्तृत

---

१. पातंलज योग-दर्शन—२·४०, ४१
२. सुषमवेद—८·५
३. ,, ८·११
४. पातंजल योग-दर्शन—२·४२
५. सुषमवेद—१२·१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य की इच्छा करना व्यर्थ ही बताते हैं।[1] पानप द्वारा सन्तोष नियम का पालन-करना योगी के लिए एक परम कर्त्तव्य निश्चित किया गया है।

तपश्चर्या—मन, इन्द्रिय, शरीर आदि के संयम के हेतु व्रत-उपवास एवं कई प्रकार से शरीर आदि को कष्ट देकर साधने को तप कहा जाता है। जैसे—सुनार धातु को अग्नि में तपाकर शुद्ध कर लेता हैं, ऐसे ही योगी तप के प्रभाव से मन, इन्द्रियादि का संयमन करता है। पातंजल योग-दर्शन में वर्णित है कि तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है, तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती हैं।[2] धार्मिक साधना में व्रत, उपवास, तीर्थ-यात्रा, तीर्थ-स्थान आदि को महत्त्व दिया जाता रहा है। पानप ने जप, तप, तीर्थ-यात्रादि को विशेष महत्त्व नहीं दिया। योगी को युक्तिपूर्वक अपने भाव-जगत् को परिशुद्ध करके भगवान् में अनन्य श्रद्धा रखनी चाहिए, यही पानप का तप है।[3] पानप ने योगी को विनयशील, सहनशील, धैर्यवान् तथा शांतिप्रिय बनने की सीख दी है।[4] ये गुण कठिन साधना के उपरांत ही उपलब्ध हो सकते हैं। पानप के अनुसार योगी को इतना सहनशील होना चाहिए कि उसकी सहनशीलता के सामने चन्द्रमा की शीतलता एवं हिम का शीतत्व भी शांत हो जाए। सहनशीलता का पराकाष्ठा ही पानप की कसौटी है।[5] इस तप के द्वारा ही योगी अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर पाता है। काया और इन्द्रियों का संयम अपने आप ही हो जाता है। पानप का तप बाहरी नहीं है, आडम्बर नहीं है, वरन् वह आभ्यान्तरिक है, अन्तर्मुखी है।[6]

स्वाध्याय—चौथा नियम स्वाध्याय कहलाता है। जिन कार्यों से कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का बोध हो सके तथा ऐसे धार्मिक साहित्य, वेदादि धर्मशास्त्र, महान् आत्माओं के उपदेशादि का पठन-पाठन एवं भगवन्नाम का जाप करना स्वाध्याय कहलाता है। अपने दोषों की जानकारी और उन्हें छोड़ना स्वाध्याय ही कहलाता है। पानप ने साधु-जन-सेवा और ज्ञानी पुरुषों का सम्पर्क भी स्वाध्याय-कोटि में ही माना है। साधुजन की सेवा और सम्पर्क से योगी के दोष दूर हो जाते हैं, कुबुद्धि का नाश हो जाता है और ज्ञान का प्रकाश होता है।[7] पानप का मत है कि अपनी दुर्बलताओं के

---

१. सुषमवेद—१२·२७
२. पातंजल योग-दर्शन—२·४३
३. पानपबोध—१०·४
४. ,, १४·२७
५. ,, १५·१३
६. ,, १३·५
७. ,, ४·१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रति सजग रहकर उनका सुधार करते रहना चाहिए। ऐसा साधक ही पानप का मित्र हो सकता है।[1] जो साधक सदा-सर्वदा अपने अन्तस्तल में दोषों को खोजकर दूर करता रहता है उसे मुक्ति अवश्य ही मिल जाती है, ऐसा पानप का मत है। अपने हृदय को निर्मल और परिशुद्ध रखना, सुरत संभाल कर रखना ही पानप की योग-युक्ति है।[2] भगवान् का जाप करना भी स्वाध्याय ही है क्योंकि उसके प्रभाव से योगी का मन निश्चल तथा केन्द्रीभूत हो जाता है। पानप ने नाम-जप को सर्वोत्कृष्ट कर्म कहा है।[3]

ईश्वर-प्राणिधान—योग-साधना का पाँचवाँ नियम ईश्वर-प्राणिधान है। ईश्वर के शरणापन्न हो जाने का नाम ईश्वर-प्राणिधान है। भगवान् के नाम, रूप, गुण तथा प्रभाव आदि का श्रवण, कीर्तन तथा मनन करना, अपने सब कर्मादि का भगवान् के प्रति समर्पण कर देना, भगवान् का अनुशासन-पालन करना तथा भगवान् से अनन्य प्रेम करना, ईश्वर-प्राणिधान के प्रमुख अंग हैं।

पातंजल योग-दर्शन के अनुसार ईश्वर-प्राणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।[4] पानप ने ईश्वर-प्राणिधान का महत्त्व प्रतिपादित किया है। ईश्वर की शरण में गया हुआ साधक निश्चिन्त हो जाता है। ईश्वर के प्रति अटल विश्वास उसे परम-गति प्रदान करा देता है।[5] भगवान् के प्रति अनन्य श्रद्धा रखना पानप का मुख्य कर्म बन गया था। उन्होंने अपना सब कुछ 'हर' के प्रति समर्पण कर दिया था। साधक अपनापन खोकर ही भगवान् की शरणगति पा सकता है। पानप का तन, मन, धन सब कुछ भगवान् को अर्पित है।[6] योग-युक्ति के लिए किसी वेष, आडम्बर अथवा तपोभूमि की आवश्यकता नहीं है।

(घ) ध्यान—मन विकार शून्य हो जाने पर उसे ध्यान के द्वारा केन्द्रित करने का आदेश पानप ने भी दिया है।

हठयोग प्रदीपिका का मत है—'मन के स्थिर होने से प्राण भी वहीं स्थिर होने पर बिन्दु रूप वीर्य भी स्थिर हो जाता है। बिन्दु के स्थिर होने पर यह शरीर शुद्ध और परिपुष्ट हो जाता है तथा स्थिर हो जाता है।[7] पानप ने योगी को ध्यान-योग की साधना करने का निर्देश किया है। पानप मन, वचन और कर्म के द्वारा

---

१. पानपबोध—४·१७
२. ,, ११·१८
३. ,, १२·३१
४. पातंजल योग-दर्शन—२·४५
५. पानपबानी—४·३१
६. ,, ८·१०
७. हठयोग प्रदीपिका—४·२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यान की सिद्धि को उत्तम ध्यान कहते हैं। उनके अनुसार ध्यान का तारतम्य अखंडित होना चाहिए। वन में वाद्य-ध्वनि को सुनकर मृग उसके प्रति दत्तचित्त होकर ध्यानावस्थित हो जाता है, उसे तन की भी चिन्ता नहीं रह जाती है। बधिक उसे मार लेता है पर उस मृग का ध्यान नहीं डिगता।[1]

योग-युक्त साधक की दृष्टि सम हो जाती है। वह सभी प्राणियों को अपने समान देखने लगता है और उन्हीं में आत्म-दर्शन करके आनन्दित होता है। उसका मन उसके वश में हो जाता है और समस्त विश्व भी उसके वश में होता है। निरासक्त योगी निजस्वरूप में तल्लीन रहता है, ऐसा ही साधक पानप का योग-युक्त है। पानप का योग-युक्त गीता का स्थितप्रज्ञ है। पानप का योग-युक्त सम्पत्ति-विपत्ति में समान भाव से रहता है। वह मान-अभिमान का परित्याग कर देता है और स्तुति, निन्दा एवं आशा को छोड़ देता है। उस साधक को न शोक होता है और न उत्साह ही। वह निर्लेप निर्विकार भगवान्-स्वरूप होता है।[2] वह अपनी आत्मा में तल्लीन अपने स्वरूप को पहचान कर निमग्न हो जाता है। उसे शरीर के प्रति भी आसक्ति नहीं रहती और न किसी शोक अथवा रोग का भय ही रह जाता है। उसका मन निश्चल और अडिग हो जाता है! वह निर्भय हो जाता है, सब प्रकार से परिपूर्ण। वह मृत्यु पर विजय पा जाता है। पानप का योग-युक्त चिर सुख तथा परमानन्द में अवस्थित हो जाता है।[3] गीता में योगी की इस अवस्था को ब्राह्मी स्थिति कहा गया है। ब्राह्मी स्थिति पा जाने पर साधक मोह में नहीं फँसता, अनतकाल में अर्थात् मृत्यु-समय भी इस स्थिति में रहकर ब्रह्म-निर्वाण अर्थात् ब्रह्म में मिल जाने का सुख तथा मोक्ष पाता है।[4] ब्राह्मी स्थिति, पानप की उन्मनी रहनी, सहजावस्था अथवा सहज समाधि ही है। समाधि योग का चरम फल है। जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य ज्ञान के उदय को ही समाधि की संज्ञा दी गई है।

पातंजल योग-दर्शन में समाधि के सम्बन्ध में कहा है—'जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निजस्वरूप शून्यवत् हो जाता है, तब वह ध्यान ही समाधि हो जाता है।[5]

समाधि कई प्रकार की होती है—ध्यानयोग-समाधि, नादयोग-समाधि, रसानन्द योग-समाधि, लयसिद्धयोग-समाधि, भक्तियोग-समाधि राजयोग-समाधि तथा

---

१. पानपवानी—४·२१
२. ,, १३·५
३. सुषमवेद—१०·५
४. गीता—२·७२
५. पातंजल योग-दर्शन—३, ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहज-समाधि। सब समाधियों में सहज समाधि को सर्वोत्तम एवं उत्कृष्ट कहा गया है।

पानप ने सहज समाधि को सर्वोत्तम बताया है। इस सहज-समाधि में प्राणायाम, आसन, मुद्रा, ध्यान एवं धारणा आदि की कोई आवश्यकता नहीं। आँख मूँदे बिना कान बन्द किए बिना ही इसकी सिद्धि हो जाती है। सहज-भाव के साथ खुली आँखों से भगवान् को देखना ही सहज समाधि है। जिस योगी को सहज-समाधि सिद्ध हो जाती है उसका कहना-सुनना नाम-जप है, कर्म करना पूजा है, आना-जाना परिक्रमा है, उसका सोना-बैठना ही दण्डवत् करना है। एक बार यदि यह सिद्ध हो जाए तो साधक परमानन्द का रसपान करने में तल्लीन रहता है, मन आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। पानप ने उन्मनी रहनी को सहज समाधि कहा है।[1] इस स्थिति में द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है, यह अद्वैतावस्था है। सम्पूर्ण विश्व आत्ममय हो जाता है। जीवन के सभी क्षेत्रों में सदा-सर्वदा, सहज-रूप में आत्म-दर्शन उपलब्ध होता रहता है। योगी परिपूर्ण हो जाता है। उसका मन विकार-रहित होकर केन्द्रीभूत हो जाता है।

(ङ) पानप के योग का वैशिष्ट्य—

पानप ने योगाभ्यास किया और अपने जीवन का अधिक भाग योग-भाधना में बिताया। उनकी योग-साधना की कई अवस्थाएँ हैं और प्रत्येक अवस्था में योग-सम्बन्धी साधना में परिवर्तन होता रहा है।

पानप में हठयोग, मंत्रयोग, लययोग, सहजयोग तथा राजयोग आदि सभी प्रमुख योग-पद्धतियों का समावेश पाया जाता है।

उन्मुक्त स्वभाव वाले पानप को पाखण्ड और व्यर्थ के आडम्बर से अरुचि थी। योगपंथी साधकों की तामसिक एवं क्लिट साधना का उन्होंने विरोध किया।[2] यौगिक क्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली सिद्धियों का अनौचित्य उन्होंने सबको बताया और उन योग-सम्प्रदायों को हेय बताया जो इनका प्रचार करते थे। क्लिष्ट योग-साधनाएँ जन-साधारण के लिए चक्रव्यूह के समान थीं। उनकी कथनी और करनी में प्रतिकूलता थी और वे समाज के लिए उपयुक्त नहीं थी। पानप की योग-साधना का केन्द्र मन है। पानप की योग-साधना, मन-साधना, मन-मारण अथवा मनोयोग है। पानप इस बात को भली-भाँति जानते थे कि मनुष्य को बंधन में रखने वाला मन ही है और उसे मुक्ति दिलाने वाला भी मन ही है। इसे निष्काम, निर्विषय, निस्संग कर देने से मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। पानप ने

---

१. पानपबानी—५·७

२. ,, —१४·२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन को विकार शून्य करने के लिए तथा उसे केन्द्रीभूत करने के लिए ही योग-साधना की। जब तक दर्पण धूल से मलिन है तब तक उसमें अपना स्वरूप नहीं देखा जा सकता और इसी प्रकार जब तक हृदय निर्मल नहीं है तब तक आत्म-दर्शन भी असम्भव है। अतः हृदय-रूपी दर्पण को पानप ने सदैव निर्मल रखने की शिक्षा दी।

जैसा कि पहले कहा गया है कि मन-साधना के लिए क्लिष्ट साधना की कोई अपेक्षा नहीं। इसके लिए आवश्यकता है योगी की आत्म-दृढ़ता की। योग-युक्ति द्वारा मन केन्द्रीभूत हो जाता है और साधना की सिद्ध हो जाती है। पानप द्वारा प्रतिपादित योग-साधना योग-युक्ति है। योग-युक्ति सब योग मार्गों से सरल और सर्वोत्तम है। माया की गहरी जड़ें मन और उसकी वृत्तियों में होती हैं। मन परिशुद्ध एवं निर्मल होने पर भी डिग सकता है, विचलित हो सकता है। मन पुनः माया की ओर न देख सके, इसके लिए उसे भक्ति-भाव में भिगोकर भगवान् के मनोहर स्वरूप में संयुजित रखना चाहिए, तभी चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है, यह विचार कर पानप ने भक्ति की साधना का उपदेश दिया। पानप का यह मत था कि बिना हर (हरि) भजन अर्थात् भगवत्भक्ति के ब्रह्मात्मैक्य का दुर्लभ योग प्राप्त नहीं किया जा सकता।

पानप ने उसी को परम योगी कहा जो राम-नाम के रस का पान करता है, सुरत को सँभाल कर रखता है अर्थात् भक्ति में लीन रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्म-साधना (कर्म-योग)

कर्म-वाद तथा जन्मान्तर व्यवस्था, नैतिक संयम निष्काम-कर्म ।

कर्म कमावे जीव सब, हरि को लावें दोस ।
कहै पानप हरि का नहीं, हरि सब का सिर पोस ।।
कर्म कटै हरि सूं, हिरदय धरै न कोय ।
जनम-जनम पानप कहै, जीव करम के बस होय ।।
करम कमावें लगे फल सोई, हरि को लाज कहाँ ।
हर कूं लाज ताहि की पानप, जो चरणों राच रहाँ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१० कर्म-साधना (कर्मयोग)

कर्म शब्द 'कृ' धातु से बना है जिसका अर्थ—करना, व्यापार, धन्धा, हलचल आदि होता है। सकल विश्व की विभिन्न हलचलें 'कर्म' कहलाती हैं। इस विश्व में सदैव कोई न कोई हलचल होती ही रहती है और सभी प्राणिवर्ग कर्म-चक्र में व्यस्त रहते हैं। यह कर्म-चक्र जब समाप्त हो जाएगा उसी दिन सकल विश्व ठहराव को प्राप्त हो जाएगा।

कहा गया है—'गहना कर्मणो गतिः' अर्थात् कर्म की गति गहन है। यह विश्व भी कर्म की गति का ही परिणाम है। प्राणी द्वारा किया गया कोई कार्य-व्यापार उसका कर्म कहलाता है और कर्मानुसार उसके कर्ता को कर्म-फल भोगना पड़ता है; इसे कर्मवाद कहा गया है।

कर्मवाद का उल्लेख वेदों में पाया जाता है। 'शुभस्पति' (अच्छे कर्मों के रक्षक), 'विचर्षणि' तथा 'विश्वचर्षणि' (शुभाशुभ कर्मों के द्रष्टा), 'विश्वस्थ कर्मणो धर्ता' (सभी कर्मों के आधार पर) आदि पदों का वेद में देवता लोगों के विशेषण रूप में प्रयोग हुआ है।[1]

देवों की उपासना, पूजा-पाठ, यज्ञ आदि को शुभ-कर्म कहा गया है। और इन्हें कर्म-काण्ड की संज्ञा दी गई है।

गीता-रचना के समय दो मार्ग प्रचलित थे—ज्ञानमार्ग एवं कर्म-मार्ग। इन्हें निवृत्ति तथा प्रवृत्ति-मार्ग भी कहा गया है। भगवान् श्री कृष्ण ने इन दोनों मार्गों का 'ज्ञान-कर्मयोग समुच्चय' के रूप में समन्वय किया। गीता में निरासक्त, निस्पृह

---

१. डा० उमेश मिश्र—भारतीय दर्शन, पृ० ३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होकर कर्म करने को निष्काम, कर्म को शुभकर्म कहा गया है। सभी प्रकार के कर्मों का समावेश इसके अन्तर्गत हो जाता है।

जैन एवं बौद्ध दर्शन में संयम तथा सदाचार को कर्म की संज्ञा दी गई है। जैन मत में पुद्गल अनेक प्रकार के होते हैं और उन्हीं में कर्मों से सम्पर्क रखने वाले पुद्गल 'कर्म-पुद्गल' कहे जाते हैं।[१]

न्याय-दर्शन में विरक्त साधनों के तत्त्व-ज्ञान को कर्म कहा गया है।

सांख्य ने विवेक बुद्धि द्वारा किया गया कर्म बन्धन रहित बताया है। अद्वैत वेदान्त ज्ञान एवं वैराग्य द्वारा किये गये कर्म को बन्धन-रहित कहता है। योग-दर्शन में योगाभ्यास द्वारा चित्त-शुद्धि को कर्म की संज्ञा दी गई है।

नाथ योगी-परम्परा के अन्तर्गत हठयोग साधना द्वारा चित्त-शुद्धि पर सर्वाधिक बल दिया गया। पाखण्ड तथा आडम्बरपूर्ण साधना की भर्त्सना की गई।

पानप ने भी यज्ञादि, मूर्ति-पूजा, बाह्याडम्बर को कर्म नहीं कहा, वरन् भ्रम कहा।[२]

(क) कर्मवाद तथा जन्मान्तर-व्यवस्था

साधना-पद्धति के कर्म ही नहीं, वरन् प्राणि-वर्ग जो भी कर्म करता है उसके बन्धन से बाँधा जाता है। उस बन्धन के फलस्वरूप कर्त्ता को फलोपभोग के हेतु ही जन्म-जन्मान्तर तक भवसागर में आना-जाना पड़ता है। यह कर्म प्रवाह अनादि है, इससे बच निकलना असम्भव है।

कर्म-चक्र के साथ सुख-दुःख का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दुःख से छुटकारा पाने के लिए प्राणी चेष्टा करता है और इस चेष्टा द्वारा भी कर्म का सर्जन हो जाता है।

भारतीय दार्शनिक जन्मान्तर-व्यवस्था अर्थात् जीवात्मा को अपने कर्मों के फल का उपभोग करने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है, को स्वीकार करते हैं। जन्मान्तर-व्यवस्था और कर्मवाद का अकाट्य सम्बन्ध है।

पानप ने जन्मान्तर-व्यवस्था को स्वीकार किया है। उनका स्पष्ट मत है कि लाखों योनियों में जीवात्मा को जन्म लेना पड़ता है।[3] आवागमन अकाट्य नियम है। जो वस्त्र पहना जाता है वह अवश्य ही फटता है और जगत् के नाम-रूप विनष्ट होते ही हैं।[४]

पानप का यह मत गीता के 'वासांसि जीर्णानि' से मिलता-जुलता है।[५]

---

१. डा० उमेश मिश्र—भारतीय दर्शन, पृ० १२९
२. पानप बोध—१२.१
३. पातपबानी—१७.१
४. ,, ११.४
५. ,, १५.८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्म-मरण गुणों के परिवर्तन की अवस्था है। गुणोत्कर्ष होता ही रहता है और इसी के द्वारा सृष्टि का व्यापार चलता है। देह परिवर्तनशील एवं मरणशील है अतः इसके वियोग का मोह व्यर्थ है और इसका मोह मृत्यु के समान है। मरणशील होने में भी अन्तर है। नित्य-प्रति असंयमी जीवन, भय एवं दुर्बलताओं के बोझ से दब-दबकर दुःख-संताप भोगना, मृत्यु होना ही है। परहितार्थ अथवा कर्त्तव्य-पालन के हेतु शरीर का नष्ट होना मरना नहीं है, वरन् अमर होना है।

पानप ने भयभीत तथा मृत्यु-भय से थर्राने वाले लोगों को ही मरने वाला कहा, परन्तु जो परहित-साधन में मृत्यु-भय का निराकरण करते हैं वे मृत्यु को पाकर भी अमर हो जाते हैं। उनका यश, उनकी कीर्ति विश्व में फैलकर स्फूर्ति तथा प्रेरणा देती रहती है और वे देह-विहीन व्यक्तित्व के रूप में संसार में विद्यमान रहते हैं।[1] यज्ञ, दान, तप, नाम-स्मरण, चिन्तन एवं ध्यान—ये सब कर्म हैं पर नित्य-नियमित कर्म हैं जिनको निष्काम भाव से करने पर अन्तःकरण शुद्ध बनता है, अहं-भाव छूटता है और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है, फिर अपनी कोई इच्छा नहीं रहती, न अपना कोई कार्य रहता है। भगवत्—इच्छा और प्रेरणा से ही सब काम होते हैं—

आपको मान रहा आप से, अज्ञान रहा कर्म बाँधा सोय।
कहै पानप आतम पहिचाना, कर्म न लागे कोय।।[2]

माँ अपने बच्चे के पालन-पोषण में अनेक कष्ट उठाती है, यह वे केवल स्नेह के कारण करती है, उसको न कुछ अभिमान होता है और न कष्ट; यह उसका सहज स्वभाव है जिसमें वह सुख प्रतीत करती है। ऐसे हार्दिक एवं भावना-युक्त कर्म 'अकर्म' कहलाते हैं अर्थात् वह कर्म जिनके करने में कर्म का बोझ न मालूम दे। प्रकाश देना सूर्य का सहज धर्म है। सत्यता, दया, मधुरता संतों के स्वाभाविक गुण हैं उनके साधन नैसर्गिक हैं और उनकी उपस्थिति मात्र से ही वातावरण में चेतनता और शुद्धता आ जाती है। अनन्त कर्म करने पर भी वह अकर्त्ता बने रहते हैं—

कर्म करे लागे नहीं, ऐसा है वह देस।
जो कोई वा घर जा पहुँचे, पानप जाने सोई बबेक।।[3]

अपने सत्य-स्वरूप को न समझ सकने वाला, अज्ञान से आवृत्त जीवात्मा ही विभिन्न योनियों का भ्रमण करता है। पानप ने कहा है कि बिना हरि-शरण के अथवा अपना सत्य-स्वरूप पहचाने, अनेक योनियों में भटकते रहने का दुःख भोगना ही पड़ेगा।[4]

---

१. पानपबानी—१३·३
२. पानपबोध—६·९
३. पानपबानी—१८·९
४. ,, ११·११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पौराणिक गाथाओं के अनुकूल जीवात्मा को अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार कई लोकों का भ्रमण करना पड़ता है। यहाँ गोलोक, बैकुण्ठलोक, भूलोक, चन्द्रलोक, रसातललोक, पाताल-लोक आदि चौदह लोकों की कल्पना की गई है।

पानप में भी कहीं-कहीं लोकों की चर्चा पायी जाती है। यह चर्चा पौराणिक गाथाओं के प्रतिकूल है। पानप लोक तो क्या समस्त ब्रह्माण्ड को ही अपने भीतर मानते हैं। उनके विचार में साधुजन की संगति में बैठना ही बैकुण्ठ है।[१] सत्संगति परित्याग करके अनिष्ट कर्म, मोह-माया में लिप्त रहना और दुःख-सन्ताप को भोगना ही नरक है।[२] पानप का यह विश्वास है कि ओछी करनी वाले को कर्मयोग के लिए पुनः वापस आकर दुःख उठाना ही होगा; अतः स्वर्गलोक या शिवलोक की कल्पना व्यर्थ ही है।[3]

पानप में पौराणिक लोकों की कल्पना नहीं पायी जाती है और जहाँ कहीं इनकी चर्चा है भी उसका अपना विशिष्ट अर्थ है। सकल विश्व, स्थूल एवं सूक्ष्म-तत्त्व, समुद्र, तारागण एवं इस शरीर का नियन्ता, सब कुछ मानव-शरीर में ही है,[४] इस बात को स्वीकार करने वाला पानप लोकोत्तर कल्पना में नहीं उलझा।

भेद में अभेद की सिद्धि ही पानप की मुक्ति है जिसके लिए मन, हृदय, भूख आदि को संयमित जीवन का पालन कर परिशुद्ध करके अपना मुक्त स्वरूप देखा जाना अनिवार्य है।[५] पानप ने नैतिक संयम को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया। नैतिक संयम के बिना चित्त का विकारशून्य होना असम्भव है और मुक्ति भी असम्भव है।

(ख) नैतिक संयम

नैतिकता एवं सदाचरण के बल पर ही मानव-समाज की अभीष्ट सिद्धि तथा विकास होता है। प्राचीनकाल में जब मानव सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ था तभी से उसने नैतिक संयम की ओर ध्यान दिया। वेदों में नैतिक संयम-सम्बन्धी अनेक उल्लेख पाए जाते है—'ऋतस्य यथा प्रेयः' अर्थात् सत्य के पथ पर चलो। उपनिषदों में सदाचरण पर सर्वाधिक बल दिया गया है। प्रश्नोपनिषद् का वचन है—'जो असत्य भाषण करता है वह जड़ से सूख जाता है।[६] गीता के योगी का स्वरूप नैतिक संयम पर ही आधारित है। वहाँ सभी कामनाओं और वासनाओं का विशेष तथा मन और इन्द्रिय-संयम करना ही शुभ कहा गया है।

---

१. पानपबानी—१२·१
२. ,, १५·७
३. ,, १८·११
४. पानपबोध—११·१७
५. प्रश्नोपनिषद्—१६·१
६. पानपबानी—११·१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन एवं बौद्ध दर्शन का आधार नैतिक संयम ही है। योग-साधना तथा नाथपंथी साधना नैतिकता पर ही आधारित है। सभी धार्मिक ग्रन्थों में नैतिक संयम को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।

पानप की सम्पूर्ण साधना नैतिक संयम पर ही आधारित है। अनैतिकता को उन्होंने वड़वानल कहा है जो बाँस के वृक्षों की रगड़ से उत्पन्न होकर उन्हीं को भस्म करता है। अनैतिकता की अग्नि भी मनुष्य को उसके भीतर प्रविष्ट होकर जलाया करती है—

नलनी के तोते की भांत, जग सूँ राच रहा रे।
बंसा अगन बंस कुल निकसै, पानप आप दहै रे॥[1]

नामरूपात्मक जगत् के आकर्षण को ही, सत्य समझकर उसमें मोह, माया, ममता, अहंकार, काम और क्रोधादि के द्वारा जीव अपना सर्वनाश ही करता है। अनैतिक कार्य ध्वंसात्मक होते हैं। उनके द्वारा जीवात्मा का विध्वंस होता है। इसलिये पानप ने ध्वंसात्मक अनैतिक कार्यों का घोर विरोध किया है। ध्वंसात्मक अनैतिक कार्य हैं—दुविधा, कुसंग, अन्ध-विश्वास, बाह्याडम्बर और मूर्ति-पूजा आदि।[2] इन सभी पाखण्डों के आधार पर सत्य-धर्म का तो लोप हो जाता है और अधर्म की सर्जना होती है। समाज अवनत होता चला जाता है। समाज की इकाई व्यक्ति में भी अनेक ध्वंसात्मक अनैतिक कार्य होते हैं, जिनका प्रभाव समाज पर पड़ता ही है। व्यक्ति के ध्वंसात्मक अनैतिक कार्य हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, अहंकार, कपट, तृष्णा, मान, अभिमान, निन्दा, आलस्य, कनक, कामिनी, असत्य-भाषण, कुवचन, मादक वस्तुओं का सेवन, हिंसा, घृणा और द्वेष आदि।

पानप ने इन सभी दोषों से दूर रहने की शिक्षा दी है। काम, क्रोध और तृष्णा के परित्याग किए विना भगवान् नहीं मिल सकते।[3] वासना में फँसा हुआ मनुष्य विषैले नाग की भाँति अन्धा होकर अपना अहित करता है।[4] विषय-वासना में लिप्त मनुष्य की दुर्दशा होती है, वह भयभीत एवं व्यग्र रहता है।[5]

दूसरी ओर पानप ने सार्जनात्मक नैतिक संयम को ग्रहण करने की शिक्षा दी है। नैतिक संयम से मानवता का विकास एवं उन्नति होती है। सार्जनात्मक नैतिक संयम है—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रिय-निग्रह, दया, क्षमा,

---

१. पानपबानी—९·६
२. ,, १२·१
३. ,, ११·८
४. ,, १२·७
५. ,, १०·१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कथनी-करनी का एकत्व, विश्वास, श्रद्धा, विनय, मृदुवचन, धैर्य, स्वावलम्बन, परिश्रम, सरल जीवन, पर हित-साधन, सेवाभाव और साधु-संगति आदि।

गृहस्थ-जीवन का पालन करता हुआ जो साधक उपर्युक्त नैतिक संयम को अंगीकार करके निरासक्त हो जाता है, उसका हृदय निर्मल हो जाता है। उसकी विवेक बुद्धि तीव्र एवं सात्विक और उसकी सभी वृत्तियाँ भी सात्विक हो जाती हैं। ऐसा व्यक्ति जो भी कर्म करता है वह सात्विक होता है। शुभ एवं सात्विक कर्म के लिए नैतिक संयम अनिवार्य कर्त्तव्य है।

(ग) निष्काम कर्म

एक लम्बे समय तक पूजा-पाठ, हवन, यज्ञ, सन्ध्योपासनादि को कर्मकाण्ड की संज्ञा दी गई और उन्हें शुभ कर्म कहकर स्वर्ग, सुख आदि की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माना जाता रहा।

वर्णाश्रम-कर्मों का प्रतिपादन स्मृति-ग्रन्थों में किया गया है; जिन्हें स्मार्त कर्म अथवा स्मार्त यज्ञ भी कहते हैं। पौराणिक युग में भी कर्मों की संख्या में वृद्धि हुई। अनिष्ट ग्रहों की शान्ति के लिए प्रायश्चित, जाप आदि को नैमित्तिक कर्म, विशेष धन-सम्पदा पुत्रादि की प्राप्ति के लिए किए गए जाप, यज्ञादि को काम्य तथा मदिरा-पान माँस-भक्षण, जुआदि खेलने को निषिद्ध कर्म की संज्ञा दी गई।

पानप में कर्मों के भेद-प्रभेद नैमित्तिक, काम्य एवं निषिद्ध नाम से नहीं पाए जाते। जो कर्म किसी प्राणी द्वारा किया जा चुका है उसका फल उसे भोगना ही पड़ेगा। चाहे कोई भी उपाय करे उसका फल अनिवार्य रूप में भोगना ही होगा।[1] ऐसे निश्चित मत वाले पानप नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों के करने का परामर्श दे ही नहीं सकते।

पानप ने शुभ एवं अशुभ कर्मों के सम्बन्ध में अवश्य कहा है—अशुभ कर्म के लिए उन्होंने 'बुरी कमाई' अथवा 'कच्ची करनी' कहा है। शुभ कर्मों में सर्वाधिक महत्त्व का कर्म बताया है भक्ति।[2]

कर्म-विपाक के अनुसार कर्मों के संचित, प्रारब्ध तथा क्रियमाण ये तीन भेद हैं। कर्त्ता के द्वारा वर्तमान क्षण तक किया गया कर्म संचित कर्म कहलाता है। इसका फल एकदम नहीं, वरन् नियत क्रमानुसार भोगना पड़ता है। संचित कर्मों में से जिन कर्मों के फल के भोग का आरम्भ हो गया होता है, उसी क्षण से कर्म प्रारब्ध हो जाते हैं और जो कर्म अभी किए जा रहे हैं वे क्रियमाण कहते हैं।

---

३. पानपबोध—८·१७
४. ,, १·११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप में कर्मों का वर्गीकरण नहीं पाया जाता है। पानप के अनुसार संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्मों को कर्म नाम से ही जाना जा सकता है।[1]

आसक्ति मन और उसकी वृत्तियों का विकार है। मन को कर्म-फल प्राप्ति की आशा से निरासक्त करके कर्म करना निष्काम कर्म है। गीता में फलाशा या परित्याग कर निस्संग बुद्धि से किए गए कर्म को बन्धन-रहित, दुःख-विरहित कहा है। मन के समस्त काम एवं वासनाओं का परित्याग करके आत्मा में सन्तुष्ट रहने वाले साधक को 'स्थित-प्रज्ञ' कहा गया है।

जो पुरुष सब काम आसक्ति, ममत्व, अहंकार आदि का परित्याग करके निस्पृह रहते हुए निष्काम कर्म करता है उसे चिरशांति मिलती है, अन्य को नहीं। पानप गृहस्थ साधक थे। उन्होंने कभी भी गृहत्याग की बात नहीं कहीं। गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए जगत् में रहते हुए, जगत् के सभी नामरूपात्मक विषयों में आसक्ति न रखकर निरन्तर लोक-कल्याणार्थ कर्म करना ही जीवन का उद्देश्य है, ऐसा पानप का मत है।

पानप लोक कल्याणार्थ निष्काम कर्म करने के पक्ष में हैं। उन्होंने निष्काम सेवा-भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अपने शरीर तथा परिवार आदि की रक्षा एवं स्थिति के लिए ही निष्काम कर्म करना उपयुक्त नहीं, वरन् परहित-साधन के लिए दूसरों के कल्याण के लिए किया गया कर्म ही निष्काम कर्म है।[2]

पानप का निष्काम कर्मयोगी लोक-कल्याणार्थ कर्म करना भगवद्भक्ति ही समझता है क्योंकि भगवान् का वास सभी में है, सेवक में भी और सेवा में भी[3] अतः लोक-सेवा से भगवान् की ही सेवा होती है।

सकल विश्व के सभी प्राणि-वर्ग-स्त्री-पुरुष, लंगड़े-पंगु सब हमारा ही स्वरूप है। गुरु कहो या पीर कहो, राम कहो या खुदा कहो सब एक समान है। अतएव बिना किसी भेद-भाव सभी की सेवा करना ही सत्कर्त्तव्य है।

सेवा एवं परहित-साधन को सत्कर्त्तव्य समझ कर ही करना चाहिए। परहित-साधन में दुःख, अपयश आदि की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। पानप का मत है कि सच्चे हितैषी, जनसेवक को सुख-दुःख, यश-अपयश की चिन्ता नहीं होती।[4] सेवा-कार्य में जो सुख और दुःख को समान भाव से देखता है और दुःख में भी सुख मानता है उसी सेवक को सेवा करते हुए सुख और आनन्द मिलता है।

---

१. पानपबानी—१८·२१
२. ,, ५·२७
३. ,, ८·३१
४. ,, २१·६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सच्चा सेवक तो परहित-साधन में लिप्त रहता है। वह यश-अपयश, भला-बुरा किसी भी बात की चिन्ता नहीं करता। सेवा-कार्य को ही वह कर्म समझता है और उसी में लिप्त रहता है। ऐसे भाव से की गई सेवा सच्ची सेवा है और है भगवान् की भक्ति।

पानप निष्काम भाव से परहित-साधन के कार्यों में लगने वाले कर्मयोगी को श्रेष्ठ समझते हैं। पानप का सच्चे सेवक के लिए उपदेश है कि सभी प्राणियों में हरि व्याप्त है, इस बात को ध्यान में रखते हुए तन, मन, धन तथा अपने सभी साधनों के साथ सच्चे सेवक को सेवा-कार्य में संलग्न होना चाहिए। सेवा-कार्य से उसका ध्यान डिगना ही नहीं चाहिए।[१] अनेक बाधाओं के उपस्थित होने पर भी सेवा-पथ से जन-सेवक को विचलित नहीं होना चाहिए।

पानप का जन-सेवक से सम्बद्ध यह विचार गीता से मिलता-जुलता है। लोक-संग्रहार्थ निष्काम कर्म करने वालों को गीता का आदेश है।[२]

"लोक-संग्रह करने की इच्छा रखने वाले ज्ञानी पुरुष को आसक्ति त्यागकर उसी प्रकार निष्काम कर्म करना चाहिए जिस प्रकार कर्म में आसक्त अज्ञानी लोग बर्ताव करते हैं।"

निष्काम कर्मयोगी जीवन के किसी भी क्षेत्र में विषमता को देखकर चुपचाप नहीं बैठ सकता। लोक-कल्याण की तीव्र भावना उसे विषमता को दूर करने के हेतु निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देती है।

सभी धर्मों को, सभी सम्प्रदायों को निष्काम सन्त समान भाव से देखता है। सबकी उत्तम शिक्षाओं को ग्रहण करता है और बाह्योपचार का खण्डन तथा उसका परित्याग करता है। निष्काम कर्मयोगी की सच्ची धर्म-भावना होती है।

सत्य धर्म का पालन करने वाला, निष्काम ज्ञानी सन्त जगत् के विषयों से दूर रहता है, उनमें आसक्ति नहीं रखता, सबके साथ दया, क्षमा, सहानुभूति के साथ व्यवहार करता है, सभी की अन्तरात्मा में भगवान् को देखता है और सबको अपने समान समझता है। मान-अपमान का परित्याग करके सबसे मृदुवचन बोलता है। पानप के अनुसार ऐसे ही सन्त को चरम सत्य अथवा भगवान् का साक्षात्कार होता है।[3]

धार्मिक एवं सामाजिक साम्य की स्थापना के उपरान्त भी पारस्परिक कलह का स्थान रह जाता है। वह स्थान है आर्थिक असमानता। एक ओर ऊँचे-ऊँचे भवन, वैभवशाली महल और दूसरी ओर कच्चे, फूँस से छाए गए झोंपड़े। यह आर्थिक असमानता भी समाज में विषमता द्वेष, लोभ, मोह एवं क्रोध आदि का विस्तार

---

१. पानपबनानी—८·१६

२. गीता—३·२४

३. पानपबोध—१·८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करती है। पानप का निष्काम कर्मयोगी आर्थिक असमानता को भी दूर करने की चेष्टा करता है।[1]

पानप का मन्तव्य है कि धनहीन तथा धनवान का भेदभाव व्यर्थ है। दोनों ही परस्पर भाई-भाई हैं, एक ही भगवान् की सन्तान हैं। निर्धन उसे ही कहा जा सकता है जिसके हृदय में भगवान् का ध्यान न हो। माया, मोह में फँसकर, धन की लिप्सा में लिप्त होकर घमण्ड करना व्यर्थ है। सबको समान भाव से देखना, परस्पर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना ही श्रेयस्कर है।[2]

आर्थिक साम्य के उपरान्त पानप का निष्काम कर्मयोगी राजनीतिक विषमता की ओर ध्यान देता है, क्योंकि राजनीतिक वैषम्य की विभीषिका सबसे भयंकर है। महायुद्ध, परस्पर के आक्रमण, नरसंहार एवं शोषण आदि का प्रादुर्भाव राजनीतिक असमानता के परिणाम हैं।[3]

निष्काम कर्मयोगी पानप ने सत्ता के मद में चूर रहने वालों को सबके साथ सद्भावनापूर्ण व्यवहार करने का उपदेश दिया है। इस नश्वर संसार का एक दिन परित्याग करना ही है अतएव इस बात का ध्यान रखते हुए सबके साथ सद्व्यवहार ही करना चाहिए।

अमित सम्पदा वाले शहंशाह, सत्ताधारी राजा-महाराजा यदि वे प्रजा के हित का चिन्तन नहीं करते और प्रजा के कल्याणकारी कार्यों में धन का प्रयोग नहीं करते और राजकोष का अधिकांश अपने ही उपयोग के लिए खर्च करते हैं, पानप की दृष्टि में वे कृपण हैं, उनके खजाने वृथा ही हैं।[4]

इस भाँति मानव-समाज को मानवों के योग्य बनाने का भार निष्काम कर्मयोगी के कन्धों पर होता है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक साम्यावस्था लाकर विषमता तथा असमानता का निराकरण किया जाना लोक-कल्याण है।

निष्काम कर्मयोगी को लोक-संग्रहार्थ ये कर्म भगवान् को समर्पित कर देने चाहिए। पानप ने समाज के मध्य रहते हुए, निष्काम कर्म में लिप्त, निरासक्त जीवन-यापन की स्थिति को 'उनमन' कहा है।[5] गीता में इसे ब्राह्मी स्थिति कहा गया है—'जो पुरुष सब काम अर्थात् आसक्ति का परित्याग करके तथा निस्पृह होकर सद्व्यवहार करता है एवं जिसे ममत्व और अहंकार नहीं होता, उसे ही चिरशांति मिलती है; तथा—'हे पार्थ। ब्राह्मी स्थिति यही है। इसे पा जाने पर कोई भी मोह में नहीं फँसता और अनाकाल में ब्रह्म में मिल जाने के स्वरूप का मोक्ष पाता है।[6]

---

१. पानपबोध—५.७
३. पानपबानी—१२.७
३. ,, १८.१
४. ,, १४.१६
५. गीता—२.७१ तथा ७२
६. पानपबानी—१२.६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निष्काम कर्मयोगी की सिद्धि से सभी विभेद लुप्त जाते हैं। द्वैत का अभाव हो जाता है। एकत्व की सिद्धि हो जाती है। सभी भूतों में एक आत्मा है, कर्मयोगी इसे परखने में समर्थ हो जाता है, उसकी वासना शुद्ध हो जाती है। इस प्रकार वासनात्मक बुद्धि के शुद्ध सम, निर्विषय, निर्वैर हो जाने पर फिर वह कोई भी पाप या मोक्ष के लिए बन्धक कर्म कर ही नहीं सकता। वह मुक्त हो जाता है।

पानप अपने शुद्ध-बुद्ध, मुक्त स्वरूप को पहचानता जीवनोद्देश्य बताते हैं।[1] इस लक्ष्य की प्राप्ति निरासक्त होकर प्राणीमात्र के कल्याणार्थ कर्म करने से होती है। द्वैत, असमानता एवं विषमता का परित्याग एवं आत्म-विश्वास के साथ सब में अपना स्वरूप देखना अथवा आत्म प्रतीति की प्राप्ति होती है। आत्म प्रतीति का अर्थ है सब प्राणियों में प्रीति। सब प्राणियों में प्रीति के द्वारा नानात्व का भाव नष्ट हो जाता है और एकत्व की सिद्धि हो जाती है। प्रीति अथवा प्रेम सबको एक सूत्र में बाँधता है। दाम्पत्य प्रेम, परिवार-प्रेम, देश-प्रेम, विश्व-प्रेम, सब में प्रेम के द्वारा मनुष्यत्व की परिधि विशाल होती जाती है।

सार्वभौमिक प्रेम के द्वारा सकल विश्व प्रेममय हो जाता है, प्रेम अथवा प्रीति के सम्मुख भय लड़ाखड़ा जाता है। प्रेम के द्वारा जो सभी प्राणियों का कल्याण करता है वह अपने मुक्त स्वरूप का दर्शन कर पाता है।

प्रेम का शुद्ध स्वभाव है स्वाधीनता। मुक्त स्वभाव अथवा हर प्रकार के बन्धन से निर्मुक्त स्वभाव ही शुद्ध-बुद्ध स्वाधीन स्वभाव है, यही आत्मा का स्वरूप है और यही है परम सत्य, चरम सत्य।

मनुष्य का सत्य स्वरूप अद्वैत, अनन्त, शुद्ध-बुद्ध नित्य मुक्त है। यह मुक्त-स्वभाव किसी बाहरी वस्तु से प्रभावित नहीं होता, इसी से इसे निर्लेप, निर्विकार, निर्गुण आदि भी कहते हैं। यही ब्रह्म का स्वरूप है, यही आत्म-स्वरूप है, यही मुक्ति है और यही है मोक्ष।

निष्काम कर्मयोगी पानप ने आजन्म परहित-साधन करके यह मुक्त स्वभाव वाली स्थिति प्राप्त की थी। वे निसंग, निर्वैर, निस्पृह एवं निरासक्त कर्मयोगी थे। शुद्ध-बुद्ध मुक्त-स्वभाव की प्राप्ति पर पानप की भाँति कबीर ने भी कहा है—

आपैं मैं तब आपा निरष्या, अपन मैं आपा सूझ्या।
आपैं कहत सुनत पुनि अपना, अपन पैं आपा बूझ्या॥
आपनैं परचैं लागी तारी, अपन मैं आप समांनां।
कहै कबीर जे आप विचारै, मिटि गया आंवन जानां॥[2]

निरुद्देश्य एवं भीरू जीवन ही नश्वर, क्षणभंगुर एवं मिथ्या है। आत्म-विश्वासी, चरमलक्ष्य-पूर्ण, निरासक्त जीवन ही मुक्त जीवन है, स्वाधीन जीवन है तथा अमर जीवन है। नित्य, मुक्त स्वभाव, शुद्ध-बुद्ध स्वभाव की प्राप्ति पर मृत्यु भय रहता ही नहीं और इसीलिए आना अथवा जाना, यह द्वैत भी नष्ट हो जाता है, इस भय से मुक्ति हो जाती है और इसीलिए इस स्थिति को मुक्तदशा कहा जाता है।

---

१. पानपबानी—१८·१६
२. सम्पादक श्यामसुन्दरदास-कबीर ग्रन्थावली पृ० ६०.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भक्ति-साधना (भक्ति-योग)

भक्ति-मार्ग, भक्ति की महत्ता, भक्ति-तत्त्व, पानप की निर्गुण भक्ति-साधना, निर्गुण अहेतु की भक्ति, भक्ति-साधना, प्रेम-लक्षणा भक्ति, पानप की भक्ति की विशिष्टता ।

भक्ति धरी सबके सिर ऊपर, जब मानुष-देह बनाई ।
यो जग भूला भ्रम में पानप, सिर पे भक्ति गंवाई ।।
कहै पांनप इस संसार में, कड़े भ्रम के ठाठ ।
हरि की भक्ति कठिन रे भाई, चढ़ना औघट घाट ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

११ भक्ति साधना (भक्ति योग)

साधना के चरम लक्ष्य ब्रह्मात्मैक्य के लिए परमेश्वर गुण-स्वरूपादि का प्रेमपूर्वक अनन्य भाव से चिन्तन एवं मनन करके मन को तदाकार करना ही एक सुलभ उपाय है। इस युक्ति को भक्ति-योग कहा जाता है।

भक्ति का प्रधान तत्त्व है शरणागति, पूर्ण आत्मविस्मृति तथा अपने उपास्य देव में अनन्य निष्ठा। भक्ति-योग में यह भावना निश्चय ही सभी देशों में बलवती पायी जाती है। अनन्य-भाव से उपास्य देव में निष्ठा तथा उसके प्रति शरणागति की भावना रखना अनिवार्य है। वैष्णव-दर्शन में इसे प्रपत्ति कहा गया है। दक्षिण के वेदान्ती भक्त, भक्ति-भाव में विभोर वैष्णव भक्त, निर्गुण में समाधि लगाने वाले सन्त तथा राम और कृष्ण के पुजारी सगुणोपासक सभी अनन्य भाव से प्रभु की भक्ति का उपदेश देते हुए अपने उपास्य में निष्ठा एवं अनन्य भाव से भगवान् की शरण में जाने की बात कहते हैं। इसीलिए भावना और प्रेम के सहारे आराध्य के गुण एवं स्वरूप की अनन्य-भाव से उपासना करना भक्ति कहा गया है।

(क) **भक्ति-मार्ग**—दुःख से निवृत्ति पाने के लिए प्राचीन काल में अनेक देवी-देवताओं के प्रति भाँति-भाँति की उपासना करने का प्रचलन हुआ। कालान्तर में यही भाव ईश्वर के प्रति दिखाई पड़ने लगा।

वेदों में उपासना-सम्बन्धी अनेक स्थलों पर उल्लेख है। उपनिषदों में यज्ञादि द्वारा उपासना-पद्धति के साथ-साथ अहेतुकी तथा अनन्य भावमय भक्ति का प्रतिपादन है। गीता में भक्ति-योग की पूर्ण प्रतिष्ठा है। भगवद्भक्त और भक्ति का विशद् वर्णन गीता में पाया जाता है। अन्याय दार्शनिकों ने भी वहीं ध्यान केन्द्रित करने के हेतु परमेश्वर का चिन्तन, वहीं ईश्वर-प्राणिधान आदि के द्वारा भक्ति का उल्लेख किया है। पौराणिक युग में तो अनेक देवी-देवताओं की भक्ति का उल्लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाया जाता है। क्लिष्ट यौगिक साधनाओं एवं कठोर तपश्चर्यादि की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप दक्षिण भारत में भक्ति का विकास हुआ। स्वामी रामानुजाचार्य ने भक्ति का प्रचार किया। दक्षिण में आलवार भक्तों द्वारा भक्ति-मार्ग की स्थापना की गई। आलवार भक्तों ने कर्मकाण्ड एवं ज्ञान काण्ड का विरोध किया और एक मात्र विष्णु-भक्ति का ही प्रतिपादन किया।[1] कालान्तर में इन भक्तों के कई सम्प्रदाय बने। स्वामी रामानन्द जी एक भक्ति-सम्प्रदाय के अगुआ बने और इन्होंने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की और राम-भक्ति का प्रचार किया। आगे चलकर भक्ति-मार्ग कई धाराओं में विभक्त होकर आगे बढ़ा—सगुण-भक्ति-धारा, निर्गुण-भक्ति-धारा राम-भक्ति धारा, कृष्ण-भक्ति-धारा आदि।

भक्ति की उपर्युक्त धाराओं में कभी श्रद्धा व प्रेम, कभी सगुण-भक्ति, कभी निर्गुण-भक्ति तथा कभी शुद्ध रागात्मिका भक्ति के अंश क्रमशः प्रविष्ट होते गए और भक्तों की प्रवृत्ति एक समय मानव-प्रेम तक पहुँच गई।

संतमत के अनुनायियों ने ज्ञानमूलक निर्गुण भक्ति को अपनाया। पानप भी निर्गुण-भक्ति की ओर ही उन्मुख हुए।

(ख) **भक्ति की महत्ता**—नारद-भक्ति-सूत्र में भक्ति को कर्म, ज्ञान तथा योग से भी श्रेष्ठ कहा गया है।[2] शांडित्य भक्ति-सूत्र में भक्ति को ज्ञान, योगादि से श्रेष्ठ कहा है।[3] तथा कर्मकांडी, ज्ञानी एवं योगी इन सबकी अपेक्षा भक्त को ही श्रेष्ठ बताया है। श्री मद्भवगत् गीता में भी अनन्य भाव तथा श्रद्धा के साथ भक्ति करने वाले भक्त ही को सर्वोत्तम बताया है।[4]

पानप भक्ति को सर्वाधिक श्रेष्ठ कहते हैं। जो व्यक्ति भक्ति नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ है, उसे जन्म लेते ही मर जाना चाहिए, ऐसा पानप का मत है।[5]

पानप यज्ञादि कर्मकांड के अनुष्ठान, देवी-देवताओं की मूर्ति पूजादि से भक्ति को ही सर्वोत्तम बताते हैं क्योंकि भक्ति से ही भगवान् मिलते।[6] बिना भक्ति के योग-साधना अधूरी है। पानप का मत है कि यदि साधक को ज्ञान भी हो जाए और उसने योग-साधना द्वारा भी प्राप्त कर ली हो, फिर भी यदि उसने निर्मल हृदय से हरि की भक्ति नहीं की तो सब साधना व्यर्थ है।[7]

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत-परम्परा पृ० ८४
२. नारद-भक्ति-सूत्र—२५
३. शांडित्य भक्ति-सूत्र—१६
४. गीता—६·४७
५. पानपबोध—१२·१६
६. सुषमवेद—११·६
७. ,, —८·१०

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

पानप ने कोरे ब्रह्मज्ञान को भी उपयुक्त नहीं बताया। वे तो चंचल मन को राम-भक्ति में लगाकर घर बैठे ही परमानन्द की उपलब्धि की बात कहते हैं।[1] भगवत् भक्ति श्रेष्ठ तथा उत्तमोत्तम है। भक्ति के बिना कोई भी आवागमन के चक्र से नहीं छूट सकता। मन, वचन, कर्म से भक्ति न करना जीवन का सर्वनाश ही करना है। इसी से पानप दृढ़ विश्वास और अनन्य भाव से हरि-भक्ति करने का उपदेश देते हैं। बिना भक्ति के मन के संशय, भ्रम अथवा अज्ञान का निराकरण नहीं हो सकता एवं मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

इस प्रकार पानप ने भक्ति के महत्त्व को स्वीकार किया और जीवन को सफल करने के लिए भक्ति को परमश्रेष्ठ धन बताया।

(ग) **भक्ति-तत्त्व**—भक्ति-तत्त्व के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने विचार किया है, अन्ततः यह निश्चित है कि भक्ति मानव-हृदय की वह भावना है जो अनन्य रूप में, निष्काम-भाव से, किसी सात्विक केन्द्र में केन्द्रीभूत होकर उससे तादात्म्य प्राप्त कर आनन्दित होती है। आनन्द मानव का सात्विक एवं नैसर्गिक गुण एवं स्वभाव है। अपने इस स्वभाव को वह विशिष्ट आराध्य में संयुजित कर इष्टलाभ करता है। हृदय की इस दशा को साधक अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुकूल अलग-अलग केन्द्रों में नियोजित करता है। आध्यात्मिकता से परिपूर्ण साधक जब इस भाव-दशा को सर्वोच्च, सर्वोत्कृष्ट एवं परमकेन्द्र भगवान् में केन्द्रित करता है और अनन्य भाव तथा अनुराग से उसी में तल्लीन हो जाता है, तब वह भक्ति कहलाती है।

पानप ने मन, कर्म एवं वचन सबको संयुजित करके भगवान् की भक्ति करना जीवन सफल बनाना कहा है।[2] अर्थात् अनन्य-भाव से समस्त इन्द्रियों और मन के द्वारा भगवान् में तल्लीन होना भक्ति है।

पानप सकाम-अनुरक्ति को व्यर्थ एवं निष्काम-भाव से हरि में अनुराग रखकर उससे तादात्म्य प्राप्त करना उपयुक्त बताते हैं। अपना निजस्वरूप नित्य, मुक्त, शुद्ध-बुद्ध निष्काम ही है और उससे निष्काम-भाव से ही सम्मिलन किया जा सकता है।

पानप ने भक्ति को प्रेम-रूप भी बताया है। हरि (हर) के प्रेम-रस से भक्त का मन सराबोर होना चाहिए।[3] मन को हरि-प्रेम-रस में भिगोना हरि से तादात्म्य करना है, उसकी सच्ची भक्ति है।

पानप उसी स्त्री को सुहागिन कहते हैं जो अपना सर्वस्व पति के सामने समर्पण कर देती है। भक्त भी वही सच्चा भक्त है जो अपना सब कुछ हरि को समर्पित कर दे।[4]

---

१. सुषमवेद—१३·५
२. पानपबोध—१३·५
३. ,, —१२·८
४. ,, —१३·५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप अनन्य भाव से प्रेम-रूप भगवान् में अनुरक्त होने तथा उसके गुणों का चिन्तन करने और अपना सर्वस्व उसको समर्पित करके उसका ध्यान करने को भक्ति कहते हैं। भक्ति-मार्ग के प्रमुख आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति-तत्त्व को पानप ने अंगीकार किया है।

(घ) पानप की निर्गुण भक्ति-साधना—पानप की भक्ति-साधना की कई अवस्थाएँ हैं। साधना की प्रथमावस्था में पानप जिज्ञासु भक्त की भाँति भाव-भक्ति के द्वारा हरि-गुण आदि का वर्णन करते दृष्टिगत पड़ते हैं। दूसरी अवस्था निष्काम-भक्ति की साधना की है, जिसमें पानप भावों की निर्मलता के द्वारा भक्ति की योजना करते दिखाई पड़ते हैं और तीसरी अवस्था में वे प्रेम-लक्षणा-भक्ति के सहारे भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए मुक्ति करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

पानप ने भक्ति-भाव के लिए अव्यक्त, अचिन्त्य ब्रह्म के सापेक्ष गुण अर्थात् जगत्-व्यवहार के लिए परब्रह्म में आरोपित गुणों वाला स्वरूप अपनाया[१]। सत्ता के कुछ गुण अपने होते हैं, जिन्हें निरपेक्ष गुण कहा जाता है और कुछ गुण दूसरी सत्ताओं के सम्बन्ध से उस पर आरोपित किए जाते हैं, उन्हें सापेक्ष गुण कहा जाता है।

भक्तों ने भगवान् के तीन भाव माने हैं। प्रथम; गुणातीत, निराकार भाव, दूसरा; चिन्मयी शक्ति-युक्त सगुण भाव तथा तीसरा; विश्वरूप विराट् भाव। भक्त अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार भगवान् के इन तीन भावों में से किसी भी भाव को उपास्य के रूप में ग्रहण कर उस भाव की भक्ति में लगाते हैं।

पानप ने भगवान् के गुणातीत निराकार भाव को ही भक्ति के लिए स्वीकार किया। भक्तों के तीनों भावों को उन्होंने निराकार भाव में ही पाया। भगवान् के निरपेक्ष गुण हैं—वह अनन्त, ज्ञान-रूप एवं आनन्द-स्वरूप है।[२] वह अविनाशी, सब में हमेशा व्याप्त है। उसकी न माप है, न तोल न उसकी गिनती ही है तथा न वह हलका है, न भारी, उसका भेद अगम है।[३] वह सभी विशिष्टताओं का भण्डार है।[४]

पानप ने इस बात को स्वीकार किया है कि उसका उपास्य देव निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही है।[५]

---

१. पानपबानी—१·५, ६, ७,
२. ,, ४·७
३. ,, ५·२६
४. ,, ७·४२
५. ,, ८·४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ने कबीर की भाँति इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि उनके उपास्य राम, दशरथ राम अथवा कोई पुरुषावतार नहीं हैं। उसने न कोई अवतार लिया, न लंका के राजा रावण को सताया, न देवकी की कोख से उत्पन्न हुआ और न यशोदा की गोद ही में उसने किलोल की। ये सब कथाएँ केवल जगत्-व्यवहार अथवा कहने-सुनने के ही लिए हैं। उनका राम इन सभी से परे है, अगम है और विश्व के कण-कण में वह व्याप्त है, घट-घट व्यापक है। पानप ने स्पष्ट कहा है—

वासु देवस्य वसंतं देहा, पावंते गुरु उपदेशतं।
देवा आतम परिपूर्ण, घट-घट मध्य प्रवेशतं ।।[1]

पानप के उपास्य अव्यक्त, अचिन्त्य, अविगत, निर्गुण ब्रह्म ही हैं। एक-आध स्थल पर उन्होंने भक्ति-भाव में विभोर होकर कहा है—

भक्ति-भक्ति सब जग कहै, करता दीखे नांहि।
करता दीखे भक्ति को, पानप नहचै मुकता पाहि ।।[2]

कबीर की भाँति पानप का भी पर्याप्त जीवन मूर्तिपूजा, अनेक देवी-देवताओं की पूजा, बाह्योपचार आदि का खण्डन करने में व्यतीत हुआ था फलतः पानप अवतारवाद को स्वीकार कर ही नहीं सकते थे। साधना की आरम्भावस्था भक्त की आत्म-स्थिति होती है। यहाँ भक्त और भगवान् का भेद बना रहता है। भक्त के निकट भगवान् ही सकल अतीत एवं सर्व सामर्थ्यवान् होता है। भक्त अपने आराध्य में विशिष्ट गुणों का आरोप करता है और उसे अनेक नामों से पुकारता है। पानप ने अपने उपास्यदेव के लिए ब्रह्म, पारब्रह्म, हर, हरि, आतम राम, अलख, अरूप, निरगुण ब्रह्म, राम, अगम, तिरदेवा, पुरुष, आतम तत्त, परमातमा, ततसार, साहिब, अंछर, सत्तदेव, गुरु, सबद, अगम-अगोचर, अन्तरजामी, जगदीस, राम-कृष्ण, ठाकुर, करता, सच्चासाहिब, बिस्वरूप, राधा, खुदा, माधव, गोविन्द और नारायण आदि नामों का प्रयोग किया है—

राम-कृष्ण मुष सूँ कहै, अन्तर खोजै नांहि।
कहै पानप बिन अन्तर खोजै, जीव नरक कूँ जाय ।।
राधे कृष्ण केवल भजा, भजा भाड़ और चूल्हा।
जीव पड़ा जम त्रास में, कहै पानप डोले फूल्या ।।
हमरो आतम देवता, घट-घट मध परगास।
पानप सेवै सुर्त सूँ, दिन-दिन अधक उजास ।।
सरगुण माया निरगुण ब्रह्म, घट-घट व्यापग है निरलम्भ।
सबकूँ देखै सब कोई देषै, पानप देव अकल सूँ दरस अलेषै।[3]

---

१. पानपबोध—३·३२
२. पानपबोध—३·१२
३. पानपबानी—११·१८, १६, २१, २७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ने अव्यक्त की भक्ति करने के जिए उसमें व्यक्त गुणों का आरोप किया। इन्हीं गुणों को सापेक्ष गुण कहा गया है। सापेक्ष गुणों के अनुसार पानप ने उसे सृष्टिकर्त्ता, संहारक, कर्मफलदाता, सर्वशक्तिमान, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, त्रिभुवननाथ, जगदीश, दयालु, भक्त-वत्सल, सुख-दुःख-रहित, अखण्ड, एकरस, अविनाशी और ठाकुर आदि कहा है। वह बड़ा ही दयालु है। निर्गुण, निराकार एवं अचिंत्य होते हुए भक्त की भावनाओं के अनुकूल भक्ति के क्षेत्र में वह भक्त के सब दुःखों को जानने की विशिष्टता रखता है।

भगवान् राम या परमेश्वर भक्ति के क्षेत्र में पानप की दृष्टि में, व्यक्त-स्वरूप धारण किए हुए पुरुषावतार नहीं है और न कोई देवी-देवता ही हैं। ज्ञान-क्षेत्र का निर्गुण ब्रह्म, भक्त की भावना और बुद्धि द्वारा कल्पित एक सर्वशक्तिमान एवं सामर्थ्यवान व्यक्तित्व के रूप में वर्णित किया गया है, जो भक्त पर कृपा कर सकता है, उसका उद्धार कर सकता है, अथवा जिसका चिन्तन एवं मनन करने से साधक का मन शुद्ध हो सकता है और केन्द्रीभूत हो सकता है।

जगत्-व्यवहार में लौकिक सम्बन्धों के आधारभूत हमारा जीवन चलता है। एक सम्बन्धी दूसरे सम्बन्धी के प्रति सहानुभूति, दया एवं कृपा आदि के द्वारा अपने सम्बन्धी के दुःखद मार्ग को सुखद बनाने की चेष्टा किया ही करता है। यह सम्बन्ध भावना भक्ति-क्षेत्र में जगत्-व्यवहार एवं पारिवारिक जीवन से ऊपर उठकर भक्त और भगवान् के प्रति स्थापित किया जाता है। भक्ति-क्षेत्र में भगवान् और उसके भक्त में कोई सम्बन्ध स्थापित होना अत्यावश्यक है। यह सम्बन्ध-भावना सभी भक्तों में देखने को मिलती है।

भक्त सूरदास ने भगवान् को अपना सर्वस्व समझकर उनके सम्मुख अपना कोरा चिट्ठा प्रस्तुत कर क्षमा-याचना की है—

जो हम भले बुरे सो तेरे।
तुम्हें हमारी लाज बड़ाई, बिनती सुनि प्रभु मेरे॥

भक्त मीरा का तो गिरधर गोपाल के अतिरिक्त कोई दूसरा सम्बन्धी है ही नहीं—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो, सकल लोक जोई॥

पानप में भी ऐसी सम्बन्ध-भावना पायी जाती है। उन्होंने भगवान् को बाप के रूप मे, कभी माँ के रूप में भी देखा है।[1]

पानप ने भगवान् से नाथ, प्राणनाथ एवं प्रियतम के सम्बन्ध भी स्थापित किए हैं,।[2] भक्त द्वारा स्थापित इन सम्बन्धों द्वारा भक्त और भगवान् में निष्ठा

सुपमवेद—१६·७
,, ८·३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा अनन्य-भावना उत्पन्न होती है। भगवान् के प्रति प्रगाढ़ निष्ठ तथा अनन्य-भाव की पूर्णता के लिए भक्त को भगवान् के शरणागत होना चाहिए। भगवान् के शरणागत होना अथवा अनन्य-भाव से उपास्य में निष्ठा रखना प्रपत्ति अथवा पूर्ण आत्मसमर्पण कहलाता है। 'प्रपत्ति के द्वारा भक्ति की सिद्धि को मोक्ष का साधन कहा गया है।[1]

भक्ति के छः अंगों अथवा छः नियमों की साधना शरीर एवं मन आदि को पवित्र करने वाली होती है। उपास्य की इच्छानुकूल संकल्प एवं व्यवहार करना, भगवान् के विरुद्ध कर्म का वर्जन करना, भगवान् में अटल विश्वास, भगवान् को सम्बन्धी समझना और उनके गुण-कथन करना, अपने आपको भगवान् के अधीन करना तथा विनय-भावना दिखाना. ये छः अंग शरणागति के हैं।

प्रथम अंग है—'आनुकूल्यस्य संकल्पः' अर्थात् जो कार्य भगवान् के अनुकूल हों उन्हें ही करना। सदाचरण ही भगवान् के अनुकूल उत्तम कर्म है, इसी के द्वारा भक्त मनोरथ की सिद्धि कर पाता है।

पानप सदाचरणशील साधक थे। उन्होंने सर्वाधिक बल निश्चल एवं निष्कपट हृदय पर दिया है। पानप का मत है कि हृदय को निर्मल किए बिना हरि-दर्शन दुर्लभ है।[2]

जब तक हृदय में मल है, विकार हैं उस समय तक शरीर-शोधन, ज्ञान-साधना और उपदेश आदि सब व्यर्थ हैं, पानी से घी निकालने के समान निस्सार है।[3]

दूसरा नियम अथवा अंग है—'प्रतिकूल्यस्य वर्जनम्' अर्थात् जिस कार्य से भगवान् अप्रसन्न हों ऐसे दुर्गुणों का परित्याग। पानप ने सदैव क्रोध, लोभ, काम, मोह, कपट, आशा, अभिमान और माया आदि दुर्गुणों की घोर निन्दा की है।[4]

तीसरा अंग है—'रक्षिष्यतीति विश्वासः अर्थात् भगवान् सब प्रकार से रक्षा करते हैं—इसका अटल विश्वास रखना।

पानप भगवान् में अटल विश्वास रखते हैं, इस अटल विश्वास ही के कारण पानप किसी अन्य के कृतज्ञ होना उचित नहीं समझते। राम जैसा स्वामी पाकर अन्य को पुकारना भी अरुचिकर है। उनका दृढ़ विश्वास है कि जो ईश्वर तीन लोक का भार उठाता है वह अवश्य ही अपने भक्त की रक्षा करेगा।[5]

---

१. 'भक्ति प्रपत्योरेव मोक्ष साधनत्व स्वीकारात्' यतीन्द्र मतदीपका, पृ० ४०
(दत्त एवं चट्टोपाध्याय—'भारतीय दर्शन' पृ० २७९ के फुट नोट पर उद्धृत)

२. सुषमवेद—१६·४१

३. पानपवानी—२०·२४

४. ,, ११.२, ९, २८, ३५,

५. ,, २१.७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथा अंग है—'गीप्तृत्वे वरण' तथा 'अर्थात् अकेले में भगवद्गुणों का वर्णन; चिन्तन एवं मनन करना। पानप ने इस अंग का भी पूर्णतया पालन किया है।

पाँचवाँ अंग है—'आत्मविक्षेप' अर्थात् भक्त का अपने-आप को पूर्णरूपेण भगवान् के अधीन कर देना। पानप ने इस अंग की सिद्धि के लिए लिए सती तथा पतिव्रता नारी की भावना की भाँति भक्ति की बात कही हैं।[1] पानप उसी भक्त को भगवान् का सच्चा भक्त कहते हैं जो तन, मन, जीवन अथवा अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पित कर दे।

छठवाँ अंग है—'कार्पण्ये' अर्थात् दीनता का भाव ग्रहण करना तथा उत्कृष्ट विनय-भाव दिखाना। भक्त अपनी दीनता दिखाकर ही भगवान् को द्रवित कर सकता है।

पानप में दीनता एवं विनय-भाव उत्कृष्ट दशा में पाये जाते हैं—'मैं तो प्रभु आपके चरणों की धूलि हूँ।[2] प्रपत्ति के द्वारा पानप भाव-भक्ति की साधना में अग्रसर होते हैं क्योंकि अभी उनकी भक्ति-पिपासा शान्त नहीं हो पायी थी।

पानप ने भाव-भक्ति को ही परम उत्कृष्ट बताया है।: इस भक्ति के सामने उपदेश, ज्ञान-चर्चा आदि सब व्यर्थ हैं। भाव-भक्ति के द्वारा ही अव्यक्त चरम भगवान् से तादात्म्य प्राप्त किया जा सकता है। भगवान् का सानिध्य प्राप्त करने के लिए भक्त अपने भाव-जगत् को परिशुद्ध करके अनन्य अनुराग के साथ भगवान् में नियोजित करता है। शरणागत होने के लिए भक्त की साधना जारी रहती है। भगवान् के प्रति भक्त को नौ प्रकार से आत्म-निवेदन करना होता है। साधना में साधक अपनी भाव-दशा के द्वारा भगवान् की शरण जाता है। एक भाव-दशा दूसरी भाव-दशा से ऊँची एवं उत्कृष्ट होती जाती है और साधना की परमावस्था में भक्त के भाव भगवान् में केन्द्रीभूत होने लगते हैं।

पानप में ये सभी भाव पाये जाते हैं। भाव हैं—शरणागत-भाव, कान्ता-भाव पतिव्रता-भाव, नवोढ़ा-भाव, चातक-भाव, अनन्या-भाव, मधुरा-भाव, विशुद्ध प्रतीति-भाव तथा तन्मयता भाव।

शरणागत-भाव

इस अवस्था में भक्त भगवान् ही की शरण जाने की लालसा रखता है। अहंकार-शून्यता भगवत्कृपा से ही प्राप्त की जा सकती है। भक्त भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए व्याकुलता तथा व्यग्रता से उनकी उपासना करता है। भगवान् उसके दोषों को दूर करके उसे शरण में लेंगे यह अटूट विश्वास भक्त के हृदय में रहता है। पानप भगवान् की शरण में जाने को व्यग्र है। उन्हें भगवान् की

---

१. पानपबानी—२७.२१
२. ,, २.१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामर्थ्य में पूर्ण विश्वास है। भगवान् के अतिरिक्त वे किसी अन्य के कृतज्ञ नहीं होना चाहते।[1]

कान्ता-भाव

कान्ता-भाव में भक्त के हृदय में अहंकार एवं कर्तापन का अभाव रहता है। आध्यात्मिक भाव के द्वारा भक्त स्वयं स्त्री होने की तथा भगवान् को अपना पुरुष जानकर दाम्पत्य-सम्बन्ध की कल्पना करता है। जीवात्मा ब्रह्म की चित्-शक्ति का अंश कहा गया है और इसी से उसे शक्ति-रूप भी माना गया है। विश्व में केवल भगवान् ही पुरुष हैं। पद्मपुराण का कथन है—'विश्व में केवल भगवान् ही पुरुष हैं उनके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, आदि सबके सब उनकी शक्ति अर्थात् स्त्री-रूप है।[2]

दाम्पत्य-जीवन में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध प्रेमानुभव का सर्वोच्च एवं उत्कृष्ट सम्बन्ध माना जाता है। भक्त इस सम्बन्ध की आध्यात्मिक कल्पना करता है और प्रेम में विह्वल होकर आनन्दित होता है। इस भाव की सिद्धि से ममता, मोह, स्वार्थ आदि दुगुणों का नाश होता है तथा शुद्ध प्रेम का उसके हृदय में प्रादुर्भाव होता है। कान्ता-भाव की साधना में पानप ने प्रेम-मग्न होकर कहा है कि मैं बिना हर के रहूँ कैसे ?[3]

पतिव्रता-भाव

पतिव्रता स्त्री सह-धर्मिणी एवं अर्धांगिनी होती है। वह मन, वचन, कर्म तथा अपने शरीर से सदा-सर्वदा पति में ही अनुरक्त रहती है। पति के लिए वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। आत्म-निवेदन में जीवात्मा मुख्य है और जीवात्मा ही पति व्रत-भाव के द्वारा त्याग का भाव धारण करता है। इस भाव की परिपुष्टता के लिए भक्त को अपने शरीर एवं अहम्मन्यता का पूर्णतः ध्यान छोड़ना पड़ता है।

पानप का पतिव्रत-भाव हरि (हर) के अतिरिक्त अन्य किसी की ओर जाता ही नहीं। वे अपना सर्वस्व हर के चरणों में समर्पित करते हैं। भगवान् के साथ इतना प्रेम करते हैं कि उन्हें आँखों में बन्द करने की कामना करते हैं जिससे वे किसी अन्य को न देख सकें और न कोई दूसरा ही भगवान् को देख सके। पानप अनन्य भाव एवं निष्ठा के साथ भगवान् पर भरोसा करते हैं। पतिव्रता नारी का धर्म पति में अनुरक्त रहना है, उसे अपने शरीर का भी ध्यान नहीं होता। पानप का सर्वस्व हर के अधीन है।[4]

---

१. पानपबानी—२७·६
२. पद्मपुराण पाताल खण्ड—६४·४६
३. पानपबानी—१८·४
४. " २६·१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नवोढ़ा-भाव

नवोढ़ा बाला अपने भावी पति को बिना देखे ही केवल भावी सम्बन्ध के निश्चय होने पर ही उसके प्रति अपने को समर्पित कर देती है तथा उसे अपना हृदयेश्वर अंगीकार करती है। भावी पति की साक्षात् सेवा में प्रवृत्त होने के कारण उसके पाने के लिए अनन्य अनुराग तथा उसका साक्षात्कार होने पर आत्मसमर्पण करने का संकल्प ही उसके जीवन का व्रत एवं ध्येय होता है। भक्त यहाँ भगवान् की प्राप्ति के लिए दत्त-चित्त होकर इस भाव की साधना ही में लगता है। भगवद्-प्रेम में वह अपने मन, बुद्धि, अहंकार, अन्तरात्मा एवं शरीर आदि को रंजित करता है। नवोढ़ा बाला-रूपी भक्त पानप भगवान् पति की प्राप्ति के मिए दत्त-चित्त होकर प्रतीक्षा और अनेक प्रकार की कल्पना करते हैं। क्या कभी वह दिन आयेगा भी कि जिस दिन प्रियतम के दर्शन होंगे। उल्लासपूर्ण मिलन होगा और सकल कामना पूर्ण होगी। पानप के दिन-रात बाट जोहते-जोहते बीत जाते हैं, कोमल सेज पर निद्रा नहीं आती, वह सिंह के समान भयानक हो गई है। जब तक प्राण-प्रियतम से सम्मिलन नहीं होगा, तब तक आनन्द एवं शांति जीवन में होगी ही नहीं।[१]

चातक-भाव

इस भाव की सिद्धि के लिए भक्त के चिन्तन, मनन श्रवण का केवल भगवान् ही एकमात्र लक्ष्य होता है। चातक का प्रेम जगत्-प्रख्यात है। यह केवल स्वांति नक्षत्र-प्रसूत जल-बूँद को ही पीता है। अथाह जलनिधि में डूबे रहने पर भी दूसरे जल को ग्रहण नहीं कर सकता। भक्त भगवान् की भक्ति में अनेक कष्ट उपस्थित होने पर अथवा बाधाएँ आ जाने पर विचलित नहीं होता, वरन् उन क्लेशादि को प्रभु-अनुग्रह समझकर सहन करता है। ऐसे भाव की सिद्धि में पानप चातक के समान भगवान् के प्रति अनुरक्त हैं।[२] बड़े से बड़े कष्ट को भी भक्त स्वयं ही सहन करता है, राम के अतिरिक्त किसी अन्य से उसकी चर्चा भी नहीं करता। केवल भगवान् के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सत्य नहीं है, पानप ने भली प्रकार देख लिया कि केवल राम ही प्राप्य है।

अनन्य-भाव

सकल विश्व में अपने आराध्य के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का व्यवहार करना एवं उसी को सामर्थ्यवान् समझ उसके प्रति निष्काम-भाव से शीश झुकाना और उसमें अनुरक्त रहना अनन्य-भाव है। अनन्य-भाव में पूर्ण समर्पण निहित है। अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित करके उसी के भरोसे पर जीवित रहना अनन्य-भाव है। अनन्य निष्ठावान् पानप का रोम-रोम हर में अनुरक्त है।[३]

---

१. पानपबानी—२४·१५

२. पानपबोध—१९·४

३. ,, १९·१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मधुरा-भाव

लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त पति-सम्मिलन होने पर पत्नी उसी में अनुरक्त होकर अपना जीवन-यापन करने की कामना रखती है। एक पल भी उसका वियोग पत्नी को अरुचिकर होता है।

मधुरा-भाव की साधना में भक्त की भाव-दशा हरि (हर) भक्ति में तल्लीन हो जाती है। हर-रस के पाने के सामने विश्व के सभी रस फीके पड़ जाते हैं। भक्त उसी रसानन्द में निमग्न रहता है और यही चाहता है कि उसका और हर का वियोग न होवे। पानप में यह भाव भी परिपूर्ण दशा में है। पानप कहते हैं कि हे राम प्यारे! मैं तुझे जाने नहीं दूँगा, जैसे भी हो, तुम हमारे ही हो।[१]

विशुद्ध प्रीति-भाव

साधना की इस अवस्था में भक्त के मन में निष्काम-भाव का प्रादुर्भाव होता है। विश्व के सभी प्राणियों में उसे भगवान् का ही स्वरूप दिखाई पड़ता है और इसीलिए वह सबके प्रति विशुद्ध प्रीति का भाव रखकर सद्व्यवहार करता है। यहाँ उसे अपने शुद्ध-बुद्ध स्वरूप का ज्ञान होता है। आत्म-दर्शन में ही वह तल्लीन होने का इच्छुक रहता है। पानप निज-स्वरूप को पहचान कर गद्‌गद् हो गये। उन भक्तों को भी उन्होंने श्रेष्ठ कहा जो निज स्वरूप का ज्ञान रखते हों—

अपने मैं रंग आपैं जाँनू।
पानप कहैं ताहि कूँ माँनू॥[२]

तन्मयता-भाव

भाव-भक्ति की यह नवीं सीढ़ी है। इस भाव-दशा के सिद्ध हो जाने पर भक्त के भाव से द्वैत का भाव नष्ट होने लगता है। भक्त अपने उपास्य में अपने भावों को लीन कर देता है। भक्त के भाव तथा भगवत्-स्वरूप एकाकार से उसे दिखाई पड़ते हैं। दोनों निराकार भाव परस्पर मिल जाने पर तत्पर रहते हैं। पानप ने तन्मयता-भाव की साधना के उपरान्त अपने में और हर में कोई भेद ही नहीं देखा।[3]

नारद-भक्ति में भाव-दशा को 'आसक्ति' कहा गया है। आसक्ति हमारे भावों में होती है। नारद भक्ति सूत्र में ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख है।[४] इस प्रकार आसक्तियों के अनुसार ग्यारह प्रकार की भक्ति-साधना की जाती है। पानप में गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणसक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति,

---

१. पानपबानी—२२·२०
२. ,, १८·२४
३. पानपबानी—८·१२
४. नारद भक्ति-सूत्र—८२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, तन्मयतासक्ति, परम विरहासक्ति और आत्मनिवेदनासक्ति न्यूनाधिक मिलती हैं, इसका प्रकारान्तर से अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है।

(ङ) निर्गुण अहेतुकी भक्ति

आत्म-स्थिति की अवस्था में भक्त भगवान् के प्रति अनेक कामना-मुक्त भाव से उसकी भक्ति करता है। उसका भाव-जगत् परिशुद्ध हो जाता है। भक्त-जगत् परिशुद्ध हो जाता है। भक्त को भक्ति एक स्वकर्त्तव्य प्रतीत होता है। इस अवस्था में भक्त भगवान् के प्रति निष्काम भाव से भक्ति करता है। भक्ति की यह दूसरी स्थिति है।

गीता में कहा गया कि जो भक्त न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है तथा जो शुभ-अशुभ सबका त्यागी है, वह भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है।[1]

यहाँ निष्काम, निस्पृह, निर्वैर भक्त को ही श्रेष्ठ कहा गया है। पानप ने सकाम भक्ति के स्थान पर निष्काम भक्ति को श्रेष्ठ कहा है क्योंकि भगवान् निष्काम स्वरूप हैं और उन्हें निष्काम भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। पानप केवल भक्ति अथवा सुरत को ही जीवन का लक्ष्य समझते हैं। भगवान् की भक्ति केवल भक्ति ही चाहिए।

पानप न स्वर्ग चाहते हैं, न नरक न मोक्ष ही। वे केवल हरिदर्शन की भक्ति का वरदान माँगते हैं। वे बिना हर-दर्शन के अपना जीवन ही दूभर समझते हैं।[2]

साधना की दूसरी अवस्था में पानप अहेतुकी भक्ति का पल्ला पकड़ते हैं और भक्ति-साधना में अग्रसर हैं।

नारद-भक्ति-सूत्र में अहेतुकी भक्ति को प्रियतम भगवान् में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषयों में उदासीनता द्वारा निरोध करके, साधने की बात कही है।[3]

नामरूपात्मक विश्व के मनमोहक विषयों का भक्त परित्याग करता है तथा भगवान् में अनन्य-भाव को नियोजित करता है। नारद-भक्ति-सूत्र में भगवान् के अतिरिक्त दूसरे अन्य आश्रम एवं विषयों के परित्याग को ही अनन्यता कहा गया है।[4]

साधक को विषय-विकारों के परित्याग के हेतु कुछ साधनों के द्वारा भक्ति करनी होती है; ये ग्यारह साधन हैं—

---

१. गीता—१२·१७
२. पानपबानी—२१·६
३. नारद-भक्ति-सूत्र—६
४. ,, ,, —१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) **शरीर-रक्षा**—मानव-शरीर की रक्षा साधक के लिए आवश्यक है। यदि शरीर ही स्वस्थ नहीं है तो साधना हो ही नहीं सकती है। अतएव शरीर की रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन एवं संयमित जीवन का पालन करना हितकर होता है।

पानप ने मनुष्य-जन्म की महत्ता को स्वीकार किया है। जिसके द्वारा हम भाँति-भाँति के साधन में प्रवृत्त होते हैं और फिर यह सदा-सर्वदा रहने वाला भी नहीं। यह परिवर्तनशील और मरणशील है; अतएव जो कुछ भी समय अपने पास है उसे भगवत् भक्ति में ही लगाना उचित है। पानप कहते हैं—

'मानुस जनम दुरलभ, देह न बारम्बार'।[१]

(२) **साधु-जन-सेवा**—पानप ने साधु-जन सेवा को अमृत-तुल्य कहा है। साधु-सेवा से साधक के मन के समस्त दोष दूर हो जाते हैं। जिस घर में साधु-जन की सेवा नहीं होती वह घर नहीं है, मरघट है और उसमें निवास करने वालों को पानप ने भूत-पिशाच की संज्ञा दी है।[२] अनेक तीर्थों की यात्रा करने पर वह पुण्य नहीं होता जो घर बैठे ही सज्जन पुरुषों की सेवा से प्राप्त हो जाता है।[३] पानप ने उस दिन की सराहना की है जिस दिन संतजन के दर्शन हो जाते हैं। सन्त के दर्शन एवं स्पर्श-मात्र से मन के सब पाप धुल जाते हैं।[४] अतएव भक्त को साधु-जन की सेवा में तल्लीन रहना चाहिए।

(३) **सत्संग**—सत्संगति मनुष्य के आत्म-संयम में सहायक होती है। जो जैसी संगति में रहता है उसी के अनुसार उसका चरित्र बन जाता है। संगति के प्रभाव से ही मनुष्य जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार उसे फल भी भोगना पड़ता है। साधु-महात्माओं के सत्संग से मनुष्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। पानप का निश्चित मत है कि सत्संगति कभी भी निष्फल नहीं होती; उसका फल अवश्य मिलता है और उसे यश की प्राप्ति होती ही है। पानप ने यत्र-तत्र साधु-संगति की महिमा बखानी है।[५]

(४) **दुर्जन एवं दुर्गुण-त्याग**—भक्त को खलजन तथा दुर्गुणों दोनों का ही परित्याग करना चाहिए। पानप ने आडम्बर-युक्त मनुष्यों को कपटी, अपराधी एवं खल कहा है; नारद भक्तिसूत्र में दुर्जनों का परित्याग करने पर जोर दिया है।[६]

---

१. पानपबानी—४·१७
२. ,, १८·२५
३. ,, ७·२१
४. ,, १३·८
५. ,, १८.१०
६. नारद भक्ति-सूत्र—४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप ने खलजनों से दूर रहने का उपदेश दिया है। भक्त को दुर्गुणों का भी परित्याग करना चाहिए। पानप ने दुर्गुणों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है; उनमें प्रमुख है—संशय, कपट, स्वार्थ, अहंकार, मोह, मद, मत्सर, काम, क्रोध, हिंसावृत्ति, लोभ, तृष्णा, परनिन्दा, कुवचन, द्वेष, घृणा, पाखण्ड, असत्य एवं दुराचरण आदि। पानप के विचार से संशय सब दुर्गुणों का मुखिया है। इसने सकल विश्व को अपनी चपेट में कर रखा है। सद्गुरु की कृपा से ही इससे छुटकारा पाया जाता है।[1] दुर्गुणों की ज्वाला में सकल विश्व झुलस रहा है, सभी अन्धे होकर इन दुर्गुणों में आसक्त हैं। पानप ने कहा है जो इनमें फँस गए। वे तो नष्ट हो ही गए, जो बचे हैं वे भी रो रहे हैं।[2]

(५) **सद्गुण अपनाना**—नाना भाँति के शुभ गुणों का अर्जन कर उन्हें अपनाना भक्त के लिए श्रेयस्कर है। पानप के अनुसार प्रमुख गुण हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रिय-निग्रह, दया, सन्तोष करनी-कथनी का एकत्व, सेवा, विश्वास, सद्वचन, धैर्य, समभाव, स्वावलम्बन और विनय आदि। पानप का उपदेश है कि भक्त को जहाँ भी शुभ गुण दिखाई पड़े उसे ग्रहण कर लेना चाहिए और दुर्गुण का परित्याग कर देना चाहिए। जैसे शहद की मक्खी प्रत्येक वस्तु में से अमृत-तुल्य शहद का अंश तो ले लेती है और अनिष्टकारी अंश छोड़ देती है वैसे ही शुभ गुणों का अर्जन करना चाहिए।[3]

(६) **परहित-साधन**—परहित-साधन के अभ्यास से साधक में समदर्शिता का प्रादुर्भाव होता है। भक्त के लिए परहित-साधन करना भी परम कर्त्तव्य है। पानप ने वृक्ष की परोपकार भावना का उल्लेख करते हुए कहा है कि वृक्ष बारह महीने फल देता है जिसका उपभोग करके सभी सुख का अनुभव करते हैं, उसकी शीतल छाया में बैठकर सुख पाते हैं और उसके ऊपर अनेक पक्षी घोंसला बनाकर रहते हैं। वृक्ष का सम्पूर्ण शरीर परहित साधन में ही लगता है।[4]

(७) **सरल जीवन**—भावुक भक्त सरल जीवन-यापन के माध्यम से अपने अन्तर्तम में अनेक गुणों का आविर्भाव करता है। आवश्यकतानुसार पवित्र भोजन, स्वच्छ वस्त्र, आवास एवं अन्य जीवनोपयोगी पदार्थों से ही भक्त सन्तोष कर लेता है। पानप के कथनानुसार जो कुछ मिल जाए उसे भगवत्कृपा समझकर, उसी से सन्तोष के साथ अपना काम चलाता है। दूसरे का वैभव एवं धन-सम्पदा देखकर उसे लालच नहीं सताता और न वह भविष्य की चिन्ता के फलस्वरूप धन-संग्रह करता है।[5]

---

१. पानपबानी—११.२३
२. ,, २१.१०
३. ,, ८.१६
४. ,, १३.२७
५. ,, २०.५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(८) **नाम-स्मरण**—भगवन्नाम का माहात्म्य सभी भक्तों ने बताया है। नाम के सहारे ही भक्ति-साधना में प्रवृत्त हुआ जाता है। भगवन्नाम भक्त के लिए प्राण-शक्ति है जिसकी सहायता से भक्त अपने लक्ष्य की पूर्ति कर पाता है। पानप के अनुसार भगवन्नाम जीवन की सफलता के लिए परमावश्यक है। उसके बिना चरम लक्ष्य की पूर्ति हो ही नहीं सकती। पानप के चित्त ने विश्व के सभी रसों का आस्वादन किया परन्तु उन्हें राम-नाम से अधिक मधुर कोई रस नहीं मिला। राम-नाम सर्वाधिक मधुर एवं अमृत-तुल्य है।[1]

पानप ने राम-नाम को सर्वव्यापी कहा है। उसका भेद अगम्य है। वह सर्वातीत है, सर्वान्तरात्माओं का वासी है, वह स्मरण योग्य है।[2] नाम-स्मरण एवं नाम के जाप से मन विकारशून्य हो जाता है। भक्त नाम के जाप की डोरी के सहारे मन को चरम साध्य में केन्द्रित करता है, भक्त अमृत्व का अधिकारी बन जाता है।[3] पानप ने नाम-स्मरण को सभी साधनाओं से परम उत्कृष्ट और उत्तम बताया है।

(९) **त्याग-भावना और आत्म-समर्पण**—भक्त में अपना सर्वस्व त्यागने की भावना होनी चाहिए। सभी कुछ भगवान् का है फिर मोह क्यों किया जाए, यह विचार भक्त में होने चाहिए। भगवान् के चरणों में अपना तन, मन और धन सर्वस्व सर्मपित करके भक्ति करनी चाहिए। पानप ने तन, मन और शीश तक समर्पित किया, तब प्रभु ने सत्य-प्रकाश स्वरूप दर्शन दिए और तब वे हरि-भक्त बन सके।[4]

(१०) **सर्वत्र आत्म-दर्शन**—सभी प्राणियों में प्रभु का वास है। अतः सबके साथ सहानुभूति एवं कल्याणकारी भावना के साथ व्यवहार करके सबके कल्याण के कार्यों में लगने से आत्म-दर्शन का अभ्यास किया जाता है। भक्त सभी में प्रभु-दर्शन करने का अभ्यासी हो जाता है। पानप ने सभी स्त्री-पुरुष में अपना ही स्वरूप देखा तथा अल्लाह और राम एवं गुरु और पीर में भी एक ही चरम तत्त्व भगवान् को पाया।[5]

(११) **निस्पृहता**—सकल विश्व निज-स्वरूप ही है फिर किसी पदार्थ-विशेष से आसक्ति नहीं होनी चाहिए। भक्त को निस्पृह, निर्वैर, निस्संग रहने का अभ्यास करना परम कर्त्तव्य है। पानप ने उस भक्त को जो निर्वैर, निष्काम, निर्विषय और प्रभु में तल्लीन रहता है, परम संत कहा है।[6] पानप ने आतमराम को पहचानने की

---

१. पानपबानी—१·१७, १८, २१
२. ,, ११·५
३. गगनटोरी—१०·११
४. पानपबानी—९·१२
५. ,, ९·१४
६. ,, १७·११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बात कही है, जब तक आत्म-दर्शन न होगा तब तक राम भगवान् से तादात्म्य भी नहीं होगा।[1] विश्व के सभी प्राणियों में आत्म-दर्शन की पिपासा ने पानप को भक्ति साधना-पथ में अग्रसर किया। सिद्धान्त एवं उपदेश रूप इस तथ्य को स्वानुभूति की कसौटी पर कसने के लिए पानप ने प्राणिमात्र के साथ प्रेम-प्रीति द्वारा सद्व्यवहार करके प्रेम-भक्ति की साधना प्रारम्भ की।

(च) प्रेम लक्षणा-भक्ति

पानप की भक्ति-साधना की यह तीसरी अवस्था है। भक्ति द्वारा पानप ने मन, उसकी वृत्तियों एवं भाव-दशाओं की शुद्धि की। आत्म-दर्शन के निमित्त उन्होंने सभी प्राणियों के साथ सद्व्यवहार करने का निश्चय किया।

डॉ० मुंशीराम शर्मा ने प्रेम-लक्षणा-भक्ति के सम्बन्ध में लिखा है, दास्य-भक्ति में सेवक-स्वामी से भय खाता है और सदैव इस चिन्ता में रहता है कि उससे कोई कार्य स्वामी की इच्छा के विपरीत न बन पड़े। जब स्वामी के साथ वह हिलमिल जाता है, तो उसकी झिझक भी छूट जाती है और वह भयभीत होने के स्थान पर उसका आदर करने लगता है। इस आदर में ममत्व की भावना भी सम्मिलित रहती है। यही ममत्व आगे चलकर प्रेम में परिणत हो जाता है।[2] प्रेम के द्वारा भक्ति करना प्रेम-लक्षणा-भक्ति है। नारद-भक्ति-सूत्र में ईश्वर के प्रति प्रेमरूपा भक्ति को उत्तम कहा है।[3]

सामान्यतया सभी भक्तों ने प्रेम-लक्षणा-भक्ति का अनुमोदन किया है। पानप ने भी प्रेम-भक्ति की महत्ता का वर्णन किया है; प्रेम-भक्ति को सर्वोत्तम कहा है। भक्ति-साधना की तृतीय अवस्था में पानप प्रेम-लक्षणा-भक्ति की साधना में तल्लीन हुए। उनके गुरु ने उन्हें प्रेम-भक्ति करने का आदेश दिया और उसकी युक्ति भी बतायी। प्रेम-लक्षणा-भक्ति की सिद्धि कठिनता के साथ होती है। साधक को अपना सर्वस्व न्योछावर करके इस भक्ति-मार्ग पर आरूढ़ होना होता है। प्रेम-मय विश्व में प्रेम हो जाता है, प्रेम ही ज्ञान है और प्रेम ही ज्ञेय है। प्रेम ही आत्मा, प्राण, बल और ऐश्वर्य आदि सब कुछ है। प्रेम ही धर्म है और प्रेम ही सद्गुण है और प्रेम ही सौंदर्य है।

प्रेम का पूर्ण प्रकाश करना ही सृष्टि का उद्देश्य है। अतएव सब प्राणी मात्र, छोटे-बड़े, जड़-चेतन, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, पशु-पक्षी, ज्ञानी-अज्ञानी सब प्रेममय हैं, प्रेम की ओर जा रहे हैं, सबका लक्ष्य प्रेम ही है, यह सकल विश्व प्रेममय ही है।

पानप ने इस सृष्टि के रहस्य को समझने के लिए प्रेम-रूप होकर यहाँ प्रेम

---

१. पानपबानी—१३·१

२. डॉ० मुंशीराम शर्मा—'भक्ति का विकास', पृ० ४७९

३. नारद-भक्ति-सूत्र—२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की साधना में सर्वस्व स्वाहा कर देने को कहा है।[१] प्रेम की कथा अकथनीय है। जो इसका रस चख लेता है वह भी आनन्दित होकर मतवाला तो रहता है, पर कुछ इसका रहस्य बता नहीं सकता। यह अनुभव की वस्तु है। प्रेम की साधना कठिन है, प्रेम सम्पूर्ण आत्म-समर्पण चाहता है। प्रेम की साधना करना शूरवीर का ही काम है।[२]

पानप ने प्रेमानन्द को हरिरसानन्द कहा है। पानप की प्रेम-भावना निस्सीम के प्रति है। पानप का मत है कि हरि के प्रेम के रस का पान कर लेने पर फिर कुछ भी इच्छा नहीं रह जाती, कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता, जैसे कुम्हार का वह घड़ा जो अग्नि में पक्का कर लिया जाता है फिर उसके चाक पर कभी भी नहीं चढ़ाया जाता।[3] प्रेम-साधना के मार्ग पर चलने वाले साधक को व्यग्रता, व्याकुलता का पद-पद पर सामना करना पड़ता है। प्रिय-मिलन की तड़पन अतुलनीय होती है। पानप ने प्रेमी साधक की व्यग्रता को चकवी के विरह से भी अत्यन्त कष्टदायक कहा है।[४]

प्रेम की साधना में विरह का प्रमुख स्थान है। प्रेम के साधक में विरह का होना अनिवार्य है। विरह के ही कारण प्रेम हृदय में प्रिय-मिलन की उत्कंठा जाग्रत हो जाती है और यही उत्कंठा उसे ब्रह्म से मिलाने में समर्थ हो जाती है। यह आध्यात्मिक विरह साधक को सत्य की खोज के लिए प्रेरित करता है और उसे साधना में प्रवृत्त करता है। विरह का मारा प्रेमी हमेशा व्याकुल रहता है। उसे पियमिलन की उत्कंठा लगी रहती है, जैसे बिना जल के मीन तड़पती ही रहती है, उसी प्रकार बिना रामनाम के दर्शन के प्रेम-भक्ति का साधक भी विरह से व्याकुल रहता है।

प्रेम-लक्षणा-भक्ति के साधक पानप में विरह के उत्कृष्ट वर्णन पाए जाते हैं, वहाँ विरह की सभी दशाओं का वर्णन मिल जाता है—

प्रियतम की प्राप्ति के लिए प्रेमी हृदय में तीव्र उत्कण्ठा होती है। प्रिय का कोई सन्देश न मिलने तथा उसका साक्षात्कार न हो सकने के कारण उसके हृदय में चिन्ता का प्रादुर्भाव होता है। चिन्ता, विरह की प्रथम दशा है।

प्रभु के न मिलने पर पानप का विरह तीव्र हो जाता है। चिन्ता से वे व्याकुल हो उठते हैं। चकवी भी रात की बिछुड़ी हुई प्रातः होते-होते अपने प्रियतम

---

१. पानपबोध—१०·३
२. ,, ९·१२
३. पानपबानी—१०·११
४. ,, ११·१७, १८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से मिल ही लेती है परन्तु राम-विरह का मारा पानप कभी भी अपने प्रिय हरि से न मिल सकेगा।[1]

विरह की दूसरी दशा व्यग्रता है। यहाँ भक्त की व्याकुलता और अधिक बढ़ जाती है, उसे कहीं भी चैन नहीं मिलता।[2] प्रतिक्षण हर-वियोग में तड़पते ही बीतता है।

आँसू विरह की तृतीय दशा है। प्रतीक्षा करते-करते धैर्य और ढाढस टूट जाता है। प्रिय की याद व्याकुल कर देती है। विरहिणी की आँखें बरसती ही रहती हैं।[3]

विरह की चौथी दशा उद्वेग है। प्रिय के न मिलने के कारण मन कहीं भी नहीं लगता। अत्यन्त सुखदायक वस्तुएँ भी दुखदायी प्रतीत होने लगती हैं। पानप हर के मिलन की चाह में रात-दिन प्रतीक्षा करके व्याकुल है। सुखदायक सेज सिंह के समान भयंकर हो गई है, उस पर शयन करने से भी चैन नहीं पड़ता।[4]

विरह की पाँचवीं दशा विस्मृति है। प्रिय-मिलन के लिए उतावलापन होता है। उस उतावलेपन में उचित स्थान का ध्यान नहीं रह जाता। साधक आगे बढ़ जाता है। प्रेम में मतवाला हो जाता है। वह अपने वस्त्रादि और शारीरादि की भी चिन्ता नहीं करता। पानप की ऐसी ही दशा हो गई है।

जागरण विरह की छठी दशा है। इसमें नींद नहीं आती, खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगता। शरीर कृश हो जाता है। आँखें बैठ-सी जाती हैं, जीवन निस्सार समझ पड़ता है। पानप की आँखें, जीभ आदि सभी राम के वियोग में व्यर्थ-से हो गये हैं।[5]

पानप प्रिय-मिलन के लिए अपने शरीर को दीपक बनाकर उसकी भाँति जलाना चाहते हैं।[6]

उन्माद विरह की सातवीं दशा है। वियोग का दुःख और संताप इतना अधिक होता है कि साधक अपनी सुध-बुध खो बैठता है, बेहोशी आ जाती है। प्रेमी साधक की वाणी कुंठित-सी हो जाती है, वह बकझक करने लगता है।[7]

---

१. पानपबानी—८·१०
२. ,, १·१७
३. ,, १·२७
४. ,, १२·४
५. ,, १८·११, १३
६. ,, १६·२६
७. ,, ११·६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विरह की आठवीं दशा मृत्यु होती है। प्रिय का वियोग असहनीय हो जाता है। प्रेमी भक्त अपने जीवन के प्रति उदास हो जाता है और वह मृत्यु को गले लगाने के लिए उद्यत हो जाता है। पानप का कहना है कि जिसके मरने से संसार डरता है वही तो मेरा आनन्द है।[1]

हरि-प्रेम की साधना की पराकाष्ठा पर पहुँचकर भक्त का प्रेम सात्विक एवं सार्वभौमिक हो जाता है। साधक की वृत्ति प्रेम-रूप हो जाती है। वह सार्वभौमिक प्रेम भेद-भाव को निर्मूल कर देता है। भक्त में समदर्शिता के भाव का प्रादुर्भाव होता है। विश्व के कण-कण में जब उसका प्रियतम व्याप्त है तब यह प्रेम जो सबके प्रति है वह उसी के प्रति है। फिर द्वेष, घृणा, वैर किसी से क्यों किया जाय अतएव निर्वैर, निर्विषय, निस्संग रहने की प्रवृत्ति भक्त की हो जाती जाती है। वह सभी के साथ प्रेम करता है। इस समदर्शिता में भक्त के हृदय में सहजशील का प्रादुर्भाव तथा संचार हो जाता है।

पानप के अनुसार ऐसा भक्त भगवान्, प्राणीमात्र एवं वृक्षादि में भी भेद नहीं देखता। उसे वृक्ष के पत्तों में भी जीव का दर्शन होता है। चैतन्य से कोई भी वस्तु अथवा स्थान रिक्त नहीं है। अतएव पत्ती का तोड़ना भी ऐसे भक्त को अखरता है।[2] प्रेम भक्ति की देन है नर-हरि-दर्शन। नर के रूप में हरि-दर्शन से तात्पर्य नर-नारायण की सेवा से है। निर्मल, निस्संग, निस्पृह बुद्धि से कर्म करना, और लोक-कल्याण करना हरि की भक्ति ही है। भक्ति की पराकाष्ठा पर पानप ने सेवा को हरि-भक्ति कहा है। विश्व-कल्याण एवं नित्य हरि-दर्शन के लिए प्राणीमात्र की सेवा में संलग्न रहना परम कर्त्तव्य है ऐसे ही भक्त और भगवान् में भेद नहीं रहता।

समदर्शी भक्त के मन से सभी भेद-भाव एवं विकार नष्ट हो जाते हैं। उसे सर्वत्र अपना ही शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप दिखाई पड़ता है, उसका मन अपने ही स्वरूप में केन्द्रित हो जाता है। सभी प्रपंच समाप्त हो जाते हैं। मन को कहीं अन्य विषय पर जाने की आवश्यकता नहीं होती।

(छ) पानप की भक्ति की विशिष्टता

भक्ति धरी सबके सिर उपर, जब मानुष्य देह बनाई।
यो जग भूला भ्रम में पानप, सिर पे भक्ति गंवाई॥
भक्ति नहीं कुछ गावना, पढ़ना भक्ति न होई।
अन्त धुन मन थिर कर राखे, पानप सांची भक्ति सोई॥[3]

---

१. पानपबानी—३·४
२. ,, ४·१७
३. सुषमवेद—१·१२, १३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप दास ने भक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया है और मन के स्थैर्य के लिए भक्ति अनिवार्य है। उन्होंने भक्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। पानप ने मन को केन्द्रीभूत करने के लिए भक्ति की योजना की। भक्ति-साधना के पहले पानप ज्ञान तथा योग-साधना का अनुभव प्राप्त कर चुके थे इसलिए उनकी भक्ति में इन दोनों का प्रभाव परिलक्षित है।

पानप की भक्ति-साधना की प्रथमावस्था आत्मस्थिति है। जन-साधारण की भाँति पानप उपासक एवं उपास्य के भेद-भाव को स्वीकार करते हुए अव्यक्त ब्रह्म में व्यक्त गुणों की कल्पना एवं आरोप करके भाव-भक्ति की साधना में प्रवृत्त किया जा सकता है। इस अवस्था में पानप ने अपने भाव-जगत् को निर्मल किया है और उन्हें कई भाँति से अव्यक्त ब्रह्म में नियोजित करने का प्रयास किया है।

भक्ति-साधना की दूसरी अवस्था में पानप अहेतु की भक्ति-साधना में प्रवृत्त होते हैं। इस अवस्था में भक्त स्वयं निष्काम भाव से भक्ति को स्वकर्त्तव्य जानकर निष्काम, निराकार प्रभु की भक्ति में तल्लीन होता है। अहेतुकी भक्ति के लिए किसी भी प्रकार के उपकरण अथवा आडम्बर की आवश्यकता नहीं। यह हर प्रकार की निर्गुण भक्ति है।

भक्त अपने हृदय को विकारशून्य करके समदर्शी बनता है। यहाँ भेद-भाव के लिए स्थान नहीं। सभी मनुष्य भक्ति कर सकते हैं कोई प्रतिबन्ध नहीं। जिसने अपना मन, हृदय निर्मल कर लिया वह निष्काम भाव से हरि-भक्ति करने का अधिकारी है। उसे न किसी आडम्बर की आवश्यकता होती है और न मन्दिर की, न विशिष्ट विधान की और न विशिष्ट स्थान की।

निर्गुण भक्ति की अन्तिम सीढ़ी है—प्रेम-भक्ति। इस अवस्था में भक्त पानप सार्वभौमिक प्रेम की सिद्ध प्राप्त करके, सहजशील संत की अवस्था को प्राप्त करते हैं। आध्यात्मिक भावना द्वारा की गई प्रेम-भक्ति नरहरि-दर्शन कराने में समर्थ होती है। भक्त आज तक जिस उपास्य को अपने से भिन्न समझ बैठा था वह भिन्न न होकर स्वयं उसमें एवं सकल विश्व में व्याप्त है अथवा उसका अपना ही स्वरूप है।

विश्व अपना ही स्वरूप है अतएव सभी प्राणियों के साथ प्रेम, सहानुभूति एवं सदाचरण द्वारा सद्व्यवहार करके अपनी आत्मा में आनन्द का अनुभव करना, नर-हरि-दर्शन करके सेवा-कार्य में तल्लीन रहना सर्वोत्तम भक्ति है।

सब में मैं हूँ और सब मुझ में हैं, हम अलग-अलग नहीं हैं, वरन् मूलतः एक ही हैं[1], हम सबको परस्पर सद्व्यवहार और सहानुभूति के साथ निष्काम कार्य करने में संलग्न रहना चाहिए।

---

१. पानपबोध—११·१३, १४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावात्मक तथा प्रेम-मूलक निर्गुण भक्ति की अपनी विशेषता है नर-हरि-सेवा अथवा मानव-मात्र में आत्म-दर्शन। पानप का यह संदेश है कि सद्संगति द्वारा हृदय को निर्मल करो, सभी की निष्काम-भाव से सेवा करो, सेवक की उस सेवा में ही भगवान् के, हर के दर्शन होंगे और इस भाँति हरि-भक्ति करना, सच्ची भक्ति है।

पानप की भक्ति की मौलिक देन है—एकान्तिक से लोक संग्रहात्मक होना। पानप की भक्ति व्यक्ति को सदाचरण तथा सहजशील द्वारा उसके व्यक्तित्व में विकास करके उसे लोक-संग्रहार्थ निष्काम-कर्म करने की प्रेरणा देती है। यह भक्ति अत्यन्त लोकोपयुक्त है। उसमें विधान, पूजा-पाठ, वेश-भूषा, आडम्बर एवं पाखंड का कोई भी स्थान नहीं। वह निर्गुण भाव-भक्ति है। किसी समय, किसी स्थान में, सदैव बिना किसी विशेष उपकरण के भक्त के भावों द्वारा की जा सकती है। इसमें किसी के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं, अधिकारी-अनाधिकारी का कोई झमेला नहीं।

पानप ने भाव-भक्ति का यह द्वार सभी वर्णों के लिए उन्मुक्त किया था। जब भगवान् सब में व्याप्त हैं ओर सब भगवान् मय हैं फिर यहाँ वर्ण-अवर्ण का भेद कैसा।[1] सबका मूल-तत्त्व एक है। छोटे-बड़े सब मूलतः एक हैं। हम में और दूसरों में एक-सा रक्त और प्राण-संचार कर रहे हैं। अशुद्ध हों चाहे पवित्र हों, सवर्ण हों अथवा अवर्ण सब एक ही प्रकार से उत्पन्न होते हैं। अतः सब अभिन्न हैं, एक हैं—पानप का यह निश्चित मत है।

किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध न होने के कारण ही पानप की भक्ति जन-साधारण के बीच प्रसारित हो सकी और अनेक भक्तों का जीवन सफल कर सकी। समस्त विश्व हमारा ही स्वरूप है। हम सब चिर सत्य एकत्व से बँधे हुए हैं। सब भेद-भाव का परित्याग करके परस्पर सहानुभूति एवं प्रेम का व्यवहार करें, तो यह विश्व आनन्द से भर जाएगा।

प्रेम-लक्षणा निष्काम भक्ति के द्वारा आनन्द की प्राप्ति करके पानप ने हरि-रस अथवा प्रेमानन्द-रस का पान कर लिया। इस प्रेमानन्द को पाकर आत्म साधन-यात्रा की सारी थकान क्षण-भर में छूमन्तर हो गई। भक्त की सभी आशा, तृष्णा, इच्छा का लोप ही गया। मन का उत्पात समाप्त हो गया अब तो वह हरि-रस का आनन्द पाकर उसी में संलग्न हो गया।

पानप का प्रेमानन्द एवं हरि-रसानन्द को पानकर आनन्दित होने वाला यह जीव संतुष्ट हो जाता है।[2] पानप की भक्ति ज्ञानात्मक, योगात्मक, भावात्मक एवं

---

१. पानपवानी—२१·७, ८
२. ,, १०·१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेम-मूलक होते हुए भी सरल है, सहज है फिर भी खड्ग की धार के समान कष्ट साध्य है, अपना सर्वस्व देकर ही इसकी साधना की जा सकती है।[1]

पानप की भक्ति की विशिष्टता है अनेकत्व से एकत्व की सिद्धि। द्वैत-भाव को नष्ट करके अद्वैत की स्थापना। इस प्रकार एक में अनेक और अनेक में एक को देखने को पानप ने सच्चा ज्ञान और सच्ची भक्ति कहा है। भक्ति भी सच्ची वही है जो जगत् में रहते हुए निरासक्त एवं निष्काम भाव से लोक-संग्रहार्थ करके ही की जाए।

---

१. पानपबानी—१६·११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्यकालीन दार्शनिक शृंखला में पानप का स्थान

पानप सो जो पी पण गहै । पी को छांड और नहीं कहै ।
अर्ध-उर्ध बिच अम्रत पीवै । कहै पानप सो जुग-जुग जीवै ।।
नानकदासा और कबीरा । पानपदास तिन्हों का चेरा ।
नानक पानपदास-कबीरा । सकल सृष्टि का एक सरीरा ।।
छिपी न भक्ति कबीर की । नानक छिपा न बोला ।
पानपदास परगट कहै । तूं कर आतम सूं मेला ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२ मध्यकालीन दार्शनिक शृंखला में पानप का स्थान

मध्ययुग में हमें दार्शनिकों की तीन कोटियाँ दिखाई पड़ती हैं। एक शृंखला है प्राचीन दार्शनिकों की, दूसरी है सामंजस्यवादी दार्शनिकों की और तीसरी शृंखला है उदारवृत्ति वाले स्वतन्त्र चेता दार्शनिकों की।

(१) प्राचीन दार्शनिक अधिकतर उद्भट विद्वान् तथा शास्त्रज्ञ आचार्य थे। ये दार्शनिक शास्त्रीय विधि-विधानों तथा वर्णाश्रम-धर्म आदि में पूर्ण आस्था रखते थे। दर्शन-क्षेत्र में इन्होंने स्वतन्त्र चिन्तन को महत्त्व तो दिया परन्तु ये श्रुति-प्रमाणवाद से पीछा नहीं छुड़ा सके। अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का मौलिक रूप में प्रतिपादन इन्होंने किया किन्तु उसके लिए प्रमाण स्वरूप वेदों को ही प्रस्तुत किया।

स्वामी शंकराचार्य मर्मज्ञ दार्शनिक और उच्च कोटि के शास्त्रज्ञ आचार्य थे। वे प्राचीन दार्शनिकों के अगुआ थे। शंकराचार्य के अतिरिक्त इस कोटि में विष्णु स्वामी, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि रूढ़िवादी दार्शनिक भी मध्ययुग में हो गए हैं।

(२) सामंजस्यवादी दार्शनिकों में प्रमुख रामानुजाचार्य थे। शास्त्रीय वर्णाश्रम धर्म तथा प्रामाण्यवाद के भी प्रबल समर्थक थे किन्तु शूद्रादि वर्णों के प्रति स्नेह तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने और उन्हें भक्ति आदि साधना अपनाने का पूर्ण अधिकार घोषित करने के फलस्वरूप यह सामंजस्यवादी शृंखला के प्रमुख अगुआ हुए।

श्री रामानुजाचार्य ने स्नेह और सहानुभूति से अनुप्रेरित होकर शूद्र वर्णों के लिए प्रपत्ति का साधना-मार्ग प्रशस्त किया। इन्हीं की परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास हुए जिन्होंने विविध विरोधी तत्त्वों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुसलमान दार्शनिकों में गजाली सामंजस्यवादी दार्शनिकों के अगुआ माने जाते हैं। इन्होंने रूढ़िवादी इस्लाम का स्वतन्त्र चिन्ता-मूलक सूफीमत से सामंजस्य स्थापित किया था।

(३) तीसरी शृंखला थी उदारचेता स्वतन्त्र दार्शनिकों की। इस श्रेणी के दार्शनिकों ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन इस प्रकार किया कि उन सिद्धान्तों के द्वारा प्राचीन चिन्तन धारा का खण्डन हो और जीवन के सभी क्षेत्रों में सुधार हो। इस श्रेणी के दार्शनिक पुस्तकीय ज्ञान, शास्त्रीय विधि-विधान, बाह्योपचार, वर्णाश्रम धर्म तथा प्रामाण्यवाद में विश्वास नहीं रखते थे। अन्धानुकरण और अन्ध-विश्वास से इन्हें विशेष घृणा थी। इस श्रेणी के दार्शनिक प्रायः सन्त हुए जो स्वभाव से अत्यन्त बुद्धिवादी, स्वतन्त्र विचारों को निर्भीकता से व्यक्त करने वाले एवं भक्त हृदय थे। स्वामी रामानन्द, कबीर, पीपा और नानक इन स्वतन्त्र दार्शनिकों में अग्रगण्य थे।

अनादि काल से ही भारतवर्ष में स्वतन्त्र चिन्तन को महत्त्व दिया जाता रहा है। उपनिषद्काल में कर्मकाण्ड अथवा यज्ञ-यागादि को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया तथा ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन किया जाना स्वतन्त्र चिन्तन ही है। बौद्ध-जैन दर्शनों में भी स्वतन्त्र चिन्तन को ही महत्त्व दिया गया है।

मध्यकाल में इस स्वतन्त्र चिन्तन से उच्छृंखलता का प्रसार हुआ और समाज को पतनोन्मुख होना पड़ा। इस उच्छृंखलता का विशेष कारण बौद्ध एवं हिन्दू-धर्म का ह्रास कहा जा सकता है। बौद्ध-धर्म के पतनोन्मुख होने पर उसमें अनेक उप-सम्प्रदाय उदय हो गए थे। इनमें सहजयान, वज्रयान, कौल सम्प्रदाय, मन्त्रयान तथा निरंजन-पन्थ आदि प्रमुख हैं। इनके द्वारा धर्म-क्षेत्र एवं साधना-क्षेत्र में विशृंखलता फैल गयी। दार्शनिक क्षेत्र में कबीर ने इस विशृंखलता को रोकने का प्रयास किया। इन सबको मर्यादित करके कबीर ने एक स्वतन्त्र चिन्तन-धारा को जन्म दिया तथा सात्विक एवं सदाचरण प्रधान दार्शनिक सिद्धान्तों तथा साधना का प्रतिपादन किया।

पानप के समय में भारत में इस्लाम-धर्म का खूब बोल वाला था। इस्लाम धर्म में स्वतन्त्र विचार का कोई स्थान नहीं था। सूफीमत में स्वतन्त्र चिन्तन को महत्त्व दिया गया है। सूफियों को इस स्वतन्त्र चिन्तन का बहुत मूल्य चुकाना पड़ा। जैसे मन्सूर हल्लाज को।

इन उदारवृत्ति वाले स्वतन्त्र चेता दार्शनिकों में दक्षिण के ज्ञानेश्वर महाराज, सन्त एकनाथ, सन्त नामदेव तथा सन्त तुकाराम आदि प्रमुख हैं। ये सभी सन्त कबीर के पूर्वकालीन थे, इनकी विचारधारा से कबीर को पथ-प्रदर्शन मिला। साथ ही निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि पानप ने कबीर से भी बहुत प्रेरणा ली—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नानक, पीपा, कान्ह, मुरारी, दास कबीर पुकारे हो ।

× ×

पानपदास करत प्रभु बिनती, मों मलीन मित तारो हो ॥[1]

दार्शनिक सिद्धान्त अभी तक दिग्गज आचार्यों की थाती समझे जाते थे। शास्त्रज्ञ आचार्य ही उनसे लाभान्वित हो सकते थे। साधारण जनता तो उनसे अछूती ही रह जाती थी। कबीर पहले दार्शनिक हुए और उसी श्रृंखला में पानप को वरेण्य स्थान प्राप्त है जिसने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा प्रचार जनसाधारण के लिए जन-साधारण की भाषा में किया। उस समय गहन से गहन दार्शनिक विचार को सरलतम भाषा में सजाकर जन-सामान्य के सम्मुख प्रस्तुत करना पानप का ही काम था।

अविगत, अव्यक्त, अनुपम, निर्गुण, अनन्त ब्रह्म, जिसके सम्बन्ध में सभी दार्शनिक कहते-कहते थक चुके थे, जिसके सम्बन्ध में 'नेति-नेति निगमहि कहि' प्रचलित हो चुका था, पानप ने उसे सबके घट-घट में व्याप्त बताया। वह निस्सीम, अव्यक्त ब्रह्म सबके घट में समाया है।[2]

इतना ही नहीं पानप ने सर्वसाधारण भाषा में यह भी बताया कि हम और वह एक है।[3]

इतनी सरल परिभाषा को पाकर जन-साधारण का मन खिल उठा। उनमें आशा, उत्साह, उत्कण्ठा तथा जागरण-भाव की लहर व्याप्त हो गई और वे गद्गद् हो गए। जनसाधारण में शक्ति का संचार हुआ।

उस समय क्लिष्ट से क्लिष्ट साधना-पद्धतियाँ प्रचलित थीं। कुछ ही वर्णों को योग तथा भक्ति करने का अधिकार था। बहुसंख्यक समाज इन अधिकारों से वंचित था।

पानप ने सरल से सरल पद्धति का प्रचलन किया। किसी भी आडम्बर की, किसी भी दिखावे की, किसी भी पाखण्ड की तथा किसी भी वेशभूषा की अपेक्षा न थी उनकी साधना के लिए।

अपने दोषों को दूर करके सदाचरण द्वारा हृदय को निर्मल करना मात्र परमावश्यक था। जहाँ सहजभाव की वृत्ति हाथ आयी कि साधना सफल हो जाती थी। मन के केन्द्रीयभूत होते ही हृदय निर्मल हो जाता और साधक सहज समाधि की उपलब्धि के योग्य हो जाता है। इस सहजावस्था के लिए किसी प्रकार की विशेष साधना अथवा आयोजन नहीं करना होता। जैसे ही सुरत-निरत एक हो जाती है मन निश्चिन्त हो जाता है, फिर साधक को न आँख मूँदने की आवश्यकता होती है,

---

१. पानपबोध-स्तुति—३-४
२. पानपबोध-नामस्तोत्र—२४-२५
२. ,, ,, २८-२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न कान बन्द करने की और न अन्य प्रकार के कष्ट उठाने ही की। वह सर्वदा खुली आँखों से अपने सब ओर 'हर दरसन' पाता है, जो कुछ कहता है वह 'हरनाम' ही होता है, जो सुनता है वह 'हर-सुमरन' है, जो कर्म वह करता है वही पूजा होती है। द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है, गृह-त्याग की आवश्यकता नहीं होती। उसका दैनिक कार्यक्रम ही भगवान् की सेवा हो जाती है। उसे 'रहनी' स्थिति की उपलब्धि हो जाती है और चिरसुख उसे मिल जाता है।

इस प्रकार सहजधर्म और सहज साधना की स्थापना देखकर शताब्दियों का बहिष्कृत समाज भी संगठित हो गया और पानप द्वारा स्थापित सहज धर्म का अनुयायी बन गया।

(१) इस्लाम का प्रचण्ड प्रभाव जो जमता चला जा रहा था, जिसकी चपेट में अनेक पीड़ित निम्न वर्ग पड़कर, इस्लाम धर्म स्वीकार करके अपना अस्तित्व ही खो रहे थे, वह कम हुआ।

धर्म-परिवर्तन का यह तूफान मन्द पड़ने लगा और धीरे-धीरे उसका अन्त ही होने लगा था।

पानप ने भेद-भाव-विहीन सहज धर्म की स्थापना की जिसकी सीमाएँ सब प्रकार के बन्धनों से निर्मुक्त थीं। उस धर्म को हिन्दू, मुसलमान, सवर्ण, अवर्ण, सभी कोई अंगीकार कर सकता था। उस सहज धर्म में मुल्ला-मौलवी, पण्डित पुजारी, योगी-यति, पीर पैगम्बर किसी भी धार्मिक मुखिया की अपेक्षा न थी। धर्म के क्षेत्र के ये मध्यस्थ हाथ पर हाथ धरे बैठे ही रह गए। जन-साधारण इनके पंजे से निकल चुका था। वह स्वयं ही सब कार्य अपने आप सम्पन्न करके धर्म-लाभ प्राप्त कर लेता था।

इस सहज धर्म रूपी अमृत को पान करके सर्व साधारण अमर हो गया। अव उन्हें किसी अन्य धर्म को अपनाने की आवश्यकता ही न रह गयी। हिन्दू जाति और संस्कृति की गिरती दीवारें स्थिर हो गयीं और हिन्दू-धर्म एवं जाति नष्ट प्रायः होने से वच गई।

(२) धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन तो समाप्त हो गया परन्तु हिन्दू, मुसलमान, जोगी आदि के साम्प्रदायिक भाव तो बने ही रह गए। इनके बने रहने पर साम्प्रदायिक कलह-झगड़े हो ही जाते थे। पानप ने साम्प्रदायिकता को मिटाने का भी भरसक प्रयत्न किया—

घट में साहब सब कहै, हिन्दू मुसलमान।
पानप को अचरज यही, सो न पड़ी पहचान॥[1]

---

१. सुषमवेद-ज्ञानसुषमनी—३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योगी का गोरख, हिन्दू का राम, मुसलमान का खुदा सब 'एक' ही के नाम हैं। उस एक सर्वशक्तिमान को चाहे जिस नाम से पुकारा जाय कुछ अन्तर नहीं पड़ता, फिर परस्पर झगड़ा करके, घृणा एवं द्वेष रखने की बात भी नहीं। हम सब उसी भगवान् के बनाए हुए हैं। पानप का कथन है—

'हिन्दू तुर्की पानप एक, सोई सच्चा जो करे बबेक।
बिरले हर जन पानप पाया, बिन पानप सोई जुग-जुग जीवै ।।'[१]

पानप के उपदेशों के फलस्वरूप अनेक मुसलमान भी उनसे प्रभावित थे।

(३) हिन्दुओं में वर्ण-विभेद के कारण अनेक व्यक्ति निचले समाज में सम्मान नहीं पाते थे। उनको नीचा समझा जाता था। पानप ने ऊँच नीच के विचारों की आलोचना की और उन्हें निस्सार बताया।

पानप ने कबीर के समान युग-युगान्तर के सताए गए समाज को उठाया और उनके अन्य वर्णों के समान ही सम्मानित होने की बात कही। पानप की ओजस्वी वाणी ने इन वर्णों में भी आत्म-सम्मान, आशा तथा जागरण की लहर प्रवाहित की और सम्मानपूर्वक शारीरिक श्रम करते हुए जीवन-यापन करने तथा सर्वांगीण उन्नति करने का भरोसा उनमें उत्पन्न किया।

(४) पानप के विचारों से अनुप्राणित होकर अनेक पन्थों का सम्वर्द्धन हुआ और अनेक स्वतन्त्र विचारकों को बल भी मिला इन पन्थों और विचारकों में कबीर पन्थ, नानक-पन्थ, दादू-पन्थ, लालदासी पन्थ, पलटू-पन्थ, धरनीदास, चरनदास, नारायणी, गरीबदासी, प्राणनाथी सन्त तथा राधास्वामी सत्संग आदि प्रमुख हैं। पानप के दार्शनिक सिद्धान्तों से समाज का हित हुआ।

(५) जीवन के सभी क्षेत्रों को पानप ने सँवारने का प्रयास किया। विषमता अथवा असमानता पानप से देखी नहीं जाती थी। पानप ने सब क्षेत्रों से विषतता को मिटाने और समरसता को प्रतिष्ठित करने का जीवन पर्यन्त प्रयास किया। द्वैत भाव का नाश और अद्वैत भाव की प्रतिष्ठा तथा एकत्व की सिद्धि उनके जीवन का चरम लक्ष्य बन गया था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मध्यकालीन दार्शनिकों, चिन्तकों अथवा विचारकों में पानप का विशिष्ट स्थान था। उनके दार्शनिक सिद्धान्त इस युग के लिए अनुपम थे। पानप मध्यकालीन दार्शनिक कड़ी अथवा हार के उज्ज्वल मोती हैं जिसकी विचार-आभा से युगीन सन्त-समाज जगमगाता रहा।

---

१. सुषमवेद-ज्ञानसुषमनी—९८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट

१—पानप की परिभाषाएँ
२—पुस्तक-सूची
३—पत्र-पत्रिकाएँ

पढ़ पढ़ पढ़ पाथर भया, घरवा हो गया चौड़ ।
कहै पानप हर मिलन का वह पढ़ना कुछ और ।।
पढ़ पढ़ पढ़ पाथर भया, लिख-लिख लिख भया इंट ।
अन्तर में लागी नहीं, नेक प्रेम की छींट ।।
बिना बिचार बबेक बिन, पढ़े गुणे क्या होय ।
आतम तत्त चीन्हा नहीं, पानप नरक पड़त हैं सोय ।।
पढ़ना गुनना चातरी, यौं सब जग की चाल ।
हर बिन अन्त पानप कहै, जीव का कौन हवाल ।।
पढ़ना गुनन चातरी, सब ही जगत करै ।
जन मुकता पानप कहै, जब अन्तर सुरत धरै ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानप रचित परिभाषाएँ

पानप

पानप सो जो पी पण गहै। पी की छाड़ और नहीं कहै ।।
अर्ध उर्ध विच अम्रत पीवै। कहै पानप सो जुग जुग जीवै ।।
हिंदू तुरक का पानप एक। सोई सच्चा जो करै बबेक ।।
बिरले हरजन पांनप पाया। बिन पांनप योंही जनम गँवाया ।।

हिन्दू-मुसलमान (अभेद)

जो तू चाहै एक कूँ। तौ एक जात पहचाँण ।।
राम षुदा तिस कूँ कहै पांनप। वोह हिंदूक मुसलमान ।।
मुसलमान मुसलं रहै। पाँच पचीसों कुँ नित दहै ।।
पाँच पचीस कर राषे एक। निस बासर तन मन कूँ देष ।।
आप आप मैं लिया पिछाँण। कहै पांनप सोई मुसलमांन ।।

पंडित

अकल कला ले ब्रह्म पिछाँणं। तन मन षोजै जम भै मांनै ।।
कहै पांनप पंडत है सोई। ब्रह्म पिछांणै त्रास न होई ।।
सुरत पतरा करै विचार। अंतर अंछर धरै सिं-भार ।।
अंतरगत की मैंटे दोय। कहै पांनप पंडत है सोय ।।
माला जपूँ न कर जपूँ। मुष सूँ कहूँ न राम ।।
सतगुर अंतर ठाँव वताई। ताँहाँ रटवो अष्ट जाँम ।।
अष्टौ जाँम ताहाँ रटूँ। जाँहाँ दो परबत की संध ।।
ह्वाँ आसण चढ पांनपा। होत सदा आनन्द ।।
जा जन कोई मन चिर कर राषै। चारो बेद भरै ताकी साषै ।।
मन थिर करे पंडत है सोई। अंतकाल जम त्रास न होई ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आसन

बैठे सुर्त अगम मह आसण । सोई आसण सच्चा ॥
कहै पांनप यीह काया मोड़े । सब ही बातों कच्चा ॥

योग

मन होय धीर जोग है सच्चा । सुर्त निर्त ले अन्तर रच्चा ॥
अन्तरमत तिरवेणी वहै । जहां हरजन जाय आसण करै ॥
समरथ बेद उचरत वाणी । बिन रसना वोह धुन पहचानी ॥
जैसी बिध जो ब्रह्म कूं सेवै । कहै पानप सोई पावै भवै ॥

ध्यान

ध्यान सोई जासू सूझै धनी । और ध्यान सब मन की मनी ॥
कहै पानप प्रभू दिष्ट न आया । तो कहो कौन सूं ध्यान लगाया ॥
अगम ध्यान सूं सूझै धनी । ब्रह्म ज्ञान सूं छूटै मनी ॥
ज्ञान और ध्यान सुर्त के साथ । पानप साधे दरस समात ॥

धर्म

धर्म सोई जो हर का दरसन । और धरम कुछ नांही ॥
और सबै आधर्म है पानप । जग भटकै भर्म कै मांही ॥

मत

सोई मता रता हर सेती । छूटी सकल भरम ना जेती ॥
आनदेव की सेवा त्यागी । मन परतीत आतम सूं लागी ॥
मन में कहिए ब्रह्म ठिकाना । ता पर से छूटया भरमाना ॥
गुरु लषाई औघट घाटी । कूंची लाए षुली कपाटी ॥
अब मेरे मन भाई परतीत । कहै पानप मिटी धर्म की भीत ॥

ब्रह्मचारी

ब्रह्म चीन्ह भए ब्रह्म सनातन । सो सच्चा ब्रह्मचारी ॥
कहै पानप जो ब्रह्म न चीन्हा । तो सब जग ब्योहारी ॥
पानप बोलत डोलता । तोहा तू ब्रह्म विचार ॥
और सकल जठ जीव है । नहीं दरसन को परकार ॥

ज्ञान

ज्ञान सोई जब सुर्त लगावे । अन्तर पलक डिगण नहीं पावै ॥
दिष्ट फेर के धरिए ध्यान । कहै पानप हर जन परम सुजान ॥
ज्ञान सोई तासूं पावै चरन । सहज मिटत है जामन मरन ॥

ध्यान

ध्यान सोई जासूं प्रभू कूं देषै । कहै पानप सूझे पुरुष अलेषै ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिलक-छापा

तत्त को तिलक धीर मन छापा । सच्चा ध्यान निरष ले आपा ।।
सुम मैं सुरत सूं दरसन होय । कहै पानप साधू सांचा सोय ।।

साधु

आगम ज्ञान गगन ध्यांन । सुर्तषीज ब्रह्म मांहि समावै ।
पापन कहै सुणोभाई साधो । मन थिर करै तो साध कहावै ।।
साध सोइ मन साध रहै । बकवाद किए कुछ हाथ न आवै ।।
चंचल मन चहूं देस फिरै । तन साध कहै नरमूल गंवावै ।।
भेष धरै हर सो न डरै । भरम मांहि पड़ो जम हाथ बिकावै ।।
सन्त जुगत कूं साध कहै । सोई साध रहै मुक्ता फल पावै ।।
बांध लेई अमरी बजरी । धर नाभ सूं पवन गगन चढ़ावै ।।
मूल कंवल कूं बंध हिरदै । गह अक्कल ताधर मैं पहरावै ।।
अरसै परसै अलषै दर सै । कैहरों जिवड़ा भौजल नंही आवै ।।
पानप दास निरास कहै । जब अन्तर पैठ निरन्तर धावै ।।

गुरु

मैं कुछ नांही बाबा मैं कुछ नांही । साचा साहिब है सर्ब मांहि ।।
हूं तो परलै काल का कीड़ा । सिर पै साहिब गहर गंभीरा ।।
गहर गम्भीर अकल कर सेवा । परसैसन्त देह बिन देवा ।।
तन षोजै तो मन कूं पावै । सोई सांचा गुरु कहावै ।।
मन कूं षोज रहै मन मांहि । दरसन प्रगटै सहज सुभाय ।।
मान सरोवर मोनी हंसा । जुग कूं बाधै जोग जुगंता ।।
जुग बांधै तो जोन न आवै । पानप दास राम गुन गावै ।।

दुरवेश

वई दुरवेस जो फना करें आप कूं । आप मैं आप तहकीक कीय ।।
दंम बरदंम एक यादही याद मैं । मुसलै ईमान जो जीवत मूवा ।।
कहै पानप दुरवेस सो । दिल पर पैठे जाय ।।
अधर मुसल्ला षोज कै । पटै नमाज तांहां ।।
दिल दर षोजै सोई दुरवेस । सुर्त सुषमना राषै पेस ।।
सिदक सबूरी रोजा धरै । पिंड ब्रह्मण्ड में षोजा करै ।।
मनसा बसन रंगै गुरजान । वोह रंग तजै मांन अभमान ।।
दुरमत-दुरमत ताके नेस । कहै पानप सच्चा दुरबेस ।।

क्षत्रिय

छत्री तत्त गहै तलवार । पांच पचीसो पै नितमार ।।
त्रिकुटी संजम मांडै षेत । निसदिन तांहां लड़ाई लेत ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ते जन तुरी पवन की साजै । अड़ा रहै दसवें दरवाजै ।।
गुरगम पाई जैसी जन्त्री । कहै पानप सोई सांचा छत्री ।।

बैरागी

बैरागी सो जिस योह बैराग । मनसा रहै अधर धर लाग ।।
धस-धस पवना तिलक बनावै । राम नाम दोऊ छापै लावै ।।
निस दिन तनमन षोजत रहै । सत ही देषै सत ही कहै ।।
आठो पहर रहै लौ लागी । कहै पानप सच्चा बैरागी ।।
अपना ही सुमरन करू । अपणा ही धरु ध्यान ।।
कहै पानप नास्यौ तिमर । दियौ सतगुर योह ज्ञान ।।
रोम-रोम सुमरन कूं लाजा । छुट गया मुष सूं कहणा ।।
पानप कहै दरस अन्तर मैं । चत्र नैंन सूं लहणा ।।

विद्या

विद्या नाम अराधकी । भई अविद्या दूर ।।
आतम षोजै पानपा । हर आठों पहर हजूर ।।

बाबा बच्चा

हर रच्चा सोई बच्चा । और पठ-पठ भूत्या बच्चा ।।
आपा नाहि सिभात्या । पानप जम के वस पड़ नच्चा ।।
बच्चा कहै सोई है कच्चा । बाबा ना पहचाण्या ।।
कहै पानप बिन बाप बिछांणे । जम की फांसी बाणा ।।

शब्दार्थ

अर्थ सोई तापै चढ़ चलिए । चढ़ कै मजल पौंहचे ।
पानप कहै सुणो भाई साधो । अन्ध अरध क्या सूझै ।।
अर्थ अगाद करै जो कोई । अर्थ किए हर सूझै ।।
कहै पानप योह पड़या भर्म में । अन्ध अरथ क्या बूझै ।।

द्वारका

दसौ दुवारै द्वारका । जो पौंहचे सोई मुक्ता ।।
कहै पानप गया न द्वारका । ए सब दुष सुष भुगत्या ।।

हरद्वार-छापी

सो छापी हरद्वार को । जाके मन पै होवै छाप ।।
कहै पानप जल मरा आग में । उन देष्या नाहर आप ।।

बणिक

बणिया सो जिसे योह बणिआवै । तन के मद्ये हाठ वणावै ।।
यामन के पलड़े हैं दोय । दण्डी सुर्त तराजू होय ।।
घुटले भंझे लावै नाम । पूरा तोले अष्टों जाम ।।
दुरमतदारी मन नांही लावै । कहै पानप बाणिया सच कहावै ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भक्त

भक्त सोई जो मैं मैं नांहि । निरभै रहै अगम घर मांहि ॥
मान सरोवर मन कूं धोवै । मस्तग द्वादस तिलक संजोहै ॥
डोर पवन की जल का दाणा । माल पिरोवै सन्त सयांना ॥
कर बिन रहै फेरता माल । मुष बिन जपै अजपा स्वाल ॥
निसवासर आतम सूं लगता । कहै पानप सोई सांचा भक्ता ॥

भजन

भजन सोई जासूं भै भाजै । जम की त्रास न होई ॥
और भजन सब भ्रम की षांनी । भरम न भूलो कोई ॥
पानप कहैं भजन कर ऐसा । जासूं सुर्त रहे ठहराय ॥
सुर्त ठहरें मन अचल होय । अनत नांही चल जाय ॥

ब्राह्मण

ब्राह्मण ब्रह्म पिछाणै सोई । तनमन षोजै निरमल होय ॥
पांच तंत का करै जनेऊ । गल मैं डारै ताका सेऊ ॥

खुदा

षुदा षुदी सैं दूर है । ना कर षुदी गँवार ॥
षुदी जगत के सीस पर । पानप जम की है पैजार ॥
षुदा कुफर सैं दूर है । कुफरी हदां दोय ॥
कुफर तजै दीदार होय । कहै पानप बूझे कोय ॥

फकीर

सोई फकीरा फिकर मिटावै । अन्तर मनसा मन्है जुटावै ॥
मुष उपजै तब होय लड़ाई । मन मनस दोउ फँधे आई ॥
कहै पानप है सोई फकीरा । मूल बँध मन राषै थीरा ॥
मन थिर करै सो सत्त फकीर । मनसा थिर मे है जम पीड़ ॥

हरिजन

मन मनसा के जुम कूं बाँधे । बाँध बसावैं सत की सेंधे ॥
सत की सन्ध मन मनसा बसै । निरमल जोती मस्तग र्हैसै ॥
कहै पानप हरजन है सोय । तामैं ऐसा लक्षण होय ॥
हिरदा षोजै हरजन सोय । गांए पढ़ें सन्त नहीं होय ॥
हिरदा षोजै सुर्त लगाय । कहै पानप दरसन रहै समाय ॥

रूप-अरूप (सगुण-निर्गुण)

जेते रूप धरे ते छार । रूप अरूप सोई ततसार ॥
रूप अरूपी षोज लगावै । रूप धर्‌या विणसन नंही पावै ॥
जेते धरे माया के रूप । माया रूप रंक और भूप ॥
माया रूप की करू न आसा । कहै पानप सन्तों का दासा ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्यलोक

सत्त लोक सतरुरु सूँ पावै । मनसा धर मन सेव लगावै ।।
मनसा फन्धी बिना फन्ध जाय । अधर अलल मैं रही ठहराय ।।
अनहद ताँती बाजण लागी । सुण कै धुन ताके रंग पागी ।।
पानप कहै सन्त होय ऐसा । भौ सूँ पार मिटै जम मैं सा ।।

संन्यासी

जिस गुन नासै सो संन्यासी । निरगुण पद का रहै उपासी ।।
नौ षंड मनसा षोज लगावै । देष उजाला चलण न पावै ।।
निस दिन धरै ध्यान की धूणी । तामैं ज्ञान जरावै पवनी ।।
अपने मन पै डारै फाँसी । कहै पानप सच्च संन्यासी ।।

सच्चा दण्डी

दण्डी सोई जो सांसा दण्डे । गगन मण्डल में आसन मण्डे ।।
मन कूँ पलक चलण नहीं देई । मनसा बैज आप में तोई ।।
घट-घट आतम राम पिछांणै । सतगुर सबद सत्तकर मांनै ।।
निस बासर धरै ध्यान अषंडी । कहै पानप सोई सांचा दण्डी ।।

मौनी

मौनी सोई बोलता रहै । ताकी बोली कोई अनत है ।।
आपे मांहि निरष ले आप । निसदिन जपै निरंजन जाप ।।
मौनी हंस षोज कर पावै । मान सरोवर अमिल मिलावै ।।
अमल मिलै तब मुक्ता षाय । वें हँसा नहीं आवैं जांय ।।
तब पाई सतगुर की सैनी । कहै पानप सोई सांचा मौनी ।।

यति

जती सोई राषै रती । सती जीव तौं होय ।।
कहै पानप पिया पियारी तेई । ऐसे लक्षण सोय ।।
जती सजो है आतमा । सोई जती पर वाण ।।
कहै पानप नरकी जीवड़ा । जो नहीं आतम पहचांण ।।
जत बिन साधे जती कहावैं । जत मत का कोई मरम न पावैं ।।
पाहन पूजै करैं अभमान । ते नहीं पावैं ब्रह्म गियान ।।
ब्रह्म ज्ञान बिन मुक्त न होई । भक्त बिना भारम्या जग तोई ।।
जत मत साधे सोई जती । कहै पानप सोई राषै रती ।।

सच्चा सराबगी

सोई सत्त सराबगी । करै सीस पर बास ।।
चढ़ सुमेर लाजा सुमरन कूँ । सेवै चरन निवास ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो जन सेवै चरन निवास। साँची सेव मिटै जम त्रास ॥
भरम सेव कुछ हाथ न आवै। कहै पांनप भौंदू जनम गवांवे ॥

जैनी

जैनी सोई जन्म ताहि सूझै। भर्म तजै आतम कूँ पूजै ॥
अर्ध उर्ध बाँधै कुटी। ठगै ताहि जिन दुनिया झुठी ॥
आसा तिष्ना निकट न आवै। निस बासर अनभै पद गावै ॥
तिरबैंणी तट करै असनान। निरमल उपजै ब्रह्म गियांन ॥
जैनी जांनै ब्रह्म पिछांन। मस्तग झलकै केवल ज्ञान ॥
जाते निर्मली घट मैं चींन्ही। कहै पांनप सोई साँचा जैनी ॥

नानक पंथी

नाम समाने नामक साह। दिल षोल्या अपणा दिल लाय ॥
षोत अकल सूँ दिल दरवाजा। परगट भया अनाहद बाजा ॥
मार कुफर किया मैंदान। तब जा पाया अमस इमांन ॥
बकरी पांच सरीहत कीन। जब जा भए नाम लोलींन ॥
सुणता रहै अनाहद तंती। कहै पानप सोई नानक पंथी ॥

उदासी

सोई उदासी रहै उदास। मनसा राची चरण निवास ॥
सुर्त बाँध कै मन सूँ अड़ै। पिंगल कला धार भझ धरै ॥
अनहद नाद अनत धुन बाजैं। परम पुर्स जाँहाँ आप बिराजैं ॥
प्रेमी होय चरणौं चित लावै। तब पर्म पुर्स का दरसन पावै ॥
गुर परतापों दुरमत नासी। कहै पांनप है सोई उदासी ॥

कबीर

गावैं सब्द कबीर का। पोथी लई बंणाय ॥
कहै पांनप बिन अंछर षोजें। सदा अँधेर बिहाँय ॥
साँचा सब्द कबीर का। गहै सो उतरै पार ॥
कहै पांनप बिन अँछर षोजैं। ए मरे पुकार पुकार ॥
काया षोजै सोई कबीर। आसण करै त्रबैंणी तीर ॥
आसण त्याग अनत नंही जाय। उलटै मनसा औघट न्हाय ॥
मनसा न्हाय निमल तब होय। ममता जल कूँ डारै धोय ॥
तिरदेवा सूँ तागा तोड़ै। चौथे महल तैंसीसों मोड़ै ॥
महल बसे होय ब्रह्म परगास। दरसत छूटे काल की भाँस ॥
चंचल मन का राषा धीर। कहै पांनप सोई कबीर ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रागी-अनुरागी

रागी सोई जिसै अनुराग । राग छतीस तिन्हो का त्याग ।।
बिन रसना अनराग उठावै । अंतरगत में निस दिन गावै ।।
वोह अनराग मुक्त ताकी आसा । कर सतसंगत रहत उदासा ।।
जाकी सुर्त प्रेम सूँ पागी । कहै पांनप सच्चा अनरागी ।।

आशिक-माशूक (इश्क हक़ीकी)

आसक नांही अटक है । अटक नंही आंसक कै ।।
कहै पांनप मासूक़ कूँ । आसक पल पल ताकै ।।
आसक सेती इस्क लगाया । आसक सूँ महबूब भया ।।
महबूबाँ और आसक मिलकै । दूजा मिट गया एक रहया ।।
आसक सो जिसै इस्क हकीकी । त्रिकुटी ब्रह्म अमूरत नीकी ।।
वा मूरत सूँ चित्त लगावै । इत उत सुर्त चलण नंही पावै ।।
माया मोह जाय सब भूल । सो आसक दरगाह कबूल ।।
झिलमिल झिलमिल वरषै नूर । आसक और महबूब हजूर ।।
जोत निरमली घट में देषी । कहै पांनप आसक इस्क हकीकी ।।

अमली (नशेबाज़)

चिसम्यो सूँ अमृत रस पीवै । मुष जिभ्या ताँहाँ नांहि ।।
पांनप कहै सुणो भाई साधो । योह मोहि सतगुर जुगत बताई ।।
चिस्मे लाय सुर्त रस पीवै । अगम ब्रह्म की भाठी ।।
अमल छक्या अपठा ही बोलै । कहै पांनप बुध ठाठी ।।
अमली सोई जो हर रस पीवै । हर रस बिना पलक नंही जीवै ।।
निस बासर हर रस की चाह । सतगुर भेदी बूझे ताहि ।।
सतगुर ब्रह्म की भठी बतावै । ता मध झोक पवन की लावै ।।
परगह होय ब्रह्म की झाल । अम्रत चूवै फूल पयाल ।।
भर-भर पीवै चिस्में चिमली । कहै पानप सोई साचा अमली ।।

मुसलमान

पीर पैगम्वर औलिया । केते षान सुलतान ।।
कहै पानप एक याद बिन । हो गए गरद मसाण ।।
पीर पैगम्बर देवता । धावत है संसार ।।
हर हजूर जान्या नहीं । कहै पानप जगत गंवार ।।
मुसलमान अल्है सैं डरै । मरणा हक्क जीवता मरै ।।
बकरी पांच करै तकबीर । दरदबन्द सोई जांणैं पाड़ ।।
अपणी सी पीड़ और की जाणें । करै बन्दगी अधर ठिकाणैं ।।
षोजै कदम लगावै जान । कहै पानप सोई मुसलमान ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योगी—

समता सेली पांचों तार। जोगी गूंदै षिरगुण सार॥
सो सेली ले गल में राषै। सांस निकट न आवै ताकै॥
दंड कमंडल झोली छिमा। नौ षंड जोगी रामत रम्या॥
यौह रामत कर गवन न होय। जैसा जोगी बिरला कोय॥
आड़ बढ़ सील कौपीन। आठ पहर जोगी लौलीन॥
नाद बिंद के घर में रहै। जोग जुगत सु जोगी लहै॥
ज्ञान फावड़ी धूंणी ध्यान। तपता जोगी परम सुजान॥
ब्रह्म अगन दिन रैन जगावै। सो जोगी फिर जौन न आवै॥
चित कर चकमक मनसा पथरी। लावत ब्रह्म अगन परजरी॥
तामैं तिरविध ताप जरावै। मस्तग वोही भभूत चढ़ावै॥
सुन सरोवर निसदिन न्हांय। चेले पांच लिए लड़ लाय॥
चेले पांच लिए कर एक। जोगी मिटै कर्म की रेष॥
सांसा सिंह जोगी कोई मारै। कर बांधवर आसण धारै॥
आसण अचल पलक नहीं चलै। जुग बांधै वै जोगी भले॥
गुदड़ी देह सुरत का धागा। निरत सुई कर सीवन लागा॥
सो गुदड़ी कभी छीन न होय। जुग जुग रावै जोगी सोय॥
टोपी टापी सहज विचार। सिर पै धरिए जुगत अपार॥
ऐसी टोपी जोगी रापै। दरसन सरवन ब्रिरोजै ताकै॥
फरुवा फहम रचै कर माँहि। भूषा रहै न माँगन जाय॥
आकासी व्रत भिछा करै। राम नाम फरवै मैं भरै॥
मौह भोजन नित जोगी करै। तृष्ना आस सहज ही मरै॥
सो जोगी जग मैं परवांन। घट मैं बरसै पद निरवांण॥
मन कूंड़ी कुतका ब्रह्म ज्ञान। राम नाम बूंटी परवांन।
छांन निरत कर सिदिन पीवै। जुगता जोगी जुग जुग जीवै॥
अनहद नाद दया मेषली। नाम सहारा कुबजा भली॥
धीरज धरम कमर कूं कसना। कस कस कमर अगम कूं धसना॥
पामप जैसा जोगी ढूंढ़ै। कर चेला मेरे मन कूं गूड़ै॥
अजपा मंतर मूल बतावै। सो जोगी मेरे मन भावै॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुस्तक-सूची

(अ) आधार ग्रन्थ—

क्रमांक	विवरण
१. पानपबानी (बाणी-ग्रन्थ)	महंत स्वरूपदास दुर्गा प्रेस, कनखल
२. पानपबोध	चन्द्रप्रकाश नई मण्डी, मुजफ्फरनगर
३. सुषमवेद	शिष्य परमानन्ददास राजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली

(आ) सहायक पुस्तक-सूची—

१. आनन्द भाष्य	रामानन्द
२. उत्तरी भारत की संत परम्परा (प्रथम सं०)	परशुराम चतुर्वेदी
३. कबीर-ग्रन्थावली	श्यामसुन्दरदास
४. 'कबीर मन्शूर'	परमानन्द
५. कठोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर
६. गीता	,,
७. गोरखबानी	पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
८. घेरंड संहिता	सम्पादक-श्रीशचन्द्र बसु
९. छान्दोग्य उपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर
१०. तैत्ति० ,,	,, ,,
११. दर्शन-दिग्दर्शन	राहुल सांकृत्यायन
१२. नाथ सम्प्रदाय	हजारीप्रसाद द्विवेदी
१३. नारद-भक्ति-सूत्र	गीता प्रेस, गोरखपुर
१४. पद्म पुराण	,, ,,
१५. पातंजल योग-दर्शन	,, ,,
१६. प्रश्नोपनिषद्	,, ,,
१७. ब्रह्मसूत्रम् (शांकर भाष्य)	अनुवादक ए० आर० जोशी
१८. भक्ति का विकास	मुंशीराम शर्मा
१९. भारत में मुस्लिम-शासन का इतिहास	एस० आर० शर्मा
२०. भारतीय दर्शन	दत्त-चटर्जी
२१. भारतीय दर्शन	उमेश मिश्र
२२. भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२३. मुण्डकोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर
२४. महाभारत	,, ,,
२५. महान् योगी की जीव-साधना	त्रिवेनीदास
२६. यजुर्वेद	जयदेव शर्मा
२७. योग-प्रवाह	पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
१८. वृहदारण्यकोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर
२९. संक्षेप शारीरकम् (पाँचों भाग)	सर्वज्ञ मुनि (नृसिंहाश्रम टीका)
३०. सूफीमत साधना और साहित्य	रामपूजन तिवारी
३१. सांख्यकारिका	ईश्वर कृष्ण
३२. श्वेताश्वतरोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर
३३. साहित्य भक्ति-सूत्र	,, ,,
३४. श्री मद्भागवत्	,, ,,
३५. हठ योग प्रदीपिका	धा० सा० प्रकाशन, बनारस
३६. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (प्रथम खण्ड)	काशी ना० प्र० सभा, काशी
३७. कबीर-दर्शन	डा० रामजीलाल सहायक
३८. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

आंग्ल-ग्रन्थ—

१. इन्फ्लयुएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर	ताराचन्द
२. आउट लाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर	शिवली
३. वैष्णविज्म-शैविज्म	भण्डारकर
४. साउद इण्डियन पैल्योग्राफी	बर्नेल

पत्र-पत्रिकाएँ (हिन्दी)

१. कल्याण (संतोक, योगांक भक्ति-अंक)	गीता प्रेस, गोरखपुर
२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान	साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिल्ली
३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वार्षिक विवरण, संवत् २०२०, २०२१, २०२२)	काशी ना० प्रा० सभा, काशी
४. साहित्य-संदेश	साहित्य कुंज, आगरा
५. हिन्दी-अनुशीलन	भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग
६. हिन्दी साहित्य परिषद् पत्रिका (उर्दू)	श्यामवहादुर वर्मा
७. विज्ञानी	गौरीशंकरलाल
८. संतमाल (संत समागम)	महर्षि शिवव्रतलाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Sandhya Printers, Agra 62812, 62716